काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

को

पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोध–निर्देशिका

डॉ. मुरलिया शर्मा (उपाचार्या)

राजकीय स्नातकोत्तर

कन्या महाविद्यालय, बारां

अनुसंधानकर्त्री

श्रीमती माला खेमानी

व्याख्याता–रा.बा.उ.मा. विद्यालय

महावीर नगर III–कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2016

श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारीण,वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य,
निखिल दर्शन समन्वयाचार्य, सनातन वैदिक
धर्मप्रतिष्ठापनसत्संप्रदायपरमाचार्य,
भक्तियोग - रसावतार,भगवदन्त
श्री विभूषित जगद्गुरु 1008
संत श्री कृपालु महाराज
के पाद - पद्मों में
सादर सश्रद्ध
समर्पित

शोध प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती माला खेमानी ने हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत **"काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"** विषय पर कोटा विश्वविद्यालय, कोटा से पीएच. डी. उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में पूर्ण अवधि तक शोध कार्य किया है। इन्होंने काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य के प्रयोजनगत स्वरूप का गहराई से अध्ययन, विश्लेषण एवं अनुशीलन करते हुए अपनी मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सर्वथा मौलिक एवं स्तरीय है। मैं इस शोध–प्रबन्ध को पीएच. डी. की उपाधि हेतु संस्तुत करती हूँ।

शोध निर्देशिका

डॉ. मुरलिया शर्मा

उपाचार्या

राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,बारां

.

आभार - पुष्प

यह सर्वथा सत्य है कि इस असीम जगत के प्रत्येक अणु–परमाणु में दिव्य तत्व समाहित है। जब भी कोई सजीव चेतन तत्व किसी श्रेष्ठ संकल्प को धारित करता है तो अनन्त दिव्य शक्तियाँ अनन्त भुजाओं से उसके सत्य संकल्प को पूर्णता के शिखर तक पहुँचाने में सहयोग करती हैं। एक महत्ती सत्य संकल्प शक्ति परम तत्व को भी निराकार से साकार रूप प्रदान करती है। इसी संदर्भ में बाल्यावस्था में ही जब मैं कक्षा छः में अध्ययनरत थी तब संत कृपालु महाराज के मूल सैद्धान्तिक ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' को पढ़ने का अवसर मिला, तब अल्प बुद्धि बाल मानस इस अद्भुत ग्रंथ के मर्म को इतना गहराई से न समझ पाया किन्तु मन में यह मनोरथ छिपा रहा कि एक दिन मैं संत कृपालु महाराज के प्रत्येक ग्रंथ को पढ़ूँ और समझूँ। उसी बाल मन की वही छिपी आकांक्षा आज मेरे इस शोध कार्य का आधार रही है। मेरे इस सत्य संकल्प को साकार रूप देने और प्रस्तुत शोध **"काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"** को सम्पन्न अवस्था तक पहुँचाने में मैं सर्व प्रथम सौन्दर्य, माधुर्य और प्रेम के अगाध सिंधु एवं मेरे आराध्य श्री राधा–कृष्ण के युगल चरणों में अपना अकिंचन आभार अर्पित करती हूँ, जिनकी असीम अनुकम्पा ने मेरे बाल मन के अनायास संकल्प को सिद्ध करने की अनुकम्पा की है। साथ ही विशुद्ध भक्ति एवं दिव्य ज्ञान के शाश्वत स्वरूप आचार्य श्री जगद्गुरु कृपालु जी महाराज के प्रति भी आभार पुष्प अर्पित करती हूँ जिनकी वात्सल्यमयी कृपा और प्रेरणा को मैंने प्रतिक्षण अनुभव किया है। उन्हीं की प्रेरणा और अनुकम्पा ने मुझ जैसे अल्पबुद्धि प्राणी को अनुसंधान के पथ पर अग्रसर किया है।

इसी क्रम में मैं सरल एवं सहज व्यक्तित्व की धनी, परम विदुषी, करुणा एवं वात्सल्य भाव की साकार प्रतिमा अर्थात् प्रस्तुत शोध कार्य की मार्गदर्शिका डॉ. मुरलिया शर्मा जी के प्रति भी विशेष आभार व्यक्त करती हूँ जिनके प्रत्यक्ष सहयोग एवं मार्ग दर्शन ने बड़ी सरलता से इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सहायता दी है।

साथ ही मैं हृदय से साधुवाद अभिव्यक्त करती हूँ अपनी दोनों माताओं, श्रीमती कृष्णा हिरानी (ससुराल पक्ष) एवं श्रीमती चन्द्रा खेमानी (पीहर पक्ष) के प्रति जिनका मंगलमय आशीर्वाद प्रस्तुत शोध कार्य को पूर्ण करने में अन्तर्बल के रूप में सिद्ध हुआ।

इसी क्रम में मैं विशेष रूप से धन्यवाद सम्प्रेषित करती हूँ अपने जीवन साथी श्री घनश्याम हिरानी के प्रति भी जिनके प्रति क्षण दिए गए सहयोग एवं प्रेरणा ने प्रस्तुत शोध कार्य को शिखर तक पहुँचाया तथा मैं आभार व्यक्त करती हूँ अपनी अग्रजा श्रीमती पूनम रंगनानी, श्रीमती दीपा मोटवानी (पीहर पक्ष) श्रीमती सविता आनंद एवं श्रीमती रेखा किंगरानी (ससुराल पक्ष) के प्रति जिनकी निरन्तर प्रेरणा एवं शुभाशीष से प्रस्तुत शोध कार्य पूर्ण हुआ।

साथ ही मैं आभार प्रस्तुत करती हूँ प्रस्तुत शोध ग्रंथ की कम्प्यूटर टाइपिस्ट सुश्री शबनम खान के प्रति जिन्होंने प्रस्तुत शोध कार्य को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने में बहुत मेहनत की है।

मैं उन सभी व्यक्तियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार से प्रस्तुत शोध कार्य में मेरी मदद की है।

अन्त में मेरे अन्तर्मन में रमण करती निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत शोध कार्य की सत्यता को अभिव्यक्त करती हैं।

मेरा आपकी कृपा से, सब काम हो रहा है।
करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है।

इन्हीं आभार पुष्पों के साथ................................

अनुसंधानकर्त्री

श्रीमती माला खेमानी

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या
	प्रमाण पत्र	
	आभार पुष्प	
	परिशिष्ट 01	
	परिशिष्ट 02	
	संदर्भ ग्रंथ सूची	
	प्रथम अध्याय : भूमिका	**1-25**
1.1.0	विषय का परिचय	
1.1.1	काव्य का स्वरूप एवं लक्षण	
1.1.2	संस्कृत आचार्यों के अनुसार काव्य लक्षण	
1.1.3	हिन्दी आचार्यों के अनुसार काव्य लक्षण	
1.1.4	पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार काव्य लक्षण	
	द्वितीय अध्याय : काव्यशास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विवेचना	**26-36**
2.1.0	प्रस्तावना	
2.1.1	काव्यशास्त्र से अभिप्राय	
2.1.2	काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा	
2.1.3	काव्यशास्त्र के प्रवर्तक भरतमुनि	
2.1.4	काव्यशास्त्र का प्रतिपादन युग	
2.1.5	काव्यशास्त्र का स्वर्ण युग	
2.1.6	काव्यशास्त्र की आवश्यकता विशिष्टता उपयोगिता	
2.1.7	निष्कर्ष	

क्र.सं.	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या
	तृतीय अध्याय : काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा	**37-57**
3.1.0	प्रस्तावना	
3.1.1	काव्य प्रयोजन से अभिप्राय	
3.1.2	काव्य प्रयोजन और संस्कृत काव्यशास्त्र	
3.1.3	हिन्दी काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन	
3.1.4	पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन	
3.1.5	निष्कर्ष	
3.1.6	काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा और संत कृपालु महाराज का साहित्य	
	चतुर्थ अध्याय : संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**58-97**
4.1.0	प्रस्तावना	
4.1.1	संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	
4.1.2	संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व परिचय	
4.1.3	संत कृपालु महाराज का कृतित्व परिचय	
	गद्य साहित्य	
	पद्य साहित्य	
	प्रवचन साहित्य	
4.1.4	निष्कर्ष	
	पंचम् अध्याय : संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता	**98 - 321**
5.1.0	प्रस्तावना	
5.1.1	समन्वयवादी विचारधारा का निरूपण	
5.1.2	विशुद्ध भक्ति तत्व का निरूपण	
5.1.3	राधा-कृष्ण लीला माधुर्य का निरूपण	
5.1.4	राधा तत्त्व का निरूपण	
5.1.5	वैदिक दार्शनिक तत्त्व का निरूपण	
	मानव जीवन का चरम लक्ष्य	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ संख्या
	लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग	
	गुरु तत्त्व का वास्तविक स्वरूप	
5.1.6	निष्कर्ष	
	षष्ठम् अध्याय : संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना	**322 – 334**
6.1.0	प्रस्तावना	
6.1.1	संत कृपालु महाराज के साहित्य में दार्शनिक संस्कृति	
	भारतीय वैदिक दर्शन	
	भारतीय मुस्लिम दर्शन	
	भारतीय सिक्ख दर्शन	
	भारतीय आनन्द दर्शन	
	भारतीय मानव दर्शन	
	भारतीय नारी दर्शन	
	भारतीय परम्परा दर्शन	
6.1.2	संत कृपालु महाराज के साहित्य में प्रकृति चित्रण	
6.1.3	संत कृपालु महाराज के साहित्य में कला संस्कृति	
6.1.4	निष्कर्ष	
	सप्तम् अध्याय : संत कृपालु महाराज के साहित्य में शैल्पिक वैशिष्ट्य	**335 –360**
7.1.0	प्रस्तावना	
7.1.1	संत कृपालु महाराज के साहित्य में भाषा सौष्ठव	
	भाषा में सरलता, कोमलता, चित्रात्मकता	
	भाषा में शब्द शक्ति का प्रयोग	
	भाषा में अलंकारों का प्रयोग	
	लोकोक्ति मुहावरों का प्रयोग	
	भाषा में संगीतात्मकता	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ संख्या
7.1.2	संत कृपालु महाराज के साहित्य में काव्य गुण	
7.1.3	संत कृपालु महाराज के काव्य में कल्पना सौन्दर्य	
7.1.4	संत कृपालु महाराज के साहित्य में व्यंग्यात्मकता	
7.1.5	रस निरूपण	
7.1.6	निष्कर्ष	
	अष्टम् अध्याय : शोध सारांश एवं निहितार्थ	**361 – 364**
8.1.0	प्रस्तावना	
8.1.1	संत कृपालु महाराज के साहित्य में समन्वयवादी विचारधारा	
8.1.2	संत कृपालु महाराज के साहित्य में विशुद्ध भक्ति तत्व	
8.1.3	संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा कृष्ण लीला माधुर्य	
8.1.4	संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा तत्व	
8.1.5	संत कृपालु महाराज के साहित्य में दार्शनिक तत्व	
8.1.6	संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना	
8.1.7	संत कृपालु महाराज के साहित्य में (अभिव्यक्ति कौशल) शिल्प सौन्दर्य	
	परिशिष्ट 01 : संत कृपालु महाराज का सामाजिक अवदान	**365–370**
	परिशिष्ट 02 : प्रख्यात हिन्दी साहित्यकारों द्वारा प्रेषित कतिपय सम्मतियाँ	**371–372**
	संदर्भ ग्रंथ–सूची	**373–386**

प्रथम अध्याय

भूमिका

प्रथम अध्याय

भूमिका

1.1.0 विषय का परिचय

निराकार ब्रह्म की अनुपम कृति यह साकार जगत है। इस पंच भौतिक जगत में मानव योनि सर्व प्रधान एवं अद्‌भुत चेतन तत्व है। ईश्वर प्रदत्त मानव देह समस्त चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। जैसा कि वेद व्यास ने कहा है–

"नृदेह माद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं संकल्पं गुरु कर्णधारं,
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्, भवाब्धि न तरेत् स आत्महा।"

वेदव्यास : श्रीमद्‌भागवत 11.20.17

अकारण मानव देह की प्राप्ति परम ब्रह्म की अपार करुणा एवं अनुपम कृपा का परिणाम है। जैसा कि गोस्वामी तुलसी दास ने रामचरित मानस में उद्‌घोष किया है–

"कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।"

रा.मा. : उत्तर काण्ड, दोहा सं.–43, चौ.–06

मानव देह की महत्ता को विश्व के प्रत्येक संत, प्रत्येक ग्रंथ एवं प्रत्येक पंथ ने एक मत से उद्‌भासित किया है। भारतीय अभिमत में वेदों से लेकर रामायण, गीता, भागवत आदि लगभग सभी मान्य धर्म ग्रंथों एवं भारतीय संत कवियों यथा सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, नानक आदि ने मानव देह को ईश्वर का अनुपम उपहार कहा है। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तन्मात्रा आदि अठारह तत्वों से निर्मित यह देह इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों है ? क्या मानव देह जगत की समस्त देहों में सर्व सुन्दर, ललित एवं आकर्षक है ? अथवा मानव देह, विश्व के समस्त जीवों में बलशाली है ? विश्लेषण करने पर निश्चय ही हम इसका उत्तर नकारात्मक ही पाएंगे।

यदि इस प्रश्न पर गहराई से विचार विमर्श किया जाए तो इसका सहज उत्तर हमें प्राप्त होता है कि मानव देह की श्रेष्ठता का आधार कर्म शक्ति, रचना शक्ति एवं

बुद्धि की प्रधानता है। मानव देह की श्रेष्ठता का आधार ईश्वर प्रदत्त बौद्धिक बल एवं कर्मशक्ति है। विश्व का लगभग प्रत्येक धर्म मानव देह को कर्मशील मानता है। मानव देह ही एक ऐसी देह मानी जाती है जो स्वयं द्वारा किए गए कर्मों के फल को प्राप्त करती है। वह फल चाहे सद् हो अथवा असद्। जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल प्राप्त होगा। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में लिखा है।

"जो जस करइ सो तस फलु चाखा।" *अयोध्याकाण्ड : दोहा-218, चौ.2*

सामान्य बोलचाल में भी कहा जाता है। जैसी करनी वैसी भरनी। अन्य जीव यथा शेर, चीता, कूकर, शूकर द्वारा किया गया अपराध, कर्म नहीं माना जाता है क्योंकि मानव देह को छोड़कर अन्य योनियाँ, भोग योनियाँ हैं, केवल एक मानव देह ही कर्म देह है। मानव द्वारा किया गया सद्कर्म या असद् कर्म दोनों ही भाग्य एवं परिणामकारी है। जैसा कि गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में मानव देह की कर्मशीलता के परिणाम को निम्न पंक्ति में अभिव्यक्त किया है-

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुभ देनी।

रा.मा. : उत्तर काण्ड, दोहा 120, चौ.5

अर्थात मानव देह में बुरे अशुभ कर्मों का परिणाम नरक का वास, अच्छे शुभ कर्मों का परिणाम स्वर्ग का वास और शुभ-अशुभ कर्म रहित कर्म का परिणाम मोक्ष अर्थात् मुक्ति। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मानव पर निर्भर है कि वह क्या चाहता है। वह जो चाहता है वैसा कर्म करके प्राप्त कर सकता है। इसी के साथ-साथ मानव देह की श्रेष्ठता का दूसरा आधार बौद्धिक शक्ति एवं रचना शक्ति है। ईश्वर ने मानव को बुद्धि प्रदान की है। मानव एक बुद्धि प्रधान प्राणी है। श्रीमद् भगवद् गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मैंने मानव को एक रथ दिया है। अर्थात यह मानव देह रथ है। इस रथ में पाँच घोड़े हैं अर्थात् ये ज्ञानेन्द्रियाँ, इन घोड़ों से लगी एक लगाम है अर्थात मन और उस लगाम को एक सारथी पकड़े हुए है अर्थात बुद्धि और उस रथ पर एक यात्री बैठा है अर्थात आत्मा। यह उस सारथी अर्थात् बुद्धि पर निर्भर है कि वह

रथ को कहाँ ले जाना चाहता है। अर्थात एक मात्र मानव देह ही बुद्धि प्रधान है जो श्रेष्ठ मार्ग एवं कर्मशक्ति का अवलम्ब लेकर जीवन के परम चरम लक्ष्य, आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

परमानन्द प्राप्ति जीव का सनातन अन्तिम लक्ष्य है। जैसा कि वेदों में कहा गया है। जीव आनन्द स्वरूप परम ब्रह्म का चेतन अंश है। अतः स्वाभाविक ही जीव का प्राप्य एवं गन्तव्य केन्द्र परमानन्द है और इस परमानन्द को एक मात्र मानव देह द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है। जैसा कि गीता में निरुपित है।

ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः।
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि। *गीतोक्ति 15-7*

इस प्रकार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त है कि जीव का सनातन स्वभाव आनन्द प्राप्ति है लेकिन माया के अज्ञानवश मानव इस पंच भौतिक मायिक जगत से आनन्द प्राप्ति का प्रयास करता है, किन्तु परिणाम वश उसे दुःख की ही प्राप्ति होती है। जिस प्रकार खाज को खुजलाने से वर्तमान काल में तो सुखानुभूति होती है लेकिन उसका विकराल रूप अत्यन्त कष्ट कारक होता है। उसी प्रकार भौतिक सुख एवं क्षण भंगुर वासना की पूर्ति से आनन्द तो मिलता है किन्तु वह आनन्द सीमित एवं क्षणभंगुर होता है। जैसा कि वेदव्यास ने कहा है-

यत्पृथिव्यां ब्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य पर्याप्तं तस्मातृष्णां परित्यजेत्।। *भागवत : 9.19.13*

अर्थात यदि विश्व के समस्त पदार्थ एक व्यक्ति को सहज में प्राप्त हो जाए तो भी वासनाओं का रोग उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाएगा। अतः केवल भौतिक उत्थान मात्र से अन्तरंग सुख शांति की समस्या हल नहीं हो सकती। जैसा कि वेदों में कहा गया है-

रसो वै सः। रसभ्य ह्व्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। *तैत्ति. उप. 2-7*

अर्थात सुख शांति आनन्द तो अन्तरंग तत्व है वह शांति आनन्द स्वरूप ईश्वर को प्राप्त करने पर ही प्राप्त हो सकेगी क्योंकि ईश्वर ही आनन्द है। उसे प्राप्त करके जीव आनन्दमय हो सकता है। इसी क्रम में मानव समुदाय को सद्मार्ग पर लाने एवं

उसके मूल स्वाभाविक लक्ष्य की ओर उन्मुख करने के दृष्टिकोण से इस धरा पर ऐसी विभूतियों का आविर्भाव होता है जो अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जन समुदाय को लाभान्वित कर सद्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते हैं। ऐसे ही व्यक्तित्वों में आता है कवि कर्म या काव्य सृजन। प्रारम्भ से ही काव्य एक ऐसा साधन बनकर उभरा है जिसने समय–समय पर समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप जनमानस को आनन्द से आप्लावित किया है। उदाहरण स्वरूप हम वेदों से लेकर अद्यतन काव्य परम्परा को देख सकते हैं। जब–जब मानव अपने कर्म–धर्म से च्युत होने लगता है। तब–तब कवि कर्म एवं काव्य सर्जन द्वारा मानव समुदाय का मार्ग दर्शन होता है। हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन में आदिकाल से अद्यतन साहित्य एवं साहित्यकारों का निष्पक्ष विश्लेषण करें तो हम इस पक्ष को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से भी पूर्व समस्त साहित्य के अवलोकन से यह बात सिद्ध होती है। संस्कृत साहित्य से लेकर बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, हिन्दी साहित्य में कबीर, सूर, मीरा, तुलसी, नानक आदि साहित्यकारों के काव्य सृजन इसके उदाहरण हैं।

वास्तव में किसी भी रचना या कृति के सृजन के पीछे कवि अथवा साहित्यकार का उद्देश्य ही यह होता है कि उसके द्वारा जन कल्याण का कार्य सिद्ध हो। जो रचना जनकल्याण के मन्तव्य को स्पष्ट नहीं करती उसे समाज बहिष्कृत करता है। ऐसे कई उदाहरण हमें अपने समाज में देखने और सुनने को मिलते हैं। एक वास्तविक श्रेष्ठ साहित्यकार की रचना जनमानस में अपनी विशेष छाप छोड़ती है। श्रेष्ठ साहित्य या सर्जन कभी भी केवल सामयिक नहीं होता अपितु साहित्य तो निरन्तर मानव का पथ प्रदर्शन करता है। ऐसे साहित्यकारों का साहित्य अथवा काव्य मानव समाज की सदा से ही अमूल्य निधि बनकर उभरता है। ऐसे काव्यकारों एवं रचनाओं के उदाहरण स्वरूप हम वाल्मीकि कृत रामायण, गोस्वामी तुलसी कृत रामचरित मानस, महाकवि सूर रचित सूरसागर, वेदव्यास कृत श्रीमद्भागवत आदि कवियों के कालजयी कृतियों को देख सकते हैं। इन रचनाओं के प्रकाशन एवं सर्जन के सैकड़ों हजारों वर्ष गुजरने के पश्चात् भी काल का प्रभाव इनके यश एवं कीर्ति पर नहीं पड़ा है। रामचरित मानस की चौपाइयाँ आज भी जन–जन की जिह्वा पर रमण करती हैं। आज भी उक्त साहित्यिक रचनाओं का आश्रय लेकर जन समाज अपने आप को अलौकिक आनन्द से सरोबार करता है।

काव्य एक ऐसा साधन है जो जन मानस को अलौकिक रस सागर में निमग्न कर एक निषेनी स्वरूप उत्कृष्ट लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। श्रेष्ठ काव्य एवं काव्यकार की जितनी महिमा का बखान किया जाए उतना कम है अर्थात श्रेष्ठ काव्य, शब्द निबद्ध होते हुए भी शब्दातीत है। काव्य अनुशंसा के उपरान्त यह प्रश्न स्वाभाविक ही उत्पन्न होता है कि कवि कौन है ? काव्य क्या है ? काव्य का उद्देश्य अर्थात प्रयोजन क्या है ? काव्य हेतु क्या है ? काव्य के गुण दोष क्या हैं ? आदि उक्त प्रश्नों का उत्तर विभिन्न समीक्षकों ने अपने–अपने मतानुसार दिया है। वास्तव में ईश्वर को समझने के लिए जो हाथी का दृष्टान्त दिया जाता है वह यहाँ सही उतरता है क्योंकि हर मत में एकांगिता है, समग्रता दिखाई नहीं देती। संभवतः इसी निष्कर्ष पर पहुँचकर मेदिनी कोषकार को यही कहना उचित प्रतीत हुआ कि जो कार्य कवि द्वारा सम्पन्न हो वही काव्य है। काव्य प्रणेता व्यक्ति कवि कहलाता है जिसे शास्त्रों ने मनीषी, परिभू, स्वयंभू कहा है क्योंकि जिस सृष्टि का निर्माण वह करता है वह ईश्वरीय सृष्टि से अधिक अलौकिक आनन्द देने वाली होती है। जहाँ परम मांगलिक करुणा की अजस्त्र धारा प्रवाहित रहती है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि काव्य की यह अजस्त्र धारा कब से प्रवाहित है ? काव्य का वास्तविक स्वरुप क्या है ? काव्य की विकास यात्रा कहाँ से चलायमान है आदि। अतः इन प्रश्नों के उत्तरार्थ निम्न निरुपण प्रस्तुत है।

विस्तार से काव्य के स्वरूप पर दृष्टिपात करना यहाँ नितान्त आवश्यक है। अतः काव्य के स्वरूप को निम्नानुसार देख सकते हैं–

1.1.1 काव्य का स्वरूप एवं लक्षण

प्राचीन काल से ही काव्याचार्य काव्य के स्वरूप एवं लक्षण को निरुपित करने का प्रयास करते रहे हैं। 'काव्य लक्षण' या काव्य स्वरूप का आशय उस परिभाषा से है जो सब तरफ से सुसंगत तथा काव्य की विशिष्टता की परिचायक हो। लक्ष्य से लक्षण की संगति होनी चाहिए तथा लक्षण में ऐसी बात नहीं रहनी चाहिए जिससे उसमें अव्याप्ति या अतिव्याप्ति नामक दोष आ जाए। वस्तुतः काव्य लक्षण को लेकर सभी आचार्यों के सम्मुख यह प्रश्न प्रबल रहा कि कौनसा वह तत्त्व है जो उसमें

प्राणभूत है और जिसमें इसकी स्वरूपतः अभिव्यक्ति होती है। इस दृष्टि से प्रत्येक काल में आचार्यों के चिन्तन तथा दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर रहा है। इस कारण समय–समय पर काव्य के जो लक्षण दिए गए उनमें न्यूनाधिक भेद अवश्य दिखाई देता है। आज भी इस विषय में चिन्तन चल रहा है। इन सभी काव्य लक्षणों का सम्यक अध्ययन करने के लिए भारतीय काव्यशास्त्र के संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों और पाश्चात्य विद्वानों पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

1.1.2 संस्कृत आचार्यों के अनुसार काव्य लक्षण

संस्कृत साहित्य में काव्य शास्त्र की परम्परा पर्याप्त लम्बी और अविच्छिन्न रही है। इस परम्परा में आचार्य भरत से लेकर पण्डित जगन्नाथ तक सभी काव्य शास्त्रकारों ने काव्य स्वरूप पर चिन्तन किया है। यहाँ इस परम्परा के प्रमुख आचार्यों के मतों का विवेचन दिया जा रहा है–

आचार्य भरत मुनि– भरतमुनि को संस्कृत–काव्य शास्त्र का आदि आचार्य माना जाता है। इनका 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ है। इस ग्रंथ में नाट्य और काव्य में कोई भेद न करके नाट्य कला का निरुपण किया गया है। इस तरह इसमें स्पष्टतः काव्य का कोई लक्षण नहीं बतलाया गया है। परन्तु काव्य कला की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है–

मृदु ललितं पदाढ्यं गूढ़ं शब्दार्थहीनं,
जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृत्ययोज्यम्
बहुकृतरसमार्ग संधिसन्धानयुक्तं
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्।।

नाट्यशास्त्र : अध्याय प्रथम

अर्थात् नाटक को देखने वालों के लिए शुभ काव्य वह होता है जिसकी रचना कोमल ललित पदों में की गई हो जिसमें शब्द और अर्थ गूढ़ हों, जिसको जनसाधारण सरलता से समझ सके, जो तर्क संगत हो, जिससे नृत्य की योजना की जा सके, जिसमें भिन्न–भिन्न प्रकार के रस स्वीकार किए गए हों और जिसमें कथानक

संधियों का पूरा निर्वाह किया गया हो। उक्त श्लोक में जिन तत्त्वों का उल्लेख हुआ है, वे नाटक के तत्त्व हैं, काव्य के नहीं फिर भी इसमें आचार्य भरत ने लालित्य, प्रसाद, रस और कथानक–योजना आदि अनेक तत्त्वों को काव्य रूप में स्वीकार किया है। देखा जाये तो काव्य लक्षण न होकर उसकी प्रशस्ति मात्र है। फिर भी इससे परवर्ती आचार्यों को काव्य स्वरूप का निर्धारण करने वाली विषयवस्तु अवश्य प्राप्त हुई है।

अग्निपुराणकार – अग्नि पुराण के निर्माण के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, फिर भी इतना तो निश्चित है कि काव्य का लक्षण सर्वप्रथम अग्निपुराण में ही उपलब्ध होता है, अग्नि पुराण ने काव्य का लक्षण दिया है–

'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवक्षिन्ना पदावली काव्यम्।' *अग्निपुराण :337/607*

अर्थात् अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में प्रकट करने वाली पदावली काव्य कहलाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि काव्य वक्तव्य–विषय को सुन्दर ढंग से प्रतिपादित करने वाला नपा–तुला पद समूहात्मक वाक्य है, 'संक्षेपाद' का समावेश इस लक्षण में इसलिए किया गया है कि काव्य में व्यर्थ के पदों का आडम्बर न तो उचित ही है और न अपेक्षित ही।

आचार्य भामह – इनका काल छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। इन्होंने काव्य को शब्द और अर्थ का समन्वय माना है–

'शब्दाथौ सहितौ काव्यम्' *काव्यालंकार : प्रथम परिच्छेद, 161*

इस लक्षण में शब्द और अर्थ के सहभाव अर्थात सामंजस्य पूर्ण स्थिति को काव्य कहा गया है। डॉ. नगेन्द्र ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि भामह ने शब्द और अर्थ के सामंजस्य को काव्य की संज्ञा दी है। 'सहितौ' शब्द का यही अर्थ है।

आचार्य दण्डी – दण्डी का काल सातवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने इष्ट का (अभीष्ट) वर्णन करने के लिए अभिप्रेत अर्थ से युक्त शब्द को काव्य का शरीर कहा है और इष्ट अर्थ से युक्त पद समुदाय को काव्य कहा है। यथा–

'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' *काव्यादर्श : प्रथम परिच्छेद 1–10*

अर्थात दण्डी का यह लक्षण मौलिक नहीं कहा जा सकता यदि अग्निपुराण को पूर्ववर्ती रचना माना जाए, जैसा कि अनेक आचार्यों का मत है तो कहा जा सकता है

कि यह अग्नि पुराण के लक्षण का ही संशोधित रूप है। क्योंकि इसमें 'संक्षेपाद्' और 'वाक्य' इन दो पदों को केवल हटा दिया गया है। इसका कारण यह है कि 'व्यच्छिन्न' तथा 'पदावली' इन दोनों पदों से भी 'संक्षेपाद्' तथा वाक्य के अर्थ निकल जाते हैं।

आचार्य रूद्रट – यद्यपि वामन की भांति इनका काल भी नवीं शताब्दी का आरम्भ है। किन्तु ये वामन से पूर्ववर्ती माने जाते हैं आचार्य रुद्रट ने भामह की भाँति शब्द और अर्थ का समन्वय ही काव्य माना है।

'ननु शब्दार्थों काव्यं' *काव्यालंकार : प्रथम अध्याय*

कुछ विद्वानों का विचार है कि शब्द के साथ अर्थ का समन्वय करके रुद्रट ने काव्य लक्षण में एक महान परिवर्तन उपस्थित किया, किन्तु यह इनकी मौलिक देन नहीं है। इससे पूर्व छठी शताब्दी के मध्यकाल में भामह ने सर्वप्रथम शब्द अर्थ के सम्मिलन को काव्य का लक्षण निर्धारित किया था। बाद में आचार्य दण्डी ने भी काव्य का लक्षण निर्धारित किया था।

आचार्य वामन – वामन का काल भी नवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है। इन्होंने काव्य में अलंकारों तथा गुणों का योग करके इस दिशा में एक मौलिक योग प्रदान किया है। इनके अनुसार काव्य शब्द, गुण तथा अलंकारों से सुसंस्कृत शब्दार्थ युगल का वाचक है।

'काव्यशब्दोऽयं गुणालंकार संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।'

काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ग्रंथ : 1.1.2

वामन ने काव्य की ग्राह्यता अलंकारों के कारण ही मानी है और अलंकारों को सौन्दर्य के पर्याय के रूप में ग्रहण किया है–

'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकारः।'

काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ग्रंथ : 1.1.1–2

यहाँ पर यह जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि काव्य में सौन्दर्य का क्या कारण हो सकता है। इसका समाधान करते हुए इन्होंने बताया है कि दोषों के त्याग और गुण तथा अलंकारों के ग्रहण करने से काव्य में वह सौन्दर्य उत्पन्न होता है।

आचार्य राजशेखर – 'काव्य मीमांसा' के रचयिता राजशेखर का समय नवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इन्होंने साहित्य शब्द का प्रयोग 'काव्य' के अर्थ में करते हुए बताया है कि शब्द और अर्थ के सहभाव से समन्वित विद्या, साहित्य विद्या कहलाती है।

‘शब्दार्थयोर्पथावत्सहभावेन विधा साहित्य विधा।’ *काव्य मीमांसा : अध्याय–2*

आचार्य कुन्तक – कुन्तक का समय ग्यारहवी शताब्दी का प्रारम्भ माना गया है। इन्होंने सुन्दर आल्हाद कारक, कवि व्यापार से युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ को काव्य कहा है।

“शब्दार्थो सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनि।
नन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाल्हादकारिणि।।” *वक्रोक्ति जीवि : 1/7 1 1*

आचार्य भोज – भोज का समय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। यद्यपि उन्होंने विशेष रूप से काव्य लक्षण की संयोजना अपने ग्रंथ में नहीं की है, तथापि प्रसंगवश एक पद ऐसा आ गया है, जिससे इनकी काव्य लक्षण विषयक मान्यता का स्पष्ट पता चल जाता है। यह पद है–

“निर्दोषं गुणवत् काव्यलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्ति प्रीतिंच विन्दति।।” *सरस्वती कण्ठा. : 1.2*

अर्थात दोष रहित, गुण सहित, अलंकारों से अलंकृत और सरस काव्य को बनाने वाला कवि कीर्ति के साथ सुख को भी प्राप्त करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भोज भी शब्दार्थ युगल को ही काव्य मानते हैं। क्योंकि शब्द मात्र को काव्य मानने पर ‘सरस’ विशेषण संगत प्रतीत नहीं होता। इसका कारण यह है कि इसका केवल शब्द से प्रत्युत संबंध नहीं होता ‘और’ अलंकारैः (अलंकारों से) इस प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि भोज का अभिप्राय शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों से हैं इसलिए बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

आचार्य विश्वनाथ – जयदेव ‘पीयूषवर्ष’ के पश्चात् काव्य शास्त्र के क्षेत्र में आचार्य विश्वनाथ का पदार्पण होता है। इनका समय चौदहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है। इन्होंने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के मतों का खण्डन किया। आचार्य मम्मट इनके खण्डन के प्रथम लक्ष्य रहे। मम्मट के काव्य लक्षण को लेकर इन्होंने अनेक आक्षेप किये जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है–

(क) अदोषौ – इस विशेषण में आचार्य विश्वनाथ ने अव्याप्ति दोष माना है, क्योंकि कोई भी रचना बिल्कुल दोष रहित नहीं हो सकती। उसमें कहीं न कहीं, कोई न कोई दोष निकल ही आएगा।

(ख) सगुणौ – इस विशेषण के प्रति आचार्य विश्वनाथ की यह आपत्ति है कि यदि गुण शब्द और अर्थ के धर्म माने जाए, तब तो यह विशेषण उपयुक्त है पर गुण तो एकमात्र इसके धर्म हैं। जैसा कि आचार्य मम्मट ने स्वयं स्वीकार किया है।

"ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादम इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरलचलस्थितयो गुणाः।।" *काव्य प्रकाश : प्र. उल्लास*

(ग) **'अलंकृती पुनः क्वापि'** – इस विषय में आचार्य विश्वनाथ का यह आक्षेप है कि काव्य प्रकाशकार का यह आग्रह भी ठीक नहीं क्योंकि अलंकृत शब्द और अर्थ, शब्द के रूप नहीं बल्कि एक मात्र रस के उत्कर्ष के हेतु हैं। काव्य की उत्कृष्टता के साधन हैं। इस प्रकार आचार्य मम्मट और अपने पूर्ववर्ती अन्य आचार्यों के काव्य लक्षण का खण्डन करके आचार्य विश्वनाथ ने अपना यह लक्षण दिया–

"वाक्यं रसात्मकं काव्यं" *– साहित्य दर्पण : प्रथम परिच्छेद*

रसात्मक वाक्य का अभिप्राय बताते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि रसात्मक वाक्य वह वाक्य है जिसका आत्म तत्व 'रस' होता है। अथवा जिसे जीवित जागृत रखने वाला एक मात्र सार तत्व 'रस' है।

गोविन्द ठाकुर – इनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है यद्यपि ये मूल रचनाकार नहीं हैं तथापि 'काव्यप्रकाश' पर लिखा हुआ 'प्रदीप' नामक भाष्य पर्याप्त मात्रा में मौलिक है। इन्होंने मम्मट के काव्य लक्षण पर 'अनलंकृती' के विषय में जो आक्षेप किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनका आक्षेप यह है कि मम्मट ने जो अलंकार रहित शब्द अर्थ को काव्य माना है वह उचित नहीं है। क्योंकि सरस स्थल भले ही अलंकार की अपेक्षा न रखता हो पर नीरस स्थल में अलंकार का होना आवश्यक है।

"यथा च यत्र रसाद्रीनामवस्थानां न तत्र स्फुटालंकारपेक्षा।" *प्रदीप (भाष्य)*

आचार्य पण्डित राज जगन्नाथ – पण्डित राज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा के अन्तिम आचार्य हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का मध्य माना जाता है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन किया है। आचार्य विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' का खण्डन करते हुए इन्होंने लिखा है कि यदि रस की काव्य में स्थिति अनिवार्य मान ली जाए तो जिन काव्यों में वस्तु वर्णन अथवा अलंकार वर्णन ही है, वे काव्य होते हुए भी काव्य की संज्ञा से वंचित हो जाएंगे और इस प्रकार महाकवियों की चिरकाल से आने वाली व्यावहारिक परम्परा उच्छिन्न हो जाएगी। इन्होंने रमणीय अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहा है।

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" *–रसगंगाधर : अध्याय प्रथम*

यहाँ रमणीयार्थ से तात्पर्य उस अर्थ से है जिसके ज्ञान से लोकोत्तर (अलौकिक) आनन्द की उपलब्धि होती है। पण्डित राज ने रमणीयार्थ का प्रतिपादन करते हुए उसे लोकोत्तर आल्हाद–गोचरता बतलाया है। इसका आशय यह है कि जिसके ज्ञान से लोकोत्तर अर्थात अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, वह अर्थ रमणीय है। काव्य से केवल यदि आनन्द की प्राप्ति ही मानी जाए तो फिर 'तुम्हारे घर में पुत्र उत्पन्न हुआ' आदि वाक्यों से जो आनन्द मिलता है, उसका काव्य से प्राप्त आनन्द से कोई पार्थक्य नहीं रह जाएगा। जबकि ऐसे वाक्यों को काव्य न मानना निर्विवाद सिद्ध है। इसलिए पण्डितराज के इस लक्षण की व्याख्या दूसरे शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है– जिस शब्द अथवा शब्दों के अर्थ की भावना करने से किसी अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, उसे काव्य कहते हैं। वस्तुतः पण्डित राज का यह लक्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें काव्य को शब्दनिष्ठ मानकर तथा लोक व्यवहार का साक्षी कहकर यह सिद्ध किया गया है कि काव्यत्व केवल शब्द में रहता है, अर्थ तथा उसकी रमणीयता तो काव्य का प्रतिपाद्य है जो शब्द के द्वारा ही प्रतिपादित होती है। अतः काव्य में शब्द ही मुख्य है। अर्थ तो उसकी एक विशेषता है। पण्डितराज ने अपने काव्य लक्षण में 'रमणीयता' का समावेश करके इसे पर्याप्त व्यापाक बना दिया है। इस शब्द के अन्तर्गत ध्वन्याचार्य आनन्दवर्धन का 'लोकोत्तर आल्हाद' वामन का 'सौन्दर्य', दण्डी

का 'इष्टार्थ' और कुन्तक का 'वक्रताजन्य' आल्हाद आदि सभी तत्व आ जाते हैं। इस प्रकार यह लक्षण सर्वाधिक पूर्ण माना जाता है। काव्य के स्वरूप एवं लक्षणों पर हिन्दी आचार्यों ने भी विचार प्रकट किए हैं। जो निम्नानुसार हैं–

1.1.3 हिन्दी आचार्यों के अनुसार काव्य लक्षण

हिन्दी में भी उन आचार्यों की परम्परा लम्बी है जिन्होंने काव्य के लक्षण एवं स्वरूप पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। रीतिकालीन आचार्यों ने यद्यपि पर्याप्त विस्तार से काव्य विवेचन किया है, तथापि इनके विवेचन में मौलिकता का अभाव है। यहाँ हिन्दी के आचार्यों के काव्य विषयक चिन्तन पर प्रकाश डालने के लिए इन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है। रीतिकालीन आचार्य तथा आधुनिक आचार्य।

(क) रीतिकालीन आचार्य – रीतिकाल से पूर्व हिन्दी साहित्य अपने दो कालों आदिकाल अथवा वीरगाथा काल और भक्तिकाल को पार कर चुका था। इन कालों में यद्यपि इनका विषय मुख्यतः वीर और भक्ति रस का प्रतिपादन ही रहा, तथापि यत्र–तत्र तत्कालीन कवियों के काव्य विषयक मत भी मिल जाते हैं। रीतिकाल प्रमुख रूप से काव्यशास्त्रीय काल था। इस काल में कवित्व शक्ति के साथ आचार्यत्व प्रतिभा का समन्वय भी था, इसलिए हिन्दी आचार्यों का रीतिकाल से ही प्रारम्भ माना गया है। रीतिकाल के प्रमुख आचार्यों ने काव्य की जो परिभाषाएँ की हैं, वे इस प्रकार हैं–

केशवदास – **'राजत रंच न दोषयुत कविता बनिता मित्र।**
बुंदक हाला परत ज्यों, गंगा घट अपवित्र।।
जद्यापि सुजति सुलच्छनी, सुबरन, सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजयी, कविता बनिता मित्त।।

ताते रुचि शुचि शोचि पचि कीजै सरस कवित्त।
केशव श्याम सुजान को, सुनत होई वश चित्त।।' *कवि प्रिया*

इस प्रकार केशव ने दोष रहित, अलंकार सहित और रसमयी रचना (शब्दार्थ) को काव्य माना है।

चिंतामणि – **'सगुणालंकारान सहित, दोष रहित जो होई।**

शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत विबुध सब कोई।'

कविकुलकल्पतरु : प्रथम प्रकरण

अर्थात सगुण, सालंकार और दोष रहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। यह मम्मट की परिभाषा का ही हिन्दी रूपान्तर है।

कुलपति – **'जग ते' अद्भुत सुख सदन, शब्द अरु अर्थ कवित्त।**

यह लच्छन मैने कियो, समुझि ग्रंथ बहु चित्त।।'

रस रहस्य : 1–16

अर्थात अलौकिक आनन्द के देने वाले शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

श्रीपति – **'शब्द अर्थ बिन दोष गुन अलंकार रसवान।**

ताको काव्य बखानिए श्रीपति परम सुजान।।' *काव्य सरोज*

अर्थात दोष रहित, गुण सहित, अलंकारों से विभूषित सरल शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

महाकवि देव – 'सब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमय सुजस सरीर।

चलत वहै जुग छन्द गति, अलंकार गंभीर। *काव्य रसायन*

अर्थात शब्द जीव है, अर्थ मन है, रस से युक्त यशस्वी उसका शरीर है। दोनों प्रकार के अर्थात मात्रिक और वर्णिक छन्द उसकी गति हैं और अलंकार उस गति की गंभीरता हैं।

सूरति मिश्र – बरनन मन रंजन जहाँ, रीति अलौकिक होइ।

निपुन कर्म कवि कौ जु तिहिं, काव्य कहत सब कोई। *काव्य सिद्धान्त*

अर्थात अलौकिक रीति से मनोरंजनकारी वर्णन ही काव्य है।

सोमनाथ – **'सगुन पदारथ दोष बिनु पिंगल मत अविरुद्ध।**

भूषण जुत कवि कर्म जो, सो कवित्त कहि बुद्ध।।'

रसपीयूषनिधि : 6–1

अर्थात काव्य वह कवि कर्म है जिसमें शब्द और अर्थ गुण सहित, दोष रहित और पिंगल (छन्द) के अनुसार हो।

भिखारीदास –'जाने पदारथ भूषन मूल रसांगपरांगन्ह मै मति झांकी।
सो धुनि अर्थन्ह वाच्यन्ह लै गुन शब्द अलंकृत सों रति पाकी।।'

काव्यनिर्णय : प्रथम उल्लास

संस्कृत काव्य शास्त्रीय परम्परा में जिस प्रकार जयदेव 'पीयूषवर्ष' ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के काव्य लक्षणों का संकलन करके अपना काव्य लक्षण बनाया था, उसी प्रकार भिखारीदास का भी वह काव्य लक्षण है। इनके अनुसार काव्य वह शब्दार्थ है जो रस, ध्वनि, गुण और अलंकारों से युक्त हो।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालीन आचार्यों के काव्य विषयक मत निम्नानुसार हैं–

(ख) आधुनिक कालीन आचार्य – हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में अनेक ऐसे आचार्य तथा विद्वान हुए हैं, जिन्होंने काव्य स्वरुप का निरुपण करने में वैज्ञानिक दृष्टि अपनायी है। ऐसे आचार्यों में निम्नलिखित आचार्यों के मत उल्लेखनीय हैं–

महावीर प्रसाद द्विवेदी – 'शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परमावश्यक है। यदि कविता में चमत्कार नहीं, कोई विलक्षणता नहीं तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।' *रसज्ञरंजन में संकलित : पृ.सं.–501*

श्यामसुंदर दास – 'काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करे। *साहित्यालोचन : पृ.सं. 29–90*

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते है।" इस परिभाषा में आचार्य शुक्ल ने 'रस' तत्व को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की है। यह परिभाषा पर्याप्त प्रसिद्ध रही है।

चिंतामणि : भाग 01 कविता क्या है, पृ.सं. 141

जयशंकर प्रसाद – छायावाद के आधार स्तम्भ जयशंकर प्रसाद ने भी 'काव्य' को विश्लेषित और परिभाषित किया है। प्रसाद जी के अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।

काव्य और कला तथा अन्य निबंध : पृ.सं.–17

महादेवी वर्मा – छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने 'असीम' तत्व को कविता कहा है। उनके शब्दों में कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत होती हैं।

– पं. गंगा प्रसाद पाण्डेय : महादेवी का विवेचनात्मक गद्य , काव्य कला–पृ. 21

सुमित्रानन्दन पंत – प्रकृति के सुकुमार छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत ने कविता के विषय में कहा है कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।...अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन, छन्द ही में बहने लगता है उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता तथा संयम आ जाता है। *श्री सुमित्रानन्दनपंतः 'गद्य–पद्य' : 'प्रवेश', पृ.–22*

उनके अनुसार– **'वियोगी होगा पहला कवि।**
आह से उपजा होगा गान।।
उमड़कर नयनों से चुपचाप।
बही होगी कविता अनजान। *–पल्लव : आँसू (01)*

इस प्रकार उन्होंने करुण श्रृंगार रस को काव्य का प्रधान लक्षण स्वीकार किया।

डॉ. नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी साहित्यकार विद्वान डॉ. नगेन्द्र ने 'रसात्मक अनुभूति को ही काव्य' कहा है। *डॉ. नगेन्द्र : काव्यचिंतन, पृ.सं.–17–18*

अन्य – हिन्दी के अन्य विवेचकों में मुंशी प्रेमचन्द, पं. नन्द दुलारे वाजपेयी, गंगा प्रसाद पाण्डेय आदि विद्वानों एवं लेखकों के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने काव्य स्वरूप पर अपना चिन्तन व्यक्त किया है। इन सभी ने काव्य में अनुभूति, रस एवं कल्पना तत्व का समावेश आवश्यक माना है।

भारतीय काव्य विषयक अभिमतों का विश्लेषण करने के साथ–साथ यदि हम पाश्चात्य विद्वानों के काव्य लक्षण अभिमतों का अध्ययन करें तो निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं।

1.1.4 पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार काव्य लक्षण

संस्कृत के आदि आचार्य भरतमुनि ने नाटक में अनुकरण की महत्ता को प्रतिपादित किया था। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी कुछ विद्वानों ने अनुकरण को काव्य का प्रमुख तत्व स्वीकार किया है। यूनानी आचार्य अरस्तु ने काव्य के लिए अनुकरण को महत्त्वपूर्ण माना है। इनके अनुसार काव्य एक कला है और अनुकरण इसका मौलिक तत्व है। यह अनुकरण भाषा के सहारे ही हुआ करता है। 'फिलिप सिडनी' ने भी काव्य को अनुकरण ही माना है। 'डेनिस' ने कविता को प्रकृति का अनुकरण बताया है। इस अनुकरण में संवेदनात्मक और संगीतात्मक भाषा ही माध्यम का कार्य करती है–

"Poetry is an imitation of nature by a pathetic and numeouse speech." *काव्यार्थ चिंतन : भालचन्द्र जयशेट्टी पृ.सं.–1–2*

कार्लाइल ने संगीतात्मक विचारों को कविता के लिए महत्वपूर्ण मानते हुए यह कहा है–

"for my own part, I find considerable meaning in the old vulgar distinction or poetry being metrical having sound in it being a song.......A musical thought is one spoke by a mind that has penetrated into the in most heart of thing directed the in most mystroy of it."

–डॉ. कृष्ण देव शर्मा : भा.पा. काव्यशास्त्र, पृ.सं.–119

अर्थात् जहाँ तक मेरा संबंध है, कविता के पुराने लोक साहित्य में जो छन्दोबद्ध रचना होती है, जिसमें स्वर साधना होती है, जो एक संगीत होता है, अत्यधिक तत्व दिखाई देता है।.........संगीतात्मक चिन्तन एक तत्व है जो ऐसे मस्तिष्क द्वारा व्यक्त किया जाता है, जो किसी वस्तु के हृदय में प्रविष्ट हो जाता है और उसके आन्तरिक

रहस्य को प्रकट कर सकता है। इन शब्दों में कार्लाइल का अभिप्राय यही है कि कवि किसी वस्तु की अन्तरात्मा में शीघ्रता से प्रवेश कर जाता है और उसके अन्तरम में छिपे हुए रहस्य को एकदम जान लेता है। इस बोध के बाद उसमें भावावेग जगता है। उसी के प्रभाव स्वरूप उसकी विचारधारा संगीत के रूप में आनायास ही फूट पड़ती है। वही कविता है, सच्चा काव्य है।

"विद्वान कवि कालरिज ने सर्वोत्तम शब्दों में सर्वोत्तम विधान को काव्य मानकर यह कहा है कि काव्य का ध्येय सत्य का नहीं वरन आनन्द का प्रदर्शन है।" उसका मूल रूप इस प्रकार है–

"Poetry is the anthesise of science, having for its immediate object pleasure, not sprit of all knowledge."

–डॉ. भागीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र ,पृ.सं.–11

प्रसिद्ध समीक्षक मैथ्यू आर्नाल्ड के अनुसार काव्य सर्वाधिक आनन्ददायी साधन और अभिव्यक्ति का पूर्ण रूप है। उसने कहा है–

"Poetry is simply the most delightful and perfect form of Ulterance that human words can reach."

विलियम हैजलिट के अनुसार काव्य भावना और कल्पना की सर्वोत्तम भाषा है–

"Poetry is the language of the imagination and the passions."

–डॉ. तारकनाथ बाली : पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ.सं.–161–172

'ईगर एलन पो' ने कविता, संगीत और गद्य का अन्तर स्पष्ट किया है। उन्होंने माना है कि जब संगीत के साथ आनन्द पूर्ण तत्व का योग हो जाता है तब वह कविता बन जाती है। अर्थ तत्व से हीन केवल संगीत है और संगीतहीन अर्थ तत्व केवल गद्य है। 'वाट्स इंटन' ने भावात्मक और संगीतात्मक भाषा में मानव मस्तिष्क की सघन तथा कलात्मक अभिव्यक्ति को काव्य कहा है। अभिव्यंजनावादी आचार्य क्रोंचे कला को (काव्य) को एक प्रकार का अन्तर्ज्ञान मानते हैं। इस विषय में इनका कथन है–

"Intution, vision, contemplation, imagination fancy, figuration, represention and so on are the words continully recurring like synonyms, when discoursing upon art."

–डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भा.पा. काव्यशास्त्र, पृ.सं.–120

डॉ. जॉनसन ने भी काव्य की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि कविता छन्दोमयी वाणी है– "Poetry is mutrical composition."

इस परिभाषा को स्वयं जॉनसन ने उचित नहीं माना और संभवतः इसलिए कविता की यह दूसरी परिभाषा दी–

"Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of season."

कहने का तात्पर्य यह है कि कविता वह कला है जो कल्पना की सहायता से विवेक द्वारा सत्य और आनन्द का संयोजन करती है।

–डॉ. भगीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र, पृ.सं.–13

महाकवि वर्ड्सवर्थ ने शांति के क्षणों में स्मृत भाव तथा प्रबल मनोवेग के सहज उच्छलन को काव्य स्वीकार किया है। महान कवि शैले के अनुसार काव्य कल्पना और भावावेशों की अभिव्यक्ति है। उनके मूल शब्द ये हैं।

"Poetry is the language of the imagination and passions."

–डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भा.पा. काव्यशास्त्र पृ.सं.–120

कार्लाइल के अनुसार काव्य संगीत पूर्ण विचार को कहते हैं। यह लक्षण अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त है।

"A Musical thought is one spoken by a mind that had penetrated into the inmost heart of the things deteched the inmost mystery of it."

–डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भा.पा. काव्यशास्त्र पृ.सं.–119

मैथ्यू आर्नल्ड काव्य लक्षण में वस्तु पर बल देने वालों में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी काव्य परिभाषा इस प्रकार है–

"Poetry is the criticism of life under the conditions fixed for such a criticism by the laws of poltic truth and poltic beauty."

–डॉ. तारकनाथ बाली पा.काव्यशास्त्र पृ.सं.–161–174

अर्थात काव्य सत्य तथा काव्य सौन्दर्य के सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित उपबंधों के अधीन जीवन की समीक्षा का नाम काव्य है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य, पाश्चात्य साहित्य से लेकर अद्यतन आधुनिक काल तक काव्य की परिभाषा देने का प्रयास अनवरत और अविच्छिन्न गति से चला आ रहा है। किसी भी आचार्य की परिभाषा अन्य आचार्य की परिभाषा से मेल नहीं खाती है। इसका कारण यह है कि काव्य में विभिन्न तत्व हैं और जिस आचार्य ने जिस तत्व अथवा जिन तत्वों को प्रधानता देना चाहा है, उन्हें अपने काव्य लक्षण में समाविष्ट कर दिया है। इन समस्त परिभाषाओं का यदि समन्वय कर दिया जाए तो रस, गुण, वृत्ति, अलंकार, रीति और ध्वनि आदि तत्व काव्य में निर्णित किए जा सकते हैं। क्योंकि काव्य का लक्ष्य अलौकिक आनन्द प्रदान करना है और इसकी प्राप्ति इन्हीं तत्वों के द्वारा होती है। यह कवि की प्रतिभा और रूचि वैचित्र्य पर निर्भर है कि वह किन तत्वों का प्राधान्य रस प्राप्ति के लिए आवश्यक समझता है। इस तरह संक्षेप में कहा जा सकता है कि सरस और छन्दोबद्ध होने पर लययुक्त अथवा आनन्दमयी शब्दार्थ युगल ही काव्य है। कवि का उदात्त कर्म ही काव्य है, जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। ऐसे शब्दार्थ का साकार उपस्थापन गुम्फन ही 'काव्य' अभिधा को मण्डित करता है।

इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध कार्य का प्रथम उद्देश्य काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा का अध्ययन करना निर्धारित किया गया है। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में काव्य शास्त्रीय परम्परा, स्वरूप, आवश्यकता, विशिष्टता, उपयोगिता का विश्लेषण

करते हुए काव्य प्रयोजन की सुदीर्घ काव्य परम्परा जिसमें संस्कृत, हिन्दी एवं पाश्चात्य काव्य प्रयोजन का विश्लेषण करते हुए काव्य प्रयोजन की समसामयिक अवधारणा का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य के अन्तर्गत संत कृपालु महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण किया गया है। जिसके अन्तर्गत संत कृपालु महाराज के जीवन परिचय, जन्म, परिवार, शिक्षा अर्जन, विवाह, वैराग्य जीवन का प्रारम्भ, जंगल से बस्ती की ओर जीवन, चित्रकूट सम्मेलन, कानपुर सम्मेलन, जगद्गुरूत्तम की उपाधि एवं उनके कृतित्व का विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य का द्वितीय उद्देश्य संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता का विश्लेषण करना निर्धारित किया गया है। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता का विश्लेषण किया गया है एवं उनके विस्तृत एवं रसमय काव्य रचना में व्याप्त साहित्यिक विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य का तृतीय उद्देश्य संत कृपालु महाराज के साहित्य में समन्वयवादी विचारधारा का अध्ययन करना निर्धारित किया गया है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में समन्वयवादी विचारधारा यथा राधा–कृष्ण भक्ति समन्वय, राम–कृष्ण भक्ति समन्वय, सर्व धर्म समन्वय, निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म में समन्वय अध्यात्म एवं भौतिक धारणाओं के समन्वय, विभिन्न दर्शन साहित्य में समन्वय, ज्ञान, कर्म, भक्ति में समन्वय, नवीन एवं पुरातन विचार धाराओं में समन्वय का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य का चतुर्थ एवं पंचम् उद्देश्य संत कृपालु महाराज के साहित्य में भक्ति तत्व का निरुपण निर्धारित किया गया है। शोध के अन्तर्गत संत कृपालु महाराज के साहित्य में भक्ति तत्व का अध्ययन किया गया है। जिसके अन्तर्गत भक्ति में निरन्तरता, भक्ति में अनन्यता, भक्ति में निष्कामता, भक्ति में रूप ध्यान, भक्ति में स्मरण, भक्ति में सदा अनुकूलता, भक्ति में ज्ञान वैराग्य की उत्पत्ति, साधना भक्ति से दिव्य भक्ति की प्राप्ति एवं गुरु तत्व के वास्तविक स्वरूप का अध्ययन कर गुरु भक्ति, मानव जीवन के लक्ष्य एवं लक्ष्य प्राप्ति के मार्गों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य का छठा उद्देश्य संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक एवं शैल्पिक वैशिष्ट्य का अध्ययन करना निर्धारित किया गया है। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय हिन्दू वैदिक दर्शन, भारतीय सिक्ख एवं मुस्लिम दर्शन, भारतीय आनन्द दर्शन, भारतीय आत्मा दर्शन, भारतीय मानव दर्शन, भारतीय नारी दर्शन, भारतीय गुरु महिमा दर्शन, भारतीय परम्परा दर्शन एवं कला संस्कृति का विश्लेषण किया गया है। साथ ही संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित साहित्यिक प्रवृत्तियों जैसे रसनिरूपण, भाषा सौष्ठव, अलंकार योजना, संगीत तत्व आदि का अध्ययन किया गया है।

इसी संदर्भ में कवि समाज का संयोजक एवं युग प्रहरी होता है। समाज की आवश्यकता समाज की कमजोरियों को पहचानते हुए तदनुसार काव्य एवं साहित्य का विषय चुनता है। कवि अथवा साहित्यकार वही है जो जन मानस एवं जन–जन के अन्तर्मन में प्रविष्ट कर समाज की अन्तर्आत्मा की आवाज सुने और उसी अनुसार शब्दार्थ युगल द्वारा जन मानस का मार्गदर्शन ज्ञान एवं रस वर्षा से कलुषित, भ्रमित, नीरस अन्तर्आत्माओं को रससिक्त करे। संत कृपालु महाराज का साहित्य, काव्य शास्त्र की समस्त गरिमाओं, परम्पराओं, लक्षणों से परिपूर्ण है। संत कृपालु महाराज का साहित्य हिन्दी साहित्य के स्वर्णिम युग भक्ति साहित्य की उज्ज्वल परम्परागत श्रृंखला में नवीन हीरक कड़ी के रूप में उद्भासित हुआ है।

सर्वमान्य तथ्य है कि कभी भी कोई भी काव्य धारा अचानक प्रकट नहीं होती और न ही सर्वथा सदा के लिए विलुप्त होती है कोई भी साहित्यिक परम्परा, महीन रूप से ही सही स्त्रावित होती रहती है तथा उचित संपोषक परिस्थितियाँ पाकर पुनः जागृत होती है। इसी क्रम में संत कृपालु महाराज का साहित्य भक्ति के लिए संजीवनी बनकर उभरा है। प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि क्या संत कृपालु महाराज के साहित्य को भक्ति काल का दोहरान कहा जाए ? क्या किसी काव्य परम्परा का दोहरान उचित है ? प्रति उत्तर में यह स्पष्ट किया जा सकता है कि संत कृपालु महाराज का साहित्य भक्ति कालीन परम्परा का दोहरान नहीं अपितु युगानुरूप, परिस्थितियों

की अनुशंसा है। वर्तमान जन मानस, जन समाज चाहे कितना भी आधुनिक, वैज्ञानिक क्यों न हो गया हो किन्तु अन्तर्मन समाज में व्याप्त अनीति, पापाचार, दुराचार, अत्याचार से दुःखी है। आधुनिक युग में मनुष्य ने भौतिक उन्नति तो कर ली किन्तु आध्यात्मिक, नैतिक उन्नति नहीं कर पाया है और यह सर्व अनुभव है कि भौतिक उन्नति जीवात्मा को विशुद्ध आनन्द प्रदान नहीं कर सकती क्योंकि जीवात्मा उस अलौकिक आनन्द से युक्त परमात्मा का अंश है। आत्मा का स्वरूप दिव्य एवं अविनाशी है। भौतिक पंच तत्वों से निर्मित जगत, आत्मा को दिव्य शांति एवं आनन्द जो कि प्रत्येक जीव का परम चरम लक्ष्य है नहीं दे सकता, क्योंकि समस्त जीव आनन्द स्वरूप सचिच्दानन्द परम ब्रह्म के अंश हैं, जैसा कि गीता में कहा गया है।

अंशो नाना व्यपदेशात्। *ब्रह्म सूत्र :2-3-42*

मैमवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। *-वेदोक्ति : 15-7*

अर्थात् जीव उसी आनन्द स्वरूप ब्रह्म का अंश है। अतः अपने अंशी के स्वभाव से युक्त होने के कारण स्वभावतः प्रत्येक जीव एक मात्र आनन्द ही चाहता है। इस प्रकार सुख शांति आनन्द तो अन्तरंग तत्व है। वह शांति आनन्द स्वरूप ईश्वर को प्राप्त करने पर ही प्राप्त हो सकेगी। वेदों में भी कहा गया है-

आनन्दो ब्रह्मोति व्यजानात्, आन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दें प्रयन्त्य भिसंविशन्ति।

- तैत्तिरीय उपनिषद् : 3-6

रसो वै सः। रसभ्य हव्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

- तैत्तिरीय उपनिषद् : 2-7

इसी संदर्भ में वर्तमान युग में काशी विद्वत्परिषत द्वारा मूल जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित पंचम मूल जगद्गुरु संत कृपालु महाराज का साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कलियुग के संताप से ग्रसित मानव मात्र को भक्ति पीयूष से आप्लावित कर जन-जन की अन्तर्आत्मा को दिव्य एवं परमानन्द से सरोबार करने वाला उनका समस्त साहित्य हिन्दी साहित्य ही नहीं अपितु समस्त विश्व साहित्य की

अमूल्य निधि है। संत कृपालु महाराज का साहित्य गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में समृद्ध है। उनका गद्य साहित्य सिद्धान्त निरुपण एवं विश्लेषण विधा से संबंधित है एवं पद्य साहित्य श्री राधाकृष्ण के लीलागान एवं सार तत्व निरुपण से निमज्जित है, उनके द्वारा रचित पद एवं कीर्तन आज क्लेष एवं विकार युक्त कलिमल ग्रसित समस्त चराचर जगत को परम शांति एवं अलौकिक सुख प्रदान कर रहे हैं। संत कृपालु महाराज का साहित्य समस्त चराचर जगत के लिए दिव्यानन्द का श्रेष्ठ स्त्रोत बनकर उभरा है। संत कृपालु महाराज आज के वैज्ञानिक युग की विभिषिकाओं के बीच भी दिव्य प्रेम, साधना एवं भक्ति करते हुए अपने स्वर सूर, मीरा, तुलसीदास, रसखान की स्वर लहरियों के साथ मिलाते हैं। उनकी वाणी में सूर का माधुर्य, मीरा की आत्मवेदना, रसखान की सरलता एवं सरसता है। दिव्य प्रेम से ओत–प्रोत उनके पद रस सागर एवं सौन्दर्य निधि श्री राधा–कृष्ण के दिव्य मद से हमें पूर्ण कर देते हैं।

संत कृपालु महाराज के साहित्य में तत्व निरुपण करते हुए स्पष्ट किया गया है कि श्री राधा–कृष्ण की प्रेम प्राप्ति हेतु किसी दुष्कर साधना की आवश्यकता नहीं है, अपितु सांसारिक विषय वासना से अपना मन हटाकर श्री राधा–कृष्ण के प्रति निष्काम प्रेम रखते हुए, पूर्ण शरणागत होकर, मानव अपने समस्त दुख भुलाकर, अपने परम चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है। जीव की कलुषित विचारधारा एवं कार्य ही उसकी मनोव्यथा का कारण बनते हैं। जब जीव को दीनता की अनुभूति होती है तब वह आराध्य की महानता देखकर आर्तवाणी से उन्हें पुकारकर, उनसे सहायता की याचना करता है और उन्हें प्राप्त करता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य का प्रत्येक छंद रस के समुद्र की भांति भक्ति की तन्मयता से तरंगित है। भगवत्प्राप्ति के उपायों में जप–तप आदि के कठिन उपायों से मुक्त, श्री राधा–कृष्ण के चरणों के प्रति सहज प्रीति ही सब उपायों में सुलभ, सरल एवं सरस उपाय है, इसी भगवद् पथ की ओर प्रेरित करने की शक्ति संत कृपालु महाराज के साहित्य में है, जिन्हें पढ़कर हृदय स्वत ही आनन्द, प्रेम और दिव्य मधुरिमा के रस में निमज्जित हो उठता है। राधा–कृष्ण की मधुर लीला का अनेक रूपों से इन सुललित पदों में वर्णन कर नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सम्पन्न भक्त प्रवर महान कवि एवं संत कृपालु महाराज ने अमूर्त ब्रह्मानन्द को मूर्तिमान कर दिया है।

इसी संदर्भ में रस एवं आनन्द प्राप्ति के साधनों में काव्य अथवा साहित्य सदा से ही प्रभावी साधन रहा है। समय–समय पर ऐसी दिव्य विभूतियाँ इस धरा पर अवतरित होती है, जो अपनी दिव्य वाणी एवं कर्म से समस्त जगत को ज्योतिर्मय बनाती हैं इसी क्रम में संत कृपालु महाराज का साहित्य एवं काव्य वर्तमान कालीन आधुनिक हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते हुए रसज्ञ रसिकजनों को दिव्य रस एवं ज्ञान से आकण्ठ पूरित कर रहा है। काव्य रचयिता होने के साथ–साथ संत कृपालु महाराज एक महान संगीतकार भी हैं। स्वरचित पदों को संगीतबद्ध भी उन्होंने ही किया है। उनके द्वारा रचित काव्य रचनाएँ आज प्रत्येक पाठक एवं श्रोताओं को सहज ही विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं।

अतः आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द श्री राधा–कृष्ण की निष्काम भक्ति का संदेश देना एवं सम्पूर्ण जगत को सत्य स्वरूप श्री राधा–कृष्ण की भक्ति से सरोबार कर, परोपकार के लक्ष्य से उत्प्रेरित होकर लिखा गया संत कृपालु महाराज का साहित्य सदा ही शोध/अनुसंधान योग्य विषय है।

प्रस्तुत शोध विषय "काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" सर्वथा नवीन एवं मौलिक प्रकरण है। इससे पूर्व संत कृपालु महाराज के साहित्य में कृष्ण भक्ति, संगीत तत्व, प्रवचन साहित्य आदि पक्षों पर शोध कार्य हो चुका है किन्तु काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के संदर्भ में अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। इसकी मौलिकता स्वतः सिद्ध है।

प्रस्तुत शोध विषय "काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्यः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" का मूल उद्देश्य काव्य प्रयोजन के संदर्भ में पंचम मूल जगद्गुरु श्री कृपालु महाराज के साहित्य का विश्लेषण करना है।

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु कुल छः उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

1. काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा का अध्ययन करना।

2. संत कृपालु महाराज के साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

3. संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता का अध्ययन करना।

4. संत कृपालु महाराज के साहित्य में समन्वयवादी विचार धारा का अध्ययन करना।

5. संत कृपालु महाराज के साहित्य में भक्ति तत्व का अध्ययन करना।

6. संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक एवं शिल्पगत सौन्दर्य का अध्ययन करना।

❖❖❖

द्वितीय अध्याय

काव्यशास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विवेचना

द्वितीय अध्याय

काव्य शास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विवेचना

2.1.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध कार्य की भूमिका में काव्य की परिभाषा, लक्षण एवं स्वरूप को विस्तार से जाना गया। प्रस्तुत अनुसंधान प्रकरण "काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" के द्वितीय अध्याय में काव्य शास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि की विवेचना प्रस्तुत है। प्रस्तुत अध्याय में काव्य शास्त्र से अभिप्राय, काव्य शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा, काव्य शास्त्र का स्वर्ण युग, काव्य शास्त्र की आवश्यकता विशिष्टता एवं उपयोगिता की विवेचना प्रस्तुत है। इसी संदर्भ में यह निर्विवाद सत्य है कि काव्य की रचना पहले होती है और उसका मूल्यांकन बाद में होता है। मूल्यांकन के लिए ही शास्त्रीय नियमों या मान मूल्यों की आवश्यकता पड़ा करती है। संसार की समस्त समृद्ध भाषाओं के पूर्ण विकास के उपरान्त उनके काव्य मूल्यांकन हेतु किन्हीं कसौटियों की आवश्यकता जब अनुभव की जाने लगी तो फलतः काव्य शास्त्र का उदय हुआ। ऐसा माना जाता है। काव्यशास्त्र के इसी संदर्भ में विस्तृत अध्ययन निम्नानुसार है।

2.1.1 काव्य शास्त्र से अभिप्राय

काव्य शास्त्र को 'काव्यनिकष', 'काव्य दर्पण' और 'साहित्य निकष' आदि नामों से भी जाना जाता है। काव्य शास्त्र का अभिप्राय सामान्यतः साहित्य की परीक्षा के लिए कसौटी पर निकष प्रस्तुत करना है। आज के वैज्ञानिक युग में ज्ञान के सभी क्षेत्रों में शास्त्र या विज्ञान शब्द जोड़ना स्वाभाविक सा हो गया है। सामान्यतः साहित्य सौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य की निरख परख करने वाले शास्त्र को काव्य शास्त्र कहते हैं। काव्य शास्त्र काव्य और शास्त्र दो शब्दों का समस्त पद है। काव्य शब्द का अर्थ कवि कर्म अर्थात् उसकी रचनात्मकता माना जाता है।

'शब्द कल्पद्रुम' के आधार पर कवि शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– सभी विषयों का ज्ञाता। भामह की मान्यता है कि प्रतिभा सम्पन्न और असाधारण शैली

में रचना करने वाले को कवि कहा जा सकता है। 'मम्मट' के अनुसार विशिष्टता एवं निपुणता सम्पन्न कवि कर्म का नाम काव्य है। ऋग्वेद में आये कवि शब्द के अर्थ ये हैं– क्रान्तदर्शी, कान्त कर्मा, गायक, स्तुतिकर्त्ता, मेधावी, ऋषि, प्राज्ञ और कान्त प्रज्ञा आदि। वस्तुतः काव्य शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाना चाहिए। संकुचित अर्थ को ग्रहण करने से अर्थ का अनर्थ होने की संभावना है। व्यापक अर्थ के अनुसार काव्य भावना प्रधान साहित्य का द्योतक है। काव्यशास्त्र में प्रयुक्त यही अर्थ लिए हुए हैं।

'शास्त्र' शब्द का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ दो धातुओं पर आधारित है। प्रथम 'शंस–शंसने' अर्थात बोध कराना। दूसरे 'शास–शासने'। इसका अर्थ है आज्ञा देना, शासन करना। इस आधार पर शास्त्र के दो कार्य हुए। शासन और शंसन, शंसन ज्ञान से संबंधित है और 'शासन' क्रिया से। इस प्रकार शास्त्र का अर्थ है, व्यवहार ज्ञान कराना और दूसरी ओर व्यवस्था संबंधी आदेश देना।

काव्य में सामाजिकों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब झलकता है और शास्त्र समाज में व्यवहृत सिद्धान्तों का संकलन मात्र होता है। काव्य भावों को प्रकट करता है और शास्त्र के द्वारा व्यवस्था परक विवेचन होता है। काव्य में सौन्दर्य बसता है और शास्त्र में उपयोगिता। काव्य में शब्द और अर्थ दोनों को महत्व प्राप्त होता है और शास्त्र में शब्द को। काव्य व्यंजना प्रधान है और शास्त्र अभिधा प्रधान। काव्य का जन्म कवि की प्रतिभा से होता है और शास्त्र का जन्म बुद्धि से होता है। इस प्रकार दोनों वाणी के भिन्न विषय हैं। **'द्वेवर्त्मनी गिरो देव्याः शास्त्रं च कवि कर्मच। प्रज्ञोत्पन्न तयोराजं प्रतिभोद्भवभन्तियम्।।'**

इस प्रकार काव्य शास्त्र का अर्थ काव्य अथवा साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन है और इसके अन्तर्गत काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य तत्व, काव्य स्वरूप, काव्य के भेदोपभेद, काव्यानुभूति के विभिन्न सिद्धान्त तथा काव्य के विभिन्न अंगों, गुण, अलंकार आदि की चर्चा होती है। इसे सूत्र में कहना चाहे तो साहित्य समीक्षा के सैद्धान्तिक विवेचन का नाम काव्यशास्त्र है। संसार की अधिकांश भाषाओं का प्राचीन साहित्य, काव्य के रूप में उपलब्ध होता है। ऐसी स्थिति में काव्य और साहित्य

पर्यायवाची है। शास्त्र शब्द की दो व्याख्यायें की जाती हैं- (1) एक तो 'शासनात् शास्त्रम्' अर्थात शासन करने वाला होने के कारण शास्त्र वह ग्रंथ है जो किसी कार्य में प्रवृत्त करने तथा किसी अन्य कार्य में निवृत्त होने की शिक्षा दे। (2) दूसरी व्याख्या वेदान्त दर्शन के आधार पर की जाती है जो इस प्रकार है– 'शंशनात् इति शास्त्रम्' अर्थात किसी गूढ़ तत्व को समझाने वाली विद्या को शास्त्र कहना चाहिए। इस प्रकार काव्य शास्त्र एक समस्त पद है जिसका विग्रह है– काव्य का शास्त्र अथवा साहित्य का शास्त्र। अंग्रेजी में इसके लिए पोइटिक्स या लिटरेरी क्रिटिसिज्जम जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। भारतीय साहित्य में इसके लिए साहित्य समीक्षा, साहित्य शास्त्र, साहित्य विधा, काव्य शिक्षा, काव्य शास्त्र और अलंकार शास्त्र आदि कई नाम प्रचलित रहे हैं और आज भी हैं।

कविराज आचार्य राजशेखर ने अपनी कृति 'काव्य मीमांसा' में वाङमय के दो रूप माने हैं– शास्त्र और काव्य। उनकी मान्यता है कि काव्य का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अथवा समस्त सूक्ष्म विशिष्टताओं एवं उसके सौन्दर्य की बारीकियों को समझने के लिए शास्त्र ज्ञान आवश्यक है। किसी काव्य की सम्यक छानबीन अथवा आस्वादन के लिए उसके गुण दोषों का विवेचन अनिवार्य होता है। यह विवेचन जिन आधारों पर किया जाता है उसे काव्य शास्त्र कहते हैं। काव्य शास्त्र का संबंध अनुशासनात्मक साहित्य से है क्योंकि यही शास्त्र काव्य अथवा साहित्य की विभिन्न विधाओं के नियम बनाता है और उन नियमों के आधार पर साहित्य को मर्यादित करता है। इस अनुशासनात्मक साहित्य का निर्माण सर्जनात्मक साहित्य के बाद ही हो पाता है।

2.1.2 काव्य शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा

भारतीय काव्य शास्त्र के प्रारम्भिक स्वरूप पर डॉ. कृष्ण देव शर्मा ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र में अपने ढंग से विचार किया है। उनके अनुसार भारतीय काव्यशास्त्र का मूल निश्चय ही वेदों में नहीं है। कतिपय विद्वानों ने ऋग्वेद में उपमा एवं अतिश्योक्ति आदि अलंकारों की प्रयुक्ति तथा उपमा शब्द की उपस्थिति के

आधार पर भारतीय काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक चिन्तन के बीज वैदिक वाङ्मय में देखे हैं, किन्तु यह सब अपुष्ट ऊहापोह मात्र है। प्राचीन व्याकरण शास्त्र में अवश्य ही अलंकार विवेचन के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। 'यास्क' ने उपमा के भेदोपभेद का वर्णन किया है। पाणिनी ने भी संबंधी उपमितज उपमान आदि शब्दों का व्यवहार किया है। इसके अतिरिक्त पतंजलि कृत महाभाष्य में भी इसकी चर्चा, मिलती है, किन्तु उक्त वैयाकरणों के कृतित्व में मूल दृष्टि व्याकरणनिष्ठ है। शास्त्रीय विवेचन का व्यवस्थित उपक्रम इनमें नहीं मिलता है। संदर्भ सर्वत्र व्याकरण ही रहा है काव्य नहीं। पण्डित बलदेव उपाध्याय ने वाल्मीकि को भारतवर्ष का प्रथम आलोचक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है तथा बड़ी गंभीरता से परवर्ती आलंकारियों को उनका ऋषि घोषित किया है किन्तु पण्डित जी की इस सम्मति को काव्यशास्त्र का इतिहासविद् वैज्ञानिक निष्ठा से ग्रहण नहीं कर सकता है। डॉ. रामचन्द्र वर्मा की धारणा है कि भारतीय काव्यशास्त्र का प्रणयन विक्रम के आरम्भ काल से अद्यावधि होता चला आ रहा है। 150 ई. पूर्व में निबद्ध रुद्रामन के गिरनार पर्वत पर अंकित शिलालेख में गद्य–पद्य आदि काव्य भेदों तथा स्फूट, मधुर, कान्त और उदार आदि काव्य गुणों के उल्लेख से ईसा पूर्व में काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन सिद्ध होता है। लगभग दो हजार वर्षों के निर्माण को अध्ययन की सुविधा के लिए डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने चार भागों में विभाजित किया है। (1) प्रवर्तनकाल (2) प्रतिपादन काल (3) व्याख्या काल (4) भाषा काल।

देखें–डॉ. कृष्ण देव शर्मा : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

देखें–निशा अग्रवाल : भारतीय काव्यशास्त्र, पृ.सं.–03

2.1.3 काव्य शास्त्र के प्रवर्तक भरतमुनि

वास्तविकता यह है कि इस देश में काव्यशास्त्रीय चिन्तन की शुरुआत नाट्य विवेचन के संदर्भ से ही हुई है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ही निस्संदेह भारतीय काव्यशास्त्र का पहला प्रामाणिक और व्यवस्थित ग्रंथ है। यह ठीक है कि स्वयं भरतमुनि ने भी अपने पूर्ववर्ती नंदिकेश्वर आदि आचार्यों का उल्लेख किया है किन्तु काव्यशास्त्र की व्यवस्थित और क्रमिक परम्परा भरतमुनि से ही प्रारम्भ होती है। प्रमुख रूप से भरतमुनि का नाट्य शास्त्र नाटक के ही विविध पक्षों का विवेचन प्रस्तुत करता

है किन्तु उसमें नाट्य सहयोगी तत्वों के रूप में संगीत और नृत्य आदि ललित कथाओं का भी विशद विवेचन मिलता है। ग्रंथ से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत ने रस को ही समस्त ललित कलाओं का प्राण तत्व माना है। नाट्यशास्त्र के छठे व सातवें अध्याय में रस एवं भाव का विस्तृत एवं गंभीर विवेचन मिलता है। सोलहवें अध्याय में वाचिक अभिनय के संबंध से चार अलंकारों, दस गुणों और दस दोषों का विवेचन भी किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य भरत ने एक साथ ही रस और अलंकार के व्यवस्थित विवेचन की पीठिका तैयार कर दी थी। नाट्यशास्त्र का वर्तमान रूप अनेक शताब्दियों की प्रतिभा का क्रमिक विकास प्रतीत होता है। इस विषय में डॉ. कृष्ण देव शर्मा की मान्यता का भी अपना महत्त्व है। डॉ. कृष्ण देव शर्मा ने भारतीय काव्यशास्त्र के विकास की चर्चा करते हुए अपना मत प्रस्तुत किया है और लिखा है कि रस के प्रति भरत का पक्षपात सर्वथा स्पष्ट ही है। क्योंकि उन्होंने नाट्य के सम्प्रेष्य भाव के अन्तर्गत आन्तरिक वस्तु के रूप में रस का आख्यान किया है, जबकि अलंकारों की चर्चा उन्होंने वागाभिनय के अन्तर्गत नाटक के बाहरी प्रसाधन के रूप में ही की है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में रस तो मूल सम्प्रेष्य वस्तु है, किन्तु अलंकार सम्प्रेषण के माध्यम का प्रसाधन मात्र है।

देखें–डॉ. कृष्ण देव शर्मा : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

देखें–निशा अग्रवाल : भारतीय काव्यशास्त्र, पृ.सं.–4–5

2.1.4 काव्य शास्त्र का प्रतिपादन युग

भरत के पश्चात लगभग पाँच सौ वर्षों तक काव्यशास्त्रीय चिन्तन की परम्परा के विकास को प्रमाणित करने वाली कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। ईसा की छठी शताब्दी के आस–पास यास्क, पाणिनी, पतंजलि आदि प्राचीन वैयाकरणों की रचनाओं में उपलब्ध अलंकार विषयक सामग्री एवं भरत कृत नाट्यशास्त्र के अलंकार विवेचन से प्रभावित व प्रेरित होकर काव्य में शब्दार्थ सौन्दर्य से प्रेरित व पुष्ट चमत्कार को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसको महत्त्व देने वाले आचार्यों में अधिकांश अलंकारवादी थे। इन अलंकारवादियों ने अलंकार को स्वतंत्र सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित किया। परिणामतः इसको अलंकार की परिधि में समाविष्ट कर लिया गया।

इस प्रकार भरत द्वारा प्रवर्तित रसवाद इन देहवादी आचार्यों के प्रबल मतवाद के समक्ष मंद पड़ गया। अलंकारवादियों ने रस की उपादेयता केवल नाट्य के परिवेश में ही स्वीकार की, काव्य में वे उक्ति चमत्कार को ही सर्वस्व मानते रहे।

देखें–निशा अग्रवाल : भारतीय काव्यशास्त्र, पृ.सं.–04

2.1.5 काव्यशास्त्र का स्वर्ण युग

छठी शताब्दी से नवी शताब्दी तक का समय अपने अन्तिम दिनों में भरत की रस धारा में स्नात हो गया। काव्य शास्त्र के इतिहास में नवी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक का समय स्वर्ण युग के नाम से अभिहित किया गया है। नवीं शताब्दी के मध्य में ध्वनि सिद्धान्त का प्रवर्तन हुआ। आनन्दवर्धन की प्रतिभा का वरदान रस, अलंकार और रीति की अपेक्षा ध्वनि सिद्धान्त को प्रमुखतः प्राप्त हुआ। इसकी महत्ता का कारण यह था कि इस सिद्धान्त में सभी सिद्धान्तों की सत्ता को समाविष्ट कर लिया गया था। आनन्दवर्धन के अनुसार वाच्यार्थ का चारुतर, चमत्कार पूर्ण एवं चर्वणीय व्यंग्यार्थ ही ध्वनि है। रस, अलंकार, रीति आदि समस्त काव्य तत्व इसी के व्यापक परिवेश में समाविष्ट हो जाते हैं। रस को पुनजीर्वित करने का श्रेय नवीं शताब्दी के भट्टलोल्लट और शंकुक को है। जिन्होंने भरत के रससूत्र की व्याख्या की है। इन व्याख्याओं के साथ ही संस्कृत रसशास्त्र की विवेचना पद्धति में दर्शन का आधार लिया जाने लगा। शंकुक के रचना के कुछ वर्ष बाद ही रुद्र भट्ट ने अपने ग्रंथ 'श्रृंगारतिलक' में नवरसों के अन्तर्गत श्रृंगार रस का विस्तृत विवेचन किया।

देखें– डॉ. भगीरथ मिश्र–काव्य शास्त्र

इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तन के समय तक रसविवेचन की एक सुनिश्चित परम्परा प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस युग में अलंकार और रस विवेचन के अलावा आचार्य वामन ने रीति सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। यों तो वामन से पूर्व रीति की सांकेतिक विवेचना भरत, अग्निपुराण कार, भामह और दण्डी कर चुके थे पर रीति को विशिष्ट अर्थ प्रदान करके 'रीतिरात्मा काव्यस्य' और 'विशिष्ट पद रचना रीति'[(काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 1–2–61)] कहकर व्यापक फलक पर प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य वामन को ही है। नवीं शताब्दी के मध्यकाल में

आचार्य आनन्दवर्धन ने संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रवर्तन और सर्वमान्य सिद्धान्त 'ध्वनि सिद्धान्त' का प्रवर्तन किया। उन्होंने व्याकरण शास्त्र के 'स्फोटवाद' से प्रेरणा पाकर ध्वनि सिद्धान्त की अभिनव कल्पना की तथा अलंकार रीति और रस की महत्ता को भी पीछे छोड़कर ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की। आनन्द वर्धन का 'ध्वन्यालोक' चार उद्योतों में विभक्त है। प्रथम उद्योत में प्राचीन आचार्यों की ध्वनि विषयक निष्पत्तियों का खण्डन, द्वितीय एवं तृतीय उद्योतों में ध्वनि के भेदोपभेद तथा चतुर्थ उद्योत में ध्वनि के प्रयोजन का सविस्तार वर्णन किया गया है। आनन्दवर्धन के बाद आचार्यों में भरत के सूत्र के व्याख्याता भट्टनायक और अभिनव गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भट्ट नायक ने भावकत्व और भोजकत्व नामक शक्ति की कल्पना करके ध्वनि के आधार पर व्यंजना के अस्तित्व को ही चुनौती दे डाली है। इस चुनौती में ही रस निष्पत्ति की नयी व्याख्या निहित है। जिसे मुक्तिवाद नाम प्राप्त है।

ग्यारहवी शताब्दी के समाप्त होने तक भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में ध्वनि सिद्धान्त पर्याप्त प्रसिद्ध हो गया था। दसवीं शताब्दी के अन्त में आचार्य कुन्तक हुए थे, जिन्होंने 'वक्रोक्ति' को काव्यात्मा कहकर स्वीकार किया। वक्रोक्तिवाद की महत्ता प्रतिपादित की। यद्यपि आचार्य कुन्तक की मान्यता में पर्याप्त दम था, किंतु यह दुर्भाग्य ही है कि उनके बाद वक्रोक्ति की महत्ता मात्र एक अलंकार विशेष के रूप में रह गई। कुन्तक के परवर्ती युग में ध्वनि को महत्व मिला, किन्तु इसी समय अलंकारवादी आचार्य भी हुए। यों 'काव्यशास्त्र' के रचयिता आचार्य मम्मट और 'रस गंगाधर' के रचयिता पण्डित राज जगन्नाथ ने सभी मतों का प्रत्याख्यान करके ध्वनि विषयक मत को ही अन्तिम रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। ध्वनिवाद के प्रबल समर्थक होने पर भी पण्डितराज ने रस की उपेक्षा नहीं की। ध्वनि के पाँच भेदों में रस ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करते हुए उसकी आत्मा के रूप में उन्होंने रस का अत्यंत मार्मिक विवेचन किया।

देखें–निशा अग्रवाल : भारतीय काव्यशास्त्र, पृ.सं.–5–7

देखें– डॉ. भागीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भरत से लेकर पण्डित जगन्नाथ तक संस्कृत काव्यशास्त्र की लम्बी और क्रमिक परम्परा दिखलाई देती है। इस परम्परा में यों तो सभी का योगदान विशिष्ट और उल्लेखनीय है किन्तु रस सिद्धान्त के तौर पर आचार्य भरत और ध्वनि सिद्धान्त के स्थापक और व्याख्याता आनन्दवर्धन का योगदान अधिक रहा है। भारतीय समीक्षा शास्त्र में रस और ध्वनि को जो मान्यता प्राप्त हुई, वह अन्य किसी सिद्धान्त और सम्प्रदाय को नहीं मिल सकी। इसका एक मात्र कारण यही रहा कि अन्य काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त काव्य के बाह्य रूप को सजाने संवारने में लगे रहे हैं, प्रत्येक काव्यशास्त्री का अपने-अपने सिद्धान्त को काव्यात्मा के बिन्दु तक ले जाना, इस बात का सूचक रहा है कि हर कोई अपनी मान्यता को सर्वोपरि रखना चाहता है और किसी भी एक स्थापित सत्य को यथावत् रूप में स्वीकार करना सह्य नहीं रहा। जो भी हो इतना निश्चित है कि संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा अत्यन्त व्यापक और सुदीर्घ है। इसी परम्परा से हिन्दी काव्यशास्त्र का जन्म और विकास हुआ है। एक प्रकार से संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा ही हिन्दी के कवि और आचार्यों द्वारा अनुमोदित की जाती रही है।

2.1.6 काव्य शास्त्र की आवश्यकता विशिष्टता एवं उपयोगिता

काव्यशास्त्र के अर्थ, परम्परा, विश्लेषण के बाद इसकी आवश्यकता एवं स्वरूपगत विशिष्टता का निर्णय करना आसान हो जाता है। काव्य शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसके द्वारा हम काव्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म और गूढ़ से गूढ़ मर्म को भी समझने में सफल होते हैं। अनेक बार आलोचक काव्य का रस लेते समय ऐसी बाते कह देता है कि उन तथ्यों की ओर स्वयं कवि या सर्जक का ध्यान नहीं जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्यशास्त्र कोरा विज्ञान नहीं है, यह केवल शास्त्र नहीं है इसे कला की कोटि में ही रखना आवश्यक है। कुछ विद्वानों की दृष्टि में तो काव्यशास्त्र सप्तम् वेदांग है। असल में यह सभी विधाओं का सार तत्व है। कवि, काव्य और प्रमाता तीनों ही काव्यशास्त्र का निर्णय करते हैं।

कवि मनीषी है, परिभू है और स्वयंभू भी है। वह क्रान्तदर्शी और सर्जक होता है। काव्य उसकी सृष्टि है और उसकी सृष्टि का आस्वादन करने वाला प्रमाता है। कवि और प्रमाता के बीच की कड़ी काव्य है। ऐसी स्थिति में कवि, काव्य और आस्वादक तीनों के विविध पक्षों का विवेचन और मूल्यांकन ही काव्यशास्त्र का प्रमुख विषय है। जीवन को सही रूप में चलाने और आकर्षक व मर्यादित बनाए रखने के लिए कुछ नियम उपनियम बनाए जाते हैं, उसी प्रकार काव्य को आकर्षक, सुन्दर और आल्हादक बनाने के लिए काव्यशास्त्र की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार काव्यशास्त्र का स्वरूप साहित्य के सिद्धान्त पक्ष से निर्मित होता है। उसमें काव्य निर्माण तथा काव्यानुभूति विषयक समस्त नये एवं पुराने कार्य कलापों व सैद्धान्तिक पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। काव्यशास्त्र की विशिष्टता इस बात में निहित है कि वह अपने स्वरूप में फलात्मक है। जो लोग उसे वैज्ञानिक पद्धति मात्र मानते हैं, वे भूल करते हैं। वह कोश शास्त्र न होकर काव्य का शास्त्र है या कहें कि काव्य और शास्त्र दोनों का सम्मिलित रूप है। उसमें काव्य की सी मनोहरता और भावुकता विद्यमान रहती है। यही इसकी सर्वोपरि विशिष्टता है।

राजशेखर ने साहित्य विधा अथवा काव्यशास्त्र को शिक्षा, कल्प तथा व्याकरण आदि के समान वेदों का एक अंग–सप्तमांश माना है। वेदों से लेकर लौकिक ग्रंथों तक के मर्म को समझने के लिए इस शास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। वर्तमान युग में काव्यशास्त्र काव्य के पर्याप्त निकट आ गया है। जीवन की व्याख्या करना और काव्य की विवेचना करना हमारा कर्त्तव्य है। इसके विवेचन के लिए काव्यशास्त्र की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि कुछ विद्वानों का मत है कि आज काव्यशास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं है। इस मत के समर्थकों की मान्यता है कि काव्य तो मानसिक उद्गारों की अभिव्यक्ति है। यह ठीक है कि युग बदल रहा है और मान्यताएँ बदल रही हैं, ऐसी स्थिति में यह तो माना जा सकता है कि काव्यशास्त्र के निश्चित किये गये प्रतिमानों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। उनमें युगानुकूल परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक है कि आधुनिक

साहित्य का मूल्यांकन तभी संभव है जबकि काव्यशास्त्र को युगानुरूप बनाया जाये। इतने पर भी काव्यशास्त्र की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता है। राजशेखर ने भी यह मत व्यक्त किया है।

राजशेखर ने काव्यशास्त्र को प्रसिद्ध चार विधाओं तर्क, नयी, वार्त्ता और दण्ड नीति का निस्पंद कह दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि आचार्य महोदय की दृष्टि में इसकी महत्ती उपयोगिता है। काव्य शास्त्र की उपयोगिता दोनों के लिए है– कवि के लिए भी और सहृदय के लिए भी। विल्हण कवि के अनुसार **'कुष्ठत्वमायाति गुण कवीनां साहित्य विद्याश्रम वर्जितेष'** अर्थात काव्यशास्त्र के अध्ययन में श्रम का परिहार करने वाले कवियों की कवित्शक्ति कुण्ठित हो जाती है। कवि को अपने ग्रंथों के लिए मर्मज्ञ पाठक की आवश्यकता रहती है। वह सरस्वती से एक ही याचना करता है।– **'अरसिकेषु कवित्व विवेदनं भा कुरु।'** भवभूति ने भी ऐसी ही बात कही है। **'उत्पस्यते मम कोऽपि समान धर्मा कालोह्वायं निरवधि विप्रला च पृथ्वी।'** सुबंधु ने लिखा है कि– 'जिस प्रकार बिना जाने हुए मालती की माला नेत्रों को सहज आकृष्ट करती है उसी प्रकार कवि की उक्ति काव्य तत्व से अपरिचित श्रोता के कानों में भी माधुर्य उड़ेल देती है। काव्य गुणों का परिचय काव्य शास्त्र से होता है और इस प्रकार कवि तथा पाठक के लिए इसकी समान रूप से उपयोगिता है।

साहित्यकार अपने प्रयोगों में स्वतंत्र है। वह नित्य नवीन प्रयोग करता है। शास्त्रकार का काम उन नवीन प्रयोगों का समीक्षात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है। यह क्रम निरन्तर अबाध गति से चलता रहता है और इसी क्रम की एक कड़ी प्रस्तुत काव्यशास्त्रीय अध्ययन है। वर्तमान युग में साहित्यकार नवीनता के कारण साहित्यशास्त्र के प्रचलित सिद्धान्तों के प्रति अनास्था व्यक्त करते हैं। वे स्वयं भी अपने मनोनुकूल सिद्धान्तों का निर्माण करते रहते हैं। यह स्थिति ठीक नहीं कही जा सकती है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि– "साहित्यकारों को अपने युग के आलोचकों की क्षमता पर भी विश्वास करना चाहिए।" अराजकता को दूर करना चाहिए। अराजकता का निराकरण सदा नियम, व्यवस्था और शासन शक्तियों से होता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य जगत में उत्पन्न अराजकता को दूर करने के लिए काव्य शास्त्र की आवश्यकता होती है। आज के सामाजिक के लिए काव्यशास्त्र की महत्ता को समझने के लिए, उसकी वर्तमान स्थिति को पाश्चात्य विचारक मैकमरे की दृष्टि से भी समझना आवश्यक है। उनका मत है कि आधुनिक युग में मनुष्य के ज्ञान में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई है। किन्तु उसके साथ तदनुकूल भावोत्कर्ष नहीं हुआ है। फलतः हम लोग बौद्धिकता की दृष्टि से सभ्य किन्तु भावनाओं की दृष्टि से आदिमकालीन होते जा रहे हैं। इस प्रकार आज के विज्ञान ने मनुष्य को भौतिकवादी बना दिया है, अनिवार्य रूप से सामाजिक प्राणी अकेला पड़ गया है। अहंवाद के विस्फोट, अर्थ और काम के मुक्त प्रवाह के फलस्वरूप उसके समस्त जीवन में असंतुलन और अनियंत्रण आ गया है। जीवन को संतुलित, नियंत्रित रूप देने का एक मात्र साधन काव्य है और काव्य के सम्यक बोध के लिए काव्यशास्त्र की उपयोगिता और आवश्यकता है। राजशेखर के अनुसार काव्यशास्त्र 'काव्य के मर्म को समझने में इस प्रकार सहायक है जिस प्रकार अंधकार के नाश में दीपक'।[(काव्य मीमांसा)]

2.1.7 निष्कर्ष

समग्र विवेचन के उपरान्त कह सकते हैं कि काव्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसका सहारा लेकर काव्य की समीक्षा, परीक्षा की जाती है। उसकी विशिष्टताओं का विश्लेषण किया जाता है। संक्षेप में काव्यशास्त्र का अर्थ साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन है। उसकी उपयोगिता असंदिग्ध और आवश्यकता स्वतः प्रमाणित है। काव्यशास्त्र की उपयोगिता साहित्यकार और सामाजिक दोनों के लिए है।

काव्यशास्त्रीय विवेचना में एक अनिवार्य बिन्दु अथवा तत्व है काव्य प्रयोजन। काव्य प्रयोजन की समीक्षा काव्य रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करती है। काव्य प्रयोजन का विश्लेषणात्मक अध्ययन अगले अध्याय में विस्तृत रूप से विवेचित है।

❖❖❖

तृतीय अध्याय

काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा

तृतीय अध्याय

काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा

3.1.0 प्रस्तावना

पूर्व अध्याय में काव्यशास्त्र से अभिप्राय के साथ काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा जिसमें काव्यशास्त्र के प्रवर्तक भरतमुनि, काव्यशास्त्र के प्रतिपादन युग, काव्यशास्त्र के स्वर्ण युग, काव्यशास्त्र की आवश्यकता, विशिष्टता, उपयोगिता का विवरण एवं विश्लेषण किया गया। प्रस्तुत अनुसंधान प्रकरण **"काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा एवं संत कृपालु महाराज का साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"** हेतु काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा को समझना अपरिहार्य है। प्रस्तुत अध्याय में काव्य प्रयोजन से अभिप्राय, काव्य प्रयोजन एवं संस्कृत काव्यशास्त्र, काव्य प्रयोजन एवं हिंदी काव्य शास्त्र, काव्य प्रयोजन एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र का अध्ययन एवं विश्लेषण करते हुए काव्य प्रयोजन की समसामयिक अवधारणा के अन्तर्गत संत कृपालु महाराज के साहित्य की विवेचना प्रस्तुत है।

3.1.1 काव्य प्रयोजन से अभिप्राय

उपयोगितावादी सोच मनुष्य के स्वभाव का ही एक अंश है। इसलिए जब से काव्य रचना आरम्भ हुई तभी से उस पर विचार करते हुए उसकी उपयोगिता के सवाल पर भी विचार किया जाने लगा। भारतीय काव्य चिन्तकों ने इस विवेचना को काव्य प्रयोजन के अन्तर्गत रखा। इस संसार में बिना प्रयोजन के मंदबुद्धि व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है अर्थात मानव के प्रत्येक कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई न कोई प्रयोजन अवश्य निहित रहता है। प्रयोजन से तात्पर्य उन उपलब्धियों से हैं जो किसी कार्य से प्राप्त होती हैं। जब मानव का प्रत्येक कार्य ही इन प्रयोजनों से परिचालित होता है तो फिर कवि भी अपने कर्म का अर्थात काव्य प्रणयन का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य मानता है। अतः काव्य रचना में कवि का जो उद्देश्य होता है वही काव्य प्रयोजन कहलाता है।

कविता पर विचार करते हुए तीन सत्ताएँ हमारे सामने आती हैं जिनके अन्तर्गत सम्पूर्ण काव्य पर चिन्तन रखा जा सकता है। ये तीन सत्ताएँ हैं– कवि, कविता और सामाजिकी। काव्य की उपयोगिता पर विचार करते समय समीक्षकों के सामने ये तीनों सत्ताएँ रही हैं। इस समीक्षा के अन्तर्गत यह विचार्य है कि कवि के लिए काव्य की क्या उपयोगिता है, सामाजिक व्यक्ति और समाज के लिए काव्य की क्या उपयोगिता है तथा कविता की निजी उपयोगिता क्या है यानी क्या कोई ऐसा तत्व भी है जो केवल काव्य में ही उपलब्ध हो सकता है।

सामान्यतः प्रयोजन का अर्थ उद्देश्य होता है। साहित्य और काव्य दोनों ही समानार्थक हैं। इस स्थिति का कारण यह रहा है कि काव्य शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इसी आधार पर काव्य के प्रयोजन एक प्रकार से साहित्य के प्रयोजन बन जाते हैं। साहित्य प्रयोजन से अभिप्राय सामान्य रूप से काव्य को अथवा साहित्य को जीवन की अभिव्यक्ति माना जाता है। जब साहित्य जीवन की अभिव्यंजना है और जीवन सौद्देश्य है तो फिर साहित्य या काव्य निरुद्देश्य कैसे हो सकता है ? जब हम साहित्य के प्रयोजन की चर्चा करते हैं तो, हमारा अभिप्राय यही होता है कि साहित्य सर्जन का मूल उद्देश्य क्या है ? और किस सीमा तक यह जीवन से संबंधित दिखलाई देता है ? जीवन का लक्ष्य ही काव्य का लक्ष्य है। काव्य प्रयोजन से हम यही अर्थ ग्रहण कर सकते हैं कि साहित्यकार या सर्जन ने किस उद्देश्य, किस लक्ष्य और किस मंतव्य को ध्यान में रखकर अपनी रचना को आकार दिया है। भारतीय आचार्यों ने प्रारम्भ से ही काव्य प्रयोजन पर अपने विचार प्रकट किये हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के सबसे प्रथम आचार्य से लेकर आज के वैज्ञानिक युग तक जो काव्य प्रयोजन प्रस्तुत किए गए हैं, उन्हें हम तीन शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं।

1. साहित्य प्रयोजन और संस्कृत काव्य शास्त्र।
2. साहित्य प्रयोजन और हिन्दी काव्य शास्त्र।
3. साहित्य प्रयोजन और पाश्चात्य काव्य शास्त्र।

उपर्युक्त विवेचन निम्नानुसार है–

3.1.2 काव्य प्रयोजन और संस्कृत काव्य शास्त्र

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों की यह विशेषता रही है कि प्रायः सभी ने अपनी ग्रंथ रचना का प्रयोजन अवश्य बताया है, साथ ही संस्कृत के आचार्यों ने यह भी बताया है कि उसके ग्रंथ का प्रतिपाद्य क्या है ? उस ग्रंथ का विषय प्रतिपादन या वस्तु से क्या संबंध है ? उस ग्रंथ को पढ़ने का अधिकारी कौन है ? इस प्रकार विषय, प्रयोजन, सम्बद्धतत्व और अधिकारी का विवेचन प्रत्येक ग्रंथकार के लिए प्रायः एक नियम बन गया था, जिसका प्रत्येक ग्रंथकार पालन करता था। संस्कृत साहित्य में इस नियम को 'अनुबंध चतुष्ट्य' कहा जाता है। इसी परम्परा के आधार पर काव्य शास्त्र में भी यह प्रवृत्ति आदिकाल से ही दिखाई पड़ती है कि ग्रंथकार काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन करने से पूर्व काव्य के प्रयोजन बताए। भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से काव्य प्रयोजन पर विचार किया है। उन्हें जानकर ही कोई अन्तिम निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

भारत में काव्य प्रयोजन के संबंध में जो धारणाएँ प्रचलित हैं उन्हें संस्कृत साहित्य के संदर्भ से मम्मट पूर्व काव्य प्रयोजन,स्वयं मम्मट का काव्य प्रयोजन जैसे विचार बिन्दुओं से समझ सकते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के रचयिताओं ने काव्य प्रयोजन के संबंध में विस्तार से विचार किया है। वस्तुतः काव्य किस प्रयोजन के लिए लिखा जाता है ? यह एक विवादास्पद प्रश्न रहा है। किसी भी कार्य के पीछे उसके कर्ता की कोई भावना अथवा उनका कोई न कोई उद्देश्य रहता है। यों भी मनुष्य की प्रवृत्ति हेतु मूलक होती है। ये हेतु ही मनुष्य को कार्य की ओर अग्रसर करते हैं। काव्य की सर्जना के पीछे कर्ता का जो उद्देश्य होता है, वही काव्य का प्रयोजन कहलाता है। संस्कृत साहित्य में 'अनुबंध चतुष्ट्य', प्रयोजन, वस्तु संबंध तथा अध्ययन अधिकारी निर्देशन की परम्परा संस्कृत कवियों की प्रयोजन कथन के प्रति सजगता का सूचक है। संस्कृत के सभी आचार्य इस बात के लिए आग्रहशील रहे हैं कि काव्य का प्रयोजन क्या है ? और इस प्रयोजन से कौन प्रभावित होते हैं ?

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्राय, सभी आचार्यों ने काव्य प्रयोजन का उल्लेख किया है। उनका क्रमशः विवेचन निम्नानुसार है-

आचार्य भरतमुनि – संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि के काल तक काव्य और नाटक में कोई अन्तर नहीं था। इसलिए उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए काव्य प्रयोजन की ओर इस प्रकार संकेत किया है–

> **"दुःखार्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनायं्।**
> **विश्रांति जननं काले नाट्यभेतद् भविष्यति।।**
> **धर्म्यं यशस्य मामुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।**
> **लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।"**

नाट्यशास्त्र : 1.113–15

अर्थात यह नाट्यशास्त्र दुखों से श्रम से और शोक से पीड़ित लोगों के लिए इस संसार में सुख प्राप्ति का साधन बनेगा। स्पष्ट है कि भरतमुनि जनहित को नाट्य या काव्य का प्रयोजन मानते हैं। इसी प्रसंग में उन्होंने कुछ और प्रयोजनों का भी उल्लेख करते हुए कहा है कि धर्म, यश आयु, हित, ज्ञान बुद्धि का विकास और उपदेश आदि काव्य के प्रयोजन हैं। इसमें यश की प्राप्ति तो कवि को होती है। धर्म की प्राप्ति कवि को भी हो सकती है और सहृदय को भी। शेष सभी तत्वों का संबंध प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक के साथ है। इन सभी तत्वों पर विचार करते हुए हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भरत ने नाटक की उपयोगिता प्रधान रूप से लोक कल्याण में ही मानी है। यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि नाट्यशास्त्र की रचना के विषय में भरत ने यह कहा है कि उसकी रचना चारों वेदों के आधार पर की गयी है तथा 'नाट्यशास्त्र' पाँचवाँ वेद है। इसी से भरत का मत स्पष्ट हो जाता है कि जैसे वेदों से मनुष्य का कल्याण होता है जिसमें विवेक का विकास आदि भी सम्मिलित है उसी प्रकार नाटक से भी मनुष्य का कल्याण होता है।

इस विवेचन में एक तत्व का अभाव लक्षित होता है और वह तत्व है, रस। रस के प्रसंग में भरत से स्पष्ट कहा है कि रस के बिना नाटक में कोई अर्थ प्रवर्तित नहीं होता। यदि रस नाटक की सार्थकता का आधार है तथा नाटक के प्रयोजनों के अन्तर्गत रस का उल्लेख भी होना चाहिए मगर भरत की रस संबंधी धारणा आस्वाद रूप नहीं है। वे मानते हैं कि नाटकों में रस विभावादि के संयोग से निष्पन्न होता है तथा

विभावादि तो नाटक की सामग्री भी है और अभिनव के उपादान भी इसलिए रस का उल्लेख करने का यह अर्थ होता है कि नाटक की सार्थकता ही नाटक का प्रयोजन है। स्पष्टतः ऐसा कहना बेमानी है। मगर भरत ने लोक के कल्याण हित, बुद्धि का विकास, लोकोपदेश आदि पर बल देकर नाटक की उपयोगिता के बारे में एक ऐसे प्रयोजन का उल्लेख किया है जिसे अनेक आलोचक आज भी मानते हैं।

आचार्य भामह – भरतमुनि के पश्चात आचार्य भामह का क्रम माना जाता है। इन्होंने अपने 'काव्यलंकार' ग्रंथ में काव्य प्रयोजनों का उल्लेख दो आधारों पर किया है। कवि और पाठक को आधार मानकर और केवल कवि को आधार मानकर। कवि और पाठक को आधार मानकर इन्होंने काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताए हैं–

"धर्मार्थ काममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिवेषणम्।।" *काव्यालंकार : 1.12*

अर्थात सत्काव्य के अनुशीलन अथवा रचना से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा कलाओं में विलक्षणता प्राप्त होती है। साथ ही कीर्ति और आनन्द की भी उपलब्धि होती है। इस प्रकार भामह के अनुसार काव्य के प्रयोजन हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कलाओं में विलक्षणता, कीर्ति और प्रीति। केवल कवि को दृष्टि में रखकर इन्होंने काव्य के प्रयोजन बताते हुए कहा है कि स्वर्गवासी हो जाने पर सत्काव्यों के रचयिताओं का रमणीय काव्य शरीर निर्भय ही रहता है और जब तक उस कवि की स्थायी कीर्ति पृथ्वी तथा आकाश में व्याप्त है, तब तक वह भाग्यवान देव–पद को अलंकृत करता है। अतः भूलोक की स्थिति–पर्यन्त यश चाहने वाले कवि को सब विषयों का ज्ञान करके काव्य रचना का प्रयास करना चाहिए। कहने का भाव यह है कि सत्काव्य की रचना से कवि अमर यश को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार भामह के अनुसार कीर्ति तथा अर्थ का संबंध कवि से है– श्रेष्ठ काव्य रचना से कवि को यश तथा धन की प्राप्ति होती है। तथा शेष तत्वों का संबंध सामाजिक से है। यहाँ प्रीति का अर्थ है आनन्द। भामह का काव्य प्रयोजन संबंधी मत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसलिए संस्कृत के अनेक काव्यशास्त्रियों ने चतुर्वर्ग का उल्लेख किया है। परन्तु इस मत की ओर हिन्दी की आलोचना में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया

गया। मगर इससे यह स्पष्ट है कि भारतीय काव्य चिन्तन में एक धारा ऐसी रही है जो जीवन के लक्ष्यों को ही काव्य का भी लक्ष्य मानती रही जिसका मूल अभिप्राय यह है कि काव्य व्यक्ति की सर्जना के स्तर पर सम्पूर्ण जीवन का ही पर्याय है।

आचार्य दण्डी – 'काव्यादर्श' में आचार्य दण्डी ने वाणी की महत्ता का विवेचन करते हुए लिखा है कि शब्द तीनों लोकों को ज्ञान का प्रकाश देने वाला तथा कवि और वर्ण्य राजा आदि के यश को स्थिरता प्रदान करने वाला है।

इदमंधं तमः कृतस्वं जाएत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाहव्यं ज्योतिरा संसाराद्ध दीप्यते।
आदिराजयशोबिम्ब आदर्श प्राप्य वाङ्मयम्।
तेषायसन्निधरानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति।

काव्यादर्श : प्रथम परिच्छेद

आचार्य वामन – आचार्य वामन ने कर्ता की दृष्टि से काव्य प्रयोजनों पर विचार किया है। इनके अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं– एक है प्रीति या आनन्द साधना जो दृष्ट प्रयोजन है और दूसरा है कीर्ति जो अदृष्ट प्रयोजन है।

काव्य सद्दृष्टादृष्टार्थ प्रीति कीर्ति हेतु त्वात्। *काव्यालंकार सूत्रवृत्ति : 1/3*

वामन का आशय यही है कि कवि जब तक जीवित रहता है अपने काव्य से आनन्द का उपभोग करता है, जो उसके लिए इष्ट या प्रत्यक्ष प्रयोजन है। मृत्यु के पश्चात् उसकी अमर कीर्ति लोक में काव्य के द्वारा ही विद्यमान रहती है। यह उसके लिए अदृष्ट या अप्रत्यक्ष प्रयोजन है। प्रीति नामक काव्य प्रयोजन सहृदय को आधार मानकर भी स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि सहृदय भी काव्यजन्य आनन्द का उपभोग करता है। वस्तुतः कवि भी सहृदय के रूप में ही अपने काव्य के आनन्द को प्राप्त करता है।

आचार्य रुद्रट – आचार्य रुद्रट ने भी चतुर्वर्ग–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को काव्य का प्रयोजन व्यक्त किया है–

ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमश्चतुर्वर्गे।
लघु मृदु च नो रसेभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्यः।। *काव्यालंकार : 12.1*

आचार्य भोजराज – भोज ने काव्य रचना के दो प्रयोजन बताए हैं– यश और आनन्द की प्राप्ति। उनका कथन है कि दोषों से रहित, गुणों से युक्त, अलंकारों से अलंकृत तथा रस, संयुक्त काव्य की रचना करता हुआ कवि कीर्ति और प्रीति को प्राप्त करता है।

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसान्वितम् कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।। *सरस्वतीकण्ठाभरण :1.2*

रामचन्द्र–गुणचन्द्र – 'नाट्यदर्पण' के रचनाकार रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में काव्य को चतुर्वर्ग का साधन बताया। काव्य के द्वारा धर्म, अर्थ और काम तो प्राप्त होते ही हैं, धर्म की प्राप्ति के कारण मोक्ष भी प्राप्त होता है। उन्होंने धर्म, अर्थ, काम को प्रधान फल मानते हुए मोक्ष को गौंण फल माना है।

धर्म–काम–अर्थाः व्यस्तसमस्ता सत् प्रधान फलं यत्र।
मोक्षस्तु धर्म कार्यत्वात् गौणम् फलम्। *नाट्यदर्पण :1.5*

आनन्दवर्द्धन – ध्वनि प्रस्थापक आचार्य आनन्दवर्द्धन ने काव्य प्रयोजन का ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना के प्रसंग में संकेत दिया है।

"तेन ब्रूनः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरुपम्।" *ध्वन्यालोक : 1–16*

अर्थात् ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना के द्वारा सहृदयों, काव्य मर्मज्ञों की मन की प्रसन्नता के लिए ध्वनि के स्वरूप का निरुपण किया गया है। इससे स्पष्ट है कि आनन्दवर्द्धन के अनुसार केवल प्रीति (आनन्द) ही काव्य का प्रयोजन है। केन्द्र यह नहीं, वरन् काव्यार्थ तत्व के साक्षात् करने वाले सहृदय जन के हृदय की स्वाभाविक आनन्दाभिव्यक्ति है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि आचार्य आनन्दवर्द्धन ने विगलित वेद्यान्तर आनन्द को सकल प्रयोजनों में श्रेष्ठ बताया है। इस प्रकार ये रसास्वाद को सर्व मूर्धन्य प्रयोजन मानते हैं।

अभिनव गुप्त – अभिनव गुप्त ने कवि और सहृदय दोनों की दृष्टि से प्रीति को ही प्रधान काव्य प्रयोजन माना है। उसके अनुसार कवि को दो फल प्राप्त होते हैं। कीर्ति और प्रीति। कीर्ति से भी प्रीति का ही सम्पादन होता है। सहृदय को व्युत्पत्ति और प्रीति

दो की प्राप्ति होती है। इनमें भी व्युत्पत्ति की अपेक्षा प्रीति का ही प्राधान्य है। इसलिए 'कान्ता सम्मित उपदेश' को ही अधिक महत्त्व दिया गया है।

देखें –डॉ. तारकनाथ बाली : भारतीय काव्यशास्त्र, पृ.सं.–82

राजशेखर – काव्य मीमांसाकार राजशेखर ने कर्ता और सहृदय दोनों को ही आधार मानकर काव्य प्रयोजनों पर विचार किया है। इसका मत है कि कवि की बुद्धि प्रगल्भ होती है, वह उसी के प्रभाव से रसिकों व सहृदयों को रसानुभूति कराता है। यही कवि की अमर कीर्ति का कारण होता है। कहने का भाव यह है कि राजशेखर के अनुसार सहृदय की दृष्टि से काव्य का प्रयोजन है आनन्द की प्राप्ति और कवि की दृष्टि से काव्य का प्रयोजन है अक्षय कीर्ति। *देखें–वही....*

आचार्य कुन्तक – कुन्तक ने इस विशाल परम्परा से तनिक हटकर काव्य प्रयोजनों का विवेचन किया है। उन्होंने लिखा है कि काव्य बंध उच्च कुल में उत्पन्न (परिश्रमहीन और मंदबुद्धि राजकुमार आदि) के हृदयों को आल्हादित करने वाला और कोमल मृदु शैली से कहा हुआ धर्म आदि की सिद्धि का मार्ग है। व्यवहार करने वाले (लौकिक) पुरुषों को प्रतिदिन औचित्य से मुक्त, व्यवहार चेष्टा आदि का सौन्दर्य, सत्काव्य के परिज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है।

"धर्मादि साधनोपायः सुकुमार क्रमोदितः।
काव्यबंधोऽभिजातानां हृदयाह्व कारकः।
व्यवहारपरिस्पन्द सौन्दर्य व्यववहारिभिः।
सत्काव्यव्याधिगमादेव नूतनौचित्य माप्यते।
चतुर्वर्गफलास्वाद मप्यतिक्रम्य तद्विदाय।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते।।"

वक्रोक्ति जीवितम् : 1.3–5

अर्थात् काव्यामृत का रस उस (काव्य) को समझने वालों (सहृदयों) के अन्तःकरण में चतुर्वर्ग रूप फल के आस्वाद से भी बढ़कर चमत्कार उत्पन्न करता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर काव्य के तीन प्रयोजन सिद्ध होते हैं। चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति, व्यवहार औचित्य का परिज्ञान और अद्वितीय अन्तश्चमत्कार की

प्राप्ति। अपने मंतव्य को और अधिक सुबोध बनाने के लिए कुन्तक ने लिखा है– कि यद्यपि चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति अन्य शास्त्रों से भी हो सकती है। किन्तु काव्य में एक अन्तर यह है कि जिन अभिजात वंशीय राजकुमारों आदि की बुद्धि अत्यन्त कोमल होती है, वे शास्त्र के दुर्बोध सिद्धान्त से इतना लाभ नहीं उठा सकते, जितना लाभ काव्य से ग्रहण कर सकते हैं। अतः उनके लिए किसी सुकुमार साधन की आवश्यकता होती है और यह आवश्यकता काव्य से ही पूरी हो सकती है। ऐसा ही मंतव्य आचार्य रुद्रट का भी है– इसमें संदेह नहीं की चतुर्वर्ग का ज्ञापन शीघ्रता से तथा सरलता से काव्य द्वारा ही संभव है। यद्यपि धर्मादि शास्त्रों से भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है किन्तु वे शास्त्र नीरस होते हैं। अतएव उनसे त्रास ही उत्पन्न होता है। उनसे व्युत्पत्ति इतनी सरल नहीं है।

आचार्य मम्मट – आचार्य मम्मट का संस्कृत काव्य शास्त्र में मूर्धन्य स्थान है। इन्होंने काव्य से यश की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, व्यावहारिक ज्ञान की उपलब्धि, अनिष्ट का नाश, अलौकिक आनन्द की तुरन्त प्राप्ति और कान्ता के समान मधुर उपदेश ये छः प्रयोजन बताये हैं–

"काव्य यशसेऽर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतर क्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे।" *काव्यप्रकाश :1.2*

आचार्य मम्मट का यह प्रयोजन परिगणन संस्कृत के पूर्व आचार्यों के मतों का संग्रह है किन्तु परवर्ती संस्कृत और हिन्दी के आचार्यों पर इनके मत का सर्वाधिक प्रभाव रहा है। इसलिए मम्मटाचार्य के काव्य प्रयोजनों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

1. **यश की प्राप्ति –** यश की कामना मानव मात्र की सहज आकांक्षा है। प्रत्येक व्यक्ति यश प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। साहित्यकार तथा कवि भी यश प्राप्ति के उद्देश्य से काव्य सर्जन में प्रवृत्त होता है। संसार के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास, भवभूति, शेक्सपीयर आदि ने यश की कामना से ही काव्य रचना की है। सूफी कवि जायसी के इस कथन से यह प्रमाणित हो जाता है। **"औ मन जानि कवित्त अस कीन्हा। मकु यह रहे जगत महँ चीन्हा।।"** (पद्मावत)

2. **अर्थ की प्राप्ति** – सांसारिक जीवन में अर्थ (धन) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने उपलब्ध साधनों से अर्थोपार्जन का उद्योग करता है। भले ही कुछ कवि अर्थ प्राप्ति के लिए लालायित न रहे हों, परन्तु काव्य सर्जन के लिए अर्थ प्राप्ति भी एक प्रमुख उद्देश्य है। संस्कृत के कवि धावक ने महाराज श्री हर्ष से एक–एक श्लोक पर लक्ष मुद्रा प्राप्त की थी। कवियों को राज्याश्रय की प्राप्ति भी इसका उदाहरण है। वर्तमान काल में भी लेखकों और कवियों का प्रयोजन इससे धनार्जन करना है।

3. **व्यवहार परिज्ञान** – काव्य के द्वारा लौकिक व्यवहार की शिक्षा भी दी जाती है। कहानी, उपन्यास, काव्य सूक्तियों एवं नीति श्लोक आदि से व्यवहार ज्ञान होता है। साथ ही समाज के विविध स्तरीय लोगों से कैसा व्यवहार करना चाहिए और कैसे आचरण से जीवन सफलता की ओर अग्रसर होता है, इन सब बातों का ज्ञान काव्य से हो जाता है।

4. **शिवेतर (अनिष्ट की क्षति)**– काव्य के द्वारा अनिष्ट का निवारण भी होता है। कवि अपने आराध्य देव की स्तुतिपरक रचना करने से अपने अनिष्ट का निवारण कर सकता है। आचार्य मम्मट ने मयूर कवि का उदाहरण देकर बतलाया कि उन्होंने 'सूर्यशतक' की रचना करके अपना 'कुष्टरोग' दूर किया था। समाज कल्याण की भावना रहने से काव्य रचना द्वारा देश और मानवता की मंगल भावना प्रकट की जाती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक सभी तरह के साहित्य में यह भावना देखी जाती है।

5. **सद्यः परिनिर्वृत्ति** – काव्य का परम प्रयोजन अलौकिक आनन्द की प्राप्ति है। आचार्य मम्मट ने इसे समस्त प्रयोजनों में प्रमुख तथा श्रेष्ठ माना है। काव्य के आस्वादन से जो रस रूपी आनन्द मिलता है, उससे कवि और पाठक दोनों को आनन्दानुभूति होती है। उसे आचार्यों ने 'ब्रह्मनन्द सहोदर' कहा है। इसमें भी लोकानुरंजन की प्रबलता रहती है।

6. कान्ता सम्मित उपदेश – शास्त्रों में तीन प्रकार के उपदेशों का उल्लेख है– (क) प्रभु सम्मित (ख) सुहृतसम्मित (ग) कान्ता सम्मित। वेदादि की तरह राजाज्ञा का पालन करना प्रभु सम्मित उपदेश है। इतिहास पुराण की तरह सुहृत् का उपदेश होता है। इन दोनों से भिन्न और अत्यधिक प्रभावकारी कान्ता सम्मित उपदेश है। एक सत्पत्नी मधुर वचनों के साथ अपने पति को अनर्थ से बचाने के लिए जो कुछ कहती है, उसका प्रभाव शीघ्रता से होता है और उसमें रसासिकता भी रहती है।

इस प्रकार इस संदर्भ में मम्मट ने एक अन्य तात्त्विक प्रश्न भी उठाया है जो उनकी पैनी प्रतिभा का प्रमाण है तथा जो उनके चिन्तन को एकदम वर्तमान समीक्षा में विवेचित काव्य की उपयोगिता की समस्या से जोड़ता है। मम्मट ने यह सवाल उठाया है कि सामान्यतः काव्य के ये सभी प्रयोजन हैं मगर काव्य का मूलभूत या प्रमुख उद्देश्य क्या है ? और इसका उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया है कि लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति ही काव्य का प्रधान प्रयोजन है तथा सभी प्रयोजनों का मूलभूत "सकल प्रयोजन मौलिभूतम्" प्रयोजन है। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि कला कला के लिए या कला समाज के लिए या कविता की उपयोगिता जो आधुनिक समीक्षा का एक प्रधान प्रश्न है, उसका आरम्भ ग्यारहवीं शती में मम्मट के उपर्युक्त विवेचन में दिखाई देता है जहाँ उन्होंने काव्य से प्राप्त रस या आनन्द को सरस उपदेश से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना है और यही मान्यता संगत प्रतीत होती है क्योंकि ऐसे अनेक उत्कृष्ट काव्य हैं। विशेषकर प्रकृति के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने वाले जिनमें विशेष प्रकार के अन्तश्चमत्कार की अनुभूति तो होती है, मगर कोई प्रत्यक्ष उपदेश नहीं देते।

आचार्य विश्वनाथ – विश्वनाथ ने काव्य प्रयोजन के बारे में यह कहा है कि काव्य द्वारा अल्पबुद्धि वालों को भी सुखपूर्वक चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। जीवन में धर्मादि को प्राप्त करने के लिए निरन्तर कठोर परिश्रम और गंभीर ज्ञान की अपेक्षा होती है मगर काव्य के द्वारा साधारण सामाजिक को भी चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सरलता से हो जाती है।

चतुर्वर्गफल प्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरुप्यते।। *साहित्यदर्पण : 1.2*

पण्डित जगन्नाथ – पण्डित जगन्नाथ ने दो काव्य प्रयोजनों का उल्लेख किया है– एक कवि को यश की प्राप्ति होती है तथा सामाजिक को प्रीति या रस की प्राप्ति होती है।

तत्र कीर्तिपरमाह्लादगुरु राजदेवता प्रसादाद्यनेक प्रयोजनकस्य काव्यस्य।

रसगंगाधर : प्रथम आनन

इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा निरुपित उक्त काव्य प्रयोजनों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि सभी ने आनन्दानुभूति को काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना है। यह प्रयोजन प्रमुख रूप से सहृदय से सम्बद्ध है। इस विषय में भी दो मत नहीं है किन्तु इसको कवि से सम्बद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं यह प्रश्न विचारणीय है। इस विषय में आचार्य मम्मट तो मौन हैं किन्तु हेमचन्द्र ने कवि की रसानुभूति को माना है। आनन्द प्रयोजन मौलिभूत है जो कि कवि तथा सहृदयों के लिए है। वस्तुतः कवि रस आस्वादन के अवसर पर सामाजिक के समान ही होता है। चाहे वह काव्य रचना कर रहा हो अथवा कालान्तर में अपनी ही रचना को पढ़ रहा हो। दोनों दशाओं में ही उसे रसानुभूति होनी संभव है। जिस समय कवि परम्परागत कथानक को लेकर काव्य की रचना करता है, उस समय यदि उसके हृदय का उस वृत्त से रागात्मक संबंध नहीं है तो काव्य उच्च कोटि का नहीं बन सकता। आशय यह है कि कवि की दृष्टि से भी आनन्द साधना एक प्रयोजन हो सकता है। इसके प्रयोजनों में कान्ता सम्मित उपदेश ही मुख्य रूप से सामने आता है। अन्य प्रयोजन गौण हैं, इसलिए उनका उल्लेख महत्त्वपूर्ण नहीं है।

3.1.3 हिन्दी काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन

हिन्दी काव्य शास्त्रकारों ने भी काव्य प्रयोजन पर लेखन किया है। हिन्दी के रीति कालीन आचार्यों ने इस विषय में प्रायः संस्कृत के आचार्यों का ही अनुकरण किया है। इसलिए इनके विवेचन में मौलिकता तथा गंभीरता का अभाव है। यहाँ इनका संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

(क) रीतिकाल के विवेचक

कुलपति – आचार्य कुलपति ने काव्य प्रयोजन के विषय में लिखा है–

> **"जस, सम्पत्ति, आनन्द अति, दुखिन डारै खोर।**
> **होत कवित्त ते चतुराई, जगत बाम बस होई।"** *रसरहस्य : 1–32*

अर्थात यश, सम्पत्ति, अलौकिक आनन्द, दुःखों का नाश, लौकिक चातुर्य और कान्ता सम्मित उपदेश ये छः काव्य के प्रयोजन हैं। कहने की आवश्यकता नहीं की कुलपति ने संस्कृत के आचार्य मम्मट के प्रयोजनों को ही अपने दोहे में दोहरा दिया है।

देव – रीतिकालीन आचार्य देव ने यश को ही काव्य प्रयोजन माना है।

> **"ऊँच नीच तरु कर्म बस, चलो जात संसार।**
> **रहत भव्य भगवंत जस, नव्य काव्य सुख सार।"** *काव्य रसायन*

भिखारीदास – रीतिकाल के अन्तिम प्रसिद्ध आचार्य, भिखारीदास ने अनेक काव्य प्रयोजन स्वीकार किये हैं। यश प्राप्ति, धनार्जन तथा आनन्दानुभूति को महत्त्व देते हुए उन्होंने अपनी मान्यता इस प्रकार व्यक्त की है–

> **"एक लहै तप पुँजनि के फल, ज्यों तुलसी अरु सूर गुसाँई।**
> **एक लहै बहु सम्पत्ति, केसव, भूषण ज्यों बरबीर बढ़ाई।**
> **एकनि को जस ही सों प्रयोजन, है रसखानि रहीम की नाँई।**
> **दास कवित्तनि की चरचा, बुद्धि बन्तन को सुख दै सब ठाँई।।"**
>
> *काव्य निर्णय : प्रथम उल्लास*

(ख) आधुनिक काल के विवेचक

हिन्दी के आधुनिक काल के आचार्यों और विवेचकों ने न तो संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों का ही अंधानुकरण किया है और न रीतिकाल के आचार्यों का ही। युग की बदलती हुई काव्य विषयक मान्यताओं के प्रकाश में ही इन्होंने अपने–अपने काव्य प्रयोजनों का निरुपण किया है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'ज्ञान विस्तार' और मनोरंजन को ही काव्य का प्रयोजन माना है। "लेखक का उद्देश्य सदा से ही यही

रहा है कि उसके लेखों से पाठकों का मनोरंजन भी हो और साथ ही उसके ज्ञान की सीमा भी बढ़ती रहे।" संस्कृत के आचार्यों में केवल दण्डी ने ज्ञान की गणना काव्य प्रयोजन में की है। उन्होंने केवल ज्ञान और यश को काव्य का प्रयोजन माना है किन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यश के स्थान पर मनोरंजन को मान्यता प्रदान की है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचना संचयन–कवि कर्त्तव्य, पृ.सं.–172

श्रीधर पाठक – श्रीधर पाठक के अनुसार केवल 'लोक मंगल' ही काव्य का प्रयोजन है– "लोकवृत्ति को किसी ज्येष्ठ पथ पर ले जाकर उन्नति की लीक में अग्रसर रखना बड़ी क्षमता का काम है, जो व्यक्ति इस क्षमता से रहित है, उसे साहित्य के कर्म क्षेत्र में पैर नहीं रखना चाहिए।"

देखें–योगेन्द्र प्रताप सिंह : हिन्दी काव्यशास्त्र के मूलाधार पृ.सं.–148–150

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' – अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने काव्य प्रयोजनों का उल्लेख इस प्रकार किया है।"

"देती है भर भाव में सरसता कान्तोक्ति में मुग्धता।
खोती है तम तोम लोक डर का आलोक माला दिखा।
कानों में चित्त में विमुग्ध मन में है ढाल पाती सुधा।
हो दिव्या सविता समान कविता देती महानन्द है।"

इस प्रकार हरिऔध के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हुए ज्ञान और आनन्द। यही मान्यता आचार्य द्विवेदी की भी है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिन्दी आचार्यों की भाँति हिन्दी के कवियों ने भी यथावसर इस विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त – राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य के दो प्रयोजन माने हैं। मनोरंजन और उपदेश।

"केवल मनोरंजन न कवि का, कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी, मर्म होना चाहिए।" *भारत भारती*

जयशंकर प्रसाद – "काव्य में श्रेय और प्रेय दोनों का सामंजस्य होता है, काव्य आत्मा की अनुभूतियों का नित्य नया–नया रहस्य खोलने में प्रयत्नशील है।" ऐसा कहकर प्रसाद ने काव्य को श्रेय और प्रेय का माध्यम माना है।

जयशंकर प्रसाद : काव्य और कला तथा अनय निबंध, पृ.सं.–37

सुमित्रानन्दन पंत – कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने 'स्वान्तः सुख और लोकहित'– ये दो प्रयोजन स्वीकार किये हैं– "एक विकसित कलाकार के व्यक्तित्व में स्वतः और बहुजन में आपस में वही संबंध रहता है जो गुण और राशि में, एक के बिना दूसरा अधूरा है।" *देखें– डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र*

महादेवी वर्मा – महादेवी वर्मा के अनुसार "बहिर्जगत अन्तर्जगत तक फैले और ज्ञान तथा भावक्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते–खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया है।"

दीपशिखा : चिन्तन के कुछ क्षण, पृ.सं.–3

डॉ. नगेन्द्र – डॉ. नगेन्द्र काव्य का प्रयोजन कवि की आत्माभिव्यक्ति की भावना को मानते हैं। उनके अनुसार– "साहित्य का प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति है। कवि या लेखक के हृदय में जो भाव या विचार उठते हैं उन्हें वह प्रकाशित करना चाहता है।

डॉ. नगेन्द्र : काव्यचिन्तन, पृ.सं.–17

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर – डॉ. रामधारी सिंह दिनकर भी मानते हैं कि – "मैं यह मानता हूँ कि बसन्त का गुलाब और कवि का स्वप्न अपने मन में पूर्ण होता है वह किसी को कुछ सिखलाने के लिए नहीं होता।"

शेखरचन्द्र पन्नालाल जैन : राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला से संकलित

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक काल में काव्य प्रयोजनों पर मौलिकता से विचार हुआ है। आधुनिक आचार्यों और कवियों ने युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर काव्य प्रयोजनों का विवेचन किया है।

3.1.4 पाश्चात्य काव्य शास्त्र में काव्य प्रयोजन

भारतीय दृष्टिकोंण में आध्यात्मिकता की प्रधानता के कारण उनकी चिन्तन दिशा आत्मोन्मुखी ही प्रायः रही है। इस चिन्तन दिशा का प्रभाव इन आचार्यों के द्वारा विवेचित काव्य के प्रयोजनों में स्पष्ट दिखाई देता है। इसके विपरीत, पाश्चात्य आचार्यों का दृष्टिकोण प्रायः वस्तुपरक ही रहा है, इसलिए यहाँ के अधिकांश आचार्यों के काव्य प्रयोजन, वस्तुपरक प्रधान ही रहे हैं। यही कारण है कि यहाँ के अधिकांश आचार्यों ने समाज और जीवन के परिवेश में ही काव्य प्रयोजनों का विवेचन किया है। वस्तुतः इन आचार्यों और विवेचकों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम वर्ग – यह वर्ग उन आचार्यों का है, जो लोक मंगल को ही काव्य का प्रयोजन मानते हैं। प्लेटो, रस्किन, टॉलस्टाय इस वर्ग के प्रमुख प्रतिनिधि आचार्य हैं। प्लेटो, दार्शनिक, समाज सुधारक और आदर्शवादी राजनीतिज्ञ थे। इन्होंने उन सभी कवियों का व होमर का भी तिरस्कार किया है जो लोक मंगल की भावना लेकर काव्य सर्जन में प्रवृत्त नहीं हुए हैं। अपनी मान्यता को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए इन्होंने कहा है कि– "कला का सही कार्य आत्मा के समक्ष उन प्रतिभाओं को रखना है जो आन्तरिक रूप से महान और सुन्दर है।" रस्किन ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वही काव्य ग्राह्य हो सकता है जिसमें अधिकाधिक मनुष्यों का हित निहित हो। महात्मा टॉलस्टाय कला को मानव एकता का महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुए लिखते हैं कि– "कला आनन्द नहीं, वरन् मानव एकता का साधन है जो मानव एकता को सहानुभूति द्वारा परस्पर मिलाती है।" स्पष्ट है कि इस वर्ग के आचार्यों ने लोक मंगल को ही काव्य का प्रयोजन माना है और स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि जिस काव्य में लोक मंगल की भावना का प्रभाव है, जिस काव्य में जीवन और समाज का यथार्थ तथा आदर्श चित्रण नहीं है वह काव्य हेय है। ऐसे काव्य के रचयिता कवि को समाज से बहिष्कृत कर देना ही समाज के लिए श्रेयस्कर है।

द्वितीय वर्ग – इस वर्ग के आचार्य केवल आनन्द को ही काव्य का प्रयोजन मानते हैं। शिलर, शैली आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। शिलर का मत है– "आल्हाद समस्त कलाओं का लक्ष्य है क्योंकि मानव सुख से अधिक उदात्त और गंभीर अन्य

कोई समस्या नहीं है।" महाकवि शैली जीवन और काव्य का परस्पर अविच्छिन्न संबंध मानते हैं, तथापि काव्य काव्यत्व का मूलाधार मानते हैं, तथापि काव्य का प्रयोजन केवल आनन्द ही स्वीकार करते हैं– "काव्य शाश्वत नित्य को अभिव्यक्त करने वाली जीवन की प्रतिभा है।....यह आनन्द मिश्रित ज्ञान से सम्पृक्त होती है।"

तृतीय वर्ग – इस वर्ग के विद्वान नीति तथा आनन्द को काव्य का प्रयोजन मानते हैं। अरस्तु, ड्राइडन, मैथ्यू आर्नाल्ड आदि इस वर्ग के आचार्य हैं। यूनानी आचार्य अरस्तु ने काव्य के दो प्रयोजन माने हैं। शिक्षा (ज्ञान का अर्जन) और आनन्द। अपने गुरु प्लेटों द्वारा काव्य पर किये गये आक्षेपों का निराकरण करते हुए लिखा है कि कला का विशिष्ट उद्देश्य आनन्द है पर वह आनन्द नीति सापेक्ष है। ड्राइडन ने आनन्द को काव्य का मुख्य प्रयोजन माना है और शिक्षा को उसका गौण प्रयोजन बताया है– "आनन्द यदि काव्य का अन्तिम ध्येय नहीं तो मुख्य ध्येय अवश्य है। शिक्षा का स्थान इसमें गौंण माना जा सकता है।" मैथ्यू आर्नाल्ड के अनुसार जीवन और जगत का काव्य से अटूट संबंध होता है। काव्य में इन दोनों का ही प्रतिबिम्ब होता है। काव्य का ध्येय जगत के यथार्थ का चित्रण करके उसे आदर्शोन्मुख बनाना है। इसलिए मैथ्यू आर्नाल्ड काव्य को जीवन की आलोचना मानते हैं।

चतुर्थ वर्ग – यह वर्ग उन आचार्यों का है जो काव्य और जीवन का किसी भी प्रकार का संबंध स्वीकार नहीं करते। इनकी दृष्टि में "काव्य काव्य के लिए" अथवा "कला कला के लिये।" इस वर्ग के प्रमुख आचार्य फ्लावर्त, वाल्टर पेंटर, आस्कर वाइल्ड, ब्रेडले, स्पिंगर्न आदि हैं। जीवन और काव्य का परस्पर कोई संबंध नहीं होता। इन बातों का प्रतिपादन करते हुए बदले में ब्रडले ने लिखा है– "इनको (काव्य और जीवन को) एक ही वस्तु के दो विभिन्न रूप कहा जा सकता है। एक के पास सार्थकता (प्रचलित अर्थ में) है किन्तु कल्पना को उससे शायद ही परितोष मिलता है। दूसरे के पास कल्पना को परितोष देने की सामग्री है, किन्तु पूर्ण यथार्थ नहीं है, ये समानान्तर विकसित रूप है जो परस्पर कहीं नहीं मिलते हैं।" स्पिंगर्न ने तो नीतिवादी आचार्यों की मान्यताओं का उपहास करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि साहित्य में सदाचार और नैतिकता को खोजना बिल्कुल वैसा ही मुर्खतापूर्ण कार्य है, जैसा त्रिभुज को दुराचारी और चतुर्भुज

को सदाचारी कहना। *देखें–डॉ. तारकनाथ बाली : पाश्चात्य काव्यशास्त्र*

देखें–डॉ. राकेश गुप्त : साहित्य अनुशीलन

देखें–डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र

3.1.5 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य प्रयोजन चाहे कविनिष्ठ माने जाए या पाठ्कनिष्ठ, उनमें आनन्द की प्राप्ति और लोकमंगल की कामना सर्वोपरि है। देखा जाए तो आनन्द प्रदान करना काव्य का आन्तरिक प्रयोजन है और सब बाह्य प्रयोजन हैं। यदि बाह्य प्रयोजन का विश्लेषण करें तो उनकी परिणति भी अन्ततोगत्वा आनन्द में ही होती है। क्योंकि धनार्जन, यश प्राप्ति, उपदेश, व्यवहार ज्ञान, मनोविनोद आदि सभी आनन्द के साधन हैं। पाश्चात्य विवेचकों और आचार्यों ने भी आनन्दवाद को ही प्रमुखता दी है। भारतीय आचार्यों ने जो काव्य रूपक उपस्थित किया है, उससे भी यही सिद्ध होता है कि चाहे लोकमंगल का चिन्तन हो, चाहे कान्ता सम्मित उपदेशात्मकता हो अथवा स्वान्तः सुखाय की भावना हो, इन सभी से आनन्द की अनुभूति होती है। काव्य के पठन पाठन से रसास्वाद होता है, यह भी आनन्दमय माना गया है। अतः आनन्द ही काव्य का मूल प्रयोजन है, अन्य प्रयोजन तो उसके सहकारी हैं।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य प्रयोजन का शोधपरक अध्ययन निम्न रूप में प्रस्तुत है।

3.1.6 काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा और संत कृपालु महाराज का साहित्य

काव्य प्रयोजन के पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों वर्गों के विवेचन के पश्चात् एक सामान्य एवं उच्चतर प्रयोजन जो सामने आया, वह है आनन्द की प्राप्ति। काव्य प्रयोजन की इसी अवधारणा के संदर्भ में यदि हम संत कृपालु महाराज के साहित्य का विवेचन करें तो यही काव्य प्रयोजन उनके काव्य में परिलक्षित होता है। अनेक समस्त साहित्य का विश्लेषण परक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उनका विपुल एवं समृद्ध साहित्य कुछ विशेष प्रयोजनों पर आधारित है। यथा– श्री राधा–कृष्ण की अनन्य एवं निष्काम भक्ति का संदेश लिए हुए उनका साहित्य समन्वय की विराट

चेष्टा से परिपूर्ण है संत कृपालु महाराज का साहित्य आधुनिक युग की मांग को देखते हुए विभिन्न दर्शनों, धर्मों एवं विचारों के समन्वय की गौरवपूर्ण निधि है। यथा– निर्गुण–सगुण, शैव–वैष्णव के समन्वय से परिपूर्ण निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें निर्गुण को सगुण होते बताया है।

अचम्भो इक देख्यो ब्रज माहिँ।
श्रुतिन महा वाक्यन अस्तुति सुनि, जो मुख बोलत नाहिँ।
सोइ गोकुल गोकुल बछरनि की, बोलनि सौँ बतराहिँ।
जो स्वामिहूँ बनि शंभु समाधिहुँ, जावन महँ सकुचाहिँ।
सोइ निदरतहूँ, ब्रजबनितनि घर, जावन महँ बलि जाहिँ।
लखि 'कृपालु' करतूति प्रीति येहि, ज्ञानीजन खिसियाहिँ।

प्रेमरस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–1

इसके साथ–साथ श्री राधा–कृष्ण की विविध अलौकिक लीला गान से भक्त वृन्द को अलौकिक रसमय आनन्द से परिपूर्ण करना भी उनके काव्य का प्रयोजन है।

लली सँग खेलत हार्‌यो लाल।
हारत ही भाज्यो पै लाली, पकर्‌यो कर गोपाल।
सक्यो छुड़ाय न जब कर तब हरि, ठान्यो रोदन जाल।
लली छाँड़ि कर कही जाहु अब, जनि आयो पुनि काल।
जाय 'कृपालु' कह्यो मैया सों, मोहिं मार्‌यो इक बाल।

प्रेमरस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी, पद–27

संत कृपालु महाराज का साहित्य प्रत्येक जीव मात्र को परमात्मा का सनातन अंश स्वीकृत करते हुए जीव को अपने परम चरम स्नेही से मिलन हेतु भक्ति एवं दिव्य प्रेम की परिपूर्णता के प्रयोजन से युक्त है।

अरे मन! अबहुँ बात ले मान।
हौं यह भलीभाँति हौं जानत, मानत तोहिं बलवान।
लख चौरासी योनि नचायो, नट मरकट उनमान।
पै हौं एक बात पूछत हौं, उत्तर दे। तब जान।
पियत विषय–विष रस निशिवासर, क्यों नहिं प्यास बुझान।
तजि कृपालु हठ अबहुँ शरण गहु, सुन्दर श्याम सुजान।

प्रेमरस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद –6

राधा–कृष्ण का सुन्दर एवं स्नेहिल स्वरूप जीवों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है। अतः उनके लीलागान से परिपूर्ण संत कृपालु महाराज का साहित्य भगत्प्राप्ति के चरम लक्ष्य की ओर उन्मुख है।

सजीले छैल छबीले श्याम।

रसिक रंगीले, गुन गर्वीले, चटकीले छवि धाम।

नीले तन पर अम्बर पीले, चमकीले अभिराम।

सरस रसीले दृगन गँसीले, सी ले मन ब्रज बाम।

चलि लचकीले सखि मन कीले, मुरली ले तिन नाम।

अस पी ले 'कृपालु' रस पी ले, ही ले धरि अविराम।

प्रेमरस मदिरा : श्री कृष्ण माधुरी, पद–36

वर्तमान युग में धर्म के विकृत एवं संशयात्मक स्वरूप को समझाते हुए धर्म के सुन्दर एवं सत्य स्वरूप को स्पष्ट करते हुए संत कृपालु महाराज का साहित्य 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की ओर उन्मुख है।

देह सम कीर्तन नाम गुन धामा।

प्रान समान रूपध्यान श्याम श्यामा।। (07)

रिद्धि मिले सिद्धि मिले मिले मोक्ष धामा।

सब हैं अज्ञान ज्ञान प्रेम श्याम श्यामा।। (10) *श्यामा श्याम गीत*

धर्म के विरोधाभासों से परिपूर्ण विचारों का समन्वय करते हुए संत कृपालु महाराज का साहित्य समन्वय का सार प्रतीत होता है। इन सबके साथ–साथ संत कृपालु महाराज का साहित्य भारतीय संस्कृति का सम्पोषक है। जो भारतीय धर्म, धरा, दर्शन को अद्धितीय स्वीकार कर समस्त विश्व को शांति का संदेश देता है।

अस जसुमति के भये लाल रे।

लोग लुगाइन जनु निधि पाइन, नाचति सब दै ताल रे।

कलियन–कुसुम बिछ्यो नलियन हूँ, गलियन उड़त गुलाल रे।

कोउ कहु कहत न सुनत सबै सुधि, भूले ग्वालिनि ग्वाल रे।

मोहन मंत्र डर्‌यो जनु ब्रज महँ, गई सुधि तिय सुत बालरे।

कहँ लौं कहिय 'कृपालु' देख जोइ, यह सुख सोइ बेहाल रे।

प्रेमरस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी, पद–01

संत कृपालु महाराज का साहित्य मानव जीवन की क्षण भंगुरता को इंगित करते हुए, प्रति क्षण का सदुपयोग करते हुए ईश्वर स्मरण के महत्त्व को परिलक्षित करता है–

अरे मन! अवसर बीत्यो जात।

काल–कवल वश विधि हरि, हर सब, तोरी कहा बिसात।

लहि पारस नर तनु सुर–दुर्लभ, गुंजन–हित भटकात।

बधिर अंध जिमि सुनत न देखत रहत विषय मदमात।

अब करिहौं, अब करिहौं, इमि कहि, रहि जैहौं पछितात।

होत 'कृपालु' प्रलय पल महँ तू, केहि बल पर इतरात।

प्रेमरस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद –07

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का साहित्य शोध हेतु नवीन एवं साहित्यिक जगत के लिए उपयोगी प्रकरण है। प्रस्तुत शोध कार्य में आगे के अध्यायों में उनके विपुल साहित्यिक प्रयोजन का अनुसंधान परक विवरण प्रस्तुत है।

❖❖❖

चतुर्थ अध्याय

संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

चतुर्थ अध्याय

संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

4.1.0 प्रस्तावना

पूर्व अध्यायों में काव्य के लक्षण एवं स्वरूप का विश्लेषण करते हुए विषय के उद्देश्य और मौलिकता को स्पष्ट किया गया। साथ ही काव्य शास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विवेचना अध्याय में काव्य शास्त्र से अभिप्राय, काव्य शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा जिसमें संस्कृत काव्य शास्त्र, हिन्दी काव्य शास्त्र, पाश्चात्य काव्य शास्त्र, आधुनिक अभिमतों के साथ–साथ काव्य शास्त्र के स्वर्ण युग पर विश्लेषण करते हुए काव्य शास्त्र की वर्तमान युग में आवश्यकता, विशिष्टता एवं उपयोगिता को स्पष्ट किया गया। द्वितीय अध्याय में काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के अध्ययन के अन्तर्गत काव्य प्रयोजन के संदर्भ में संस्कृत काव्य शास्त्र, हिन्दी काव्य शास्त्र, पाश्चात्य काव्य शास्त्र परम्परा का अध्ययन करते हुए काव्य प्रयोजन के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य पर विमर्श किया गया। प्रस्तुत अध्याय में संत कृपालु महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अध्ययन किया गया है।

युग चेतना एवं युगानुरूप प्रत्येक काल में समय–समय पर विशेष विभूतियों का आविर्भाव इस जगत में होता है। रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने निम्न चौपाई द्वारा प्रत्येक युग में यथा आवश्यकता परम तत्व के अवतरण को स्वीकार किया है–

जब जब होइ धर्म कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।

रामचरित मानस : बालकाण्ड दोहा 120 चौपाई 6–8

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय बदलता है, विचार बदलते हैं, साधन बदलते हैं, शैली बदलती है, भाषाएँ बदलती हैं किन्तु इस परिवर्तनशील जगत में भी कुछ तत्व सनातन हैं जो कभी नहीं बदलते जैसे जीव मात्र का उन्नत लक्ष्य अर्थात

आनन्द प्राप्ति एवं आनन्द प्राप्ति हेतु विशेष विभूतियों अर्थात् सत्य पथ अन्वेषक साहित्यकारों का प्राकट्य, जो अपने कृतित्व से सदा, जगत का मार्ग दर्शन करते हैं। वैदिक युग से अद्यतन, पूर्व हो या पाश्चात्य जगत, साहित्य सदा जन कल्याण का उत्कृष्ट साधन रहा है। युग की आवश्यकतानुसार प्रकटित ओजस्वी विभूति, युग पुरुष बनकर उभरती है, जो अपनी वाणी सुधा एवं लेखन धारा से समस्त जगत को समस्त मानव समुदाय जो परम आनन्द, सकारात्मक सद्मार्ग की ओर उन्मुख कर परम शांति एवं आत्मिक, मानसिक व्यावहारिक उत्थान की ओर अग्रसर करती है। ऐसी उत्थानशील विभूतियाँ सदा, सर्वदा, सदियों की सीमा से परे जिज्ञासु जन सामान्य को अपनी कथनी, करनी, लेखनी के माध्यम से विवेकपूर्ण सद्मार्ग की ओर उन्मुख करती हैं यथा वाल्मीकि, वेदव्यास रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि सूरदास, महानायक कबीर, रस की खान महाकवि रसखान, कृष्ण आराध्या–मीरा बाई, गुरु नानक, रामानन्द, वल्लभाचार्य, शंकराचार्य, निम्बाकाचार्य, मध्वाचार्य आदि ऐसे ही दिव्य पीयूष से ओत–प्रोत उत्थानशील व्यक्तित्व हैं जो भौतिक नश्वर शरीर के आवरण से युक्त होकर भी साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक जगत में अमर हस्ताक्षर रहे हैं। इनका परम तेजस्वी व्यक्तित्व एवं सुधापरक कृतित्व आज भी समस्त जग के जन मानस की पिपासा को शांत कर रहा है। अज्ञान की परिसीमा से ग्रसित मानव ज्ञान चक्षुओं को प्राप्त कर परम आनन्द का साक्षात्कार कर कृतार्थ हो रहा है।

प्रत्येक युग की समयानुसार अलग–अलग आवश्यकता होती है। समय, संस्कृति एवं साहित्य का सदा गठबंधन होता है। समय एवं संस्कृति के अनुरूप ही साहित्य का निर्माण होता है। समय एवं संस्कृति की शुचिता को बनाए रखने वाले साधनों में साहित्य एक विशेष गरिमा पूर्ण साधन है। उदाहरण स्वरूप समस्त भक्तिकाल को लिया जा सकता है जो आज भी हिन्दी साहित्य का ही नहीं अपितु समस्त विश्व साहित्य का स्वर्ण युग साहित्य माना गया है। समाज में व्याप्त धर्म के व्यभिचारी, असमंजसपरक स्वरूप का विश्लेषण कर सत्य धर्म का मार्ग अन्वेषण इस युग के साहित्यकार ने किया। धर्म, कर्म, मर्म की शुचिता का बीड़ा साहित्यकार

ने उठाया और ऐसा अद्भुत साहित्य रच डाला जो आज भी जन सामान्य की आत्मा को रस से सरोबार कर रहा है तथा विद्वान जन समुदाय को अनुसंधान के मार्ग पर ले जा रहा है।

इसी संदर्भ में वर्तमान में आधुनिक युग भौतिक चकाचौंध से सम्पन्न, तकनीकी ज्ञान से परिपूर्ण युग है। आधुनिक शिक्षा भौतिक, तकनीकी ज्ञान तक ही सीमित होकर रह गई है। मानव समुदाय का शारीरिक, भौतिक उत्थान तो हो रहा है किन्तु मानव का मूल्य परक, आत्मिक उत्थान अवरुद्ध हो गया है। आज का जन समाज जितना शिक्षित और सुसंस्कृत अपने आप को बता रहा है उतना ही समाज का व्यावहारिक स्वरूप पतनशील दृष्टि गोचर हो रहा है। समाज में अपराधों का सिलसिला रिकॉर्ड स्तर तक पहुँच रहा है। समाज में व्याप्त अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार, पाखण्ड, स्वार्थ परकता, शोषण, मूल्यों का अवसान, दुःख, निराशा, पीड़ा, अवसाद, चिन्ता आदि नकारात्मक तत्व समाज का पतन कर रहे हैं। व्यक्ति को शिक्षित करने हेतु सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संस्थाएँ पुरजोर प्रयत्नशील हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर कर उसका उत्थान किया जा सके ताकि हमारा समाज सुन्दर और सुरम्य बन सके तथा व्यक्ति अपना लाभ अर्थात परम सुख को प्राप्त कर सके किन्तु अत्यन्त दुःख का विषय है कि डिग्रियों का अम्बार प्राप्त कर भी मानव व समाज साक्षर तो हो गया किन्तु शिक्षित नहीं हो पाया। इसका स्वरूप हम समाज में गिरते मूल्यों को देखकर अनुभव कर सकते हैं। भौतिक उन्नति से परिपूर्ण मानव दुःख, निराशा व अवसाद से बाहर नहीं निकल पाया है, कारण यह कि मानव भौतिक साधन व ज्ञान तो प्राप्त कर रहा है किन्तु आत्मिक उत्थान के विषय को भूल गया है। तत्वतः मानव शरीर और चेतन तत्व आत्मा का सामंजस्य है। जितना आवश्यक भौतिक उत्थान है उतनी ही आवश्यकता आत्मिक उत्थान की भी है, इसके बिना व्यक्ति, समाज सुख की कल्पना नहीं कर सकता, वास्तविक आत्मिक उत्थान मूल्यों का विकास करता है तथा व्यक्ति को दुःख निराशा से उबारता है। आत्मिक उत्थान से ही मनुष्य, समाज अपने परम चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसी संदर्भ में

आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो धार्मिक बाह्य आडम्बरों से मुक्त हो, विशुद्ध हो, चिन्मय हो, समन्वय परक हो, सरल हो, सुलभ हो जो अन्तरात्मा का उत्थान करे और परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करे। पुनः ऐसे साहित्य की आवश्यकता आन पड़ी है जो जन समाज को पीड़ा, भय, अज्ञान से विमुक्ति दे और प्रेम एवं दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण कर सनातन लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक बने। इस हेतु आधुनिक वर्तमान युग में भारत वर्ष की पावन धरा को अपने परम तेजस्वी व्यक्तित्व एवं ओजस्वी वाणी से सुशोभित एवं परम शोभायमान करने वाले पंचम मूल जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित संत कृपालु जी महाराज का साहित्य उल्लेखनीय है।

4.1.1 संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

दिव्य अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न, गुरु गंभीर, प्रखर व्यक्तित्व के धनी, वैदिक सनातन ज्ञान से परिपूर्ण, परम ज्ञान एवं विशुद्ध भक्ति सुधा से परिपूर्ण, अमृतवाणी के कोषाध्यक्ष, विश्व के समस्त ग्रंथ, पंथ, संत एवं धर्मों की विचारधाराओं में समन्वय करने की अलौकिक क्षमता से अभिसिक्त, समस्त विश्व में सरल, सुलभ, सुन्दर, सुगम, सर्वोपरि, सुष्ठु भक्ति मार्ग को पुनः स्थापित करने वाले पंचम मूल जगद्गुरु संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विशेष रूप से अनुसंधान का विषय है।

संत कृपालु महाराज का साहित्य जिज्ञासु सहृदय को तत्व ज्ञान एवं राधा–कृष्ण की निर्मल भक्ति से परिपूर्ण कर परम सुख, शांति, आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है। संत कृपालु महाराज का साहित्य आज के अज्ञान रूपी अंधकार से ग्रस्त जगत को आत्मिक उत्थान देकर मानव मूल्यों यथा–प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति, विनम्रता, दीनता का विकास करने में सक्षम है। आज के युग में धर्मों, पंथों की बाढ़ सी है। धर्मों, पंथों, ग्रंथों, संतों के उपदेशों में उलझा जन सामान्य स्वयं को दिग्भ्रमित एवं असमंजस में अनुभव कर रहा है। धर्म का सही स्वरूप क्या है ? कौनसा मार्ग परम लक्ष्य प्राप्ति हेतु सुगम है ? भक्ति क्या है ? भक्ति क्यों की जाए ? भक्ति से क्या

प्राप्त होगा ? भक्ति से परम लक्ष्य कैसे प्राप्त होगा ? उद्देश्य प्राप्ति में बाधक तत्व कौन से हैं ? आत्मिक उन्नति कैसे होगी ?, दुःख से निवृति और परम सुख की प्राप्ति कैसे होगी ? आदि प्रश्नों का समाधान हमें संत कृपालु महाराज के साहित्य में मिलता है। श्री राधा–कृष्ण की अनन्य, निष्काम, निरन्तर भक्ति का संदेश सम्प्रेषित कर संत कृपालु महाराज ने दिव्य लक्ष्य प्राप्ति हेतु समस्त विश्व में प्रचलित ज्ञान, कर्म, योग आदि मार्गों को विश्लेषण मथनी से मथकर विशुद्ध शुभ्र उज्ज्वल भक्ति रूपी नवनीत जगत को सम्प्रेषित किया है। समन्वय की विराट, अद्भुत चेष्टा हमें उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। सभी धर्मों, ग्रंथों, पंथों, संतों का आदर करते हुए उनमें तत्वतः समानता का गुण उन्होंने खोजा और वही परम एकाकी तत्व उनके साहित्य में मिलता है। उच्च कोटि की लेखनीय एवं काव्य प्रतिभा उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। सनातन वैदिक ज्ञान से परिपूर्ण सुन्दर वेद ऋचाएँ सुगम शैली में सदा उनकी जिह्वा पर रमण करती हैं।

काशी विद्वत्परिषत् की शीर्षस्थ 500 विद्वानों की विशाल सभा में अपने विशेष ज्ञान को सिद्ध करने वाले संत कृपालु महाराज न केवल मौखिक ज्ञान अपितु प्राप्त ज्ञान को प्रयोगात्मक रूप में साकार करते हुए, जिज्ञासु, सुधी एवं दिव्य रस पिपासु जन समुदाय को अलौकिक रस से सरोबार करने का कार्य प्रतिक्षण कर रहे हैं। भक्ति एवं ज्ञान के मूर्तिमान स्वरुप संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व निश्चय ही विश्लेषण परक अध्ययन का विषय है।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज का जीवन, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक परिचय निम्नानुसार प्रस्तुत है।

4.1.2 संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व

संत कृपालु महाराज गुरु गंभीर प्रखर ज्ञान से परिपूरित होते हुए भी उनके व्यक्तित्व की सादगी, सरलता, सहजता और सुगमता बरबस मिलने वाले प्रत्येक सहृदय को अपनी ओर आकर्षित करती है। यह सत्य ही है कि गरिमा और सहजता,

ज्ञान और विनय का आपस में गठजोड़ है। 'विद्या ददाति विनयम'। जो जितना गरिमामय है उसका व्यक्तित्व उतना ही सरल, सहज और विनय से परिपूर्ण होता है। ऐसे ही गरिमापूर्ण एवं सरल स्वभाव के धनी है संत कृपालु महाराज को जब काशी विद्वत्परिषत् द्वारा जगद्गुरूत्तम् की उपाधि से विभूषित किया गया साथ ही रजत सिंहासन, उत्कीर्ण छत्र, चँवर पादुका आदि उनको भेंट की गई किन्तु संत समाज में प्रचलित परम्परा अनुसार सिंहासन आरुढ़ होकर प्रवचन देने की परिपाटी से हटकर उन्होंने सादगीपूर्वक मंचासीन होकर प्रवचन देना प्रारम्भ किया। किसी बाह्य आडम्बर एवं अहंकार शून्य होकर प्रवचन देना, बिना सिंहासन के मंचासीन होकर व्याख्यान करना, उनकी इस सहजता और ख्याति से, कुटिल व खल मति बाधक तत्वों द्वारा जब उनकी जगद्गुरु होते हुए भी सिंहासन के बिना प्रवचन देने की शैली की आलोचना कर, उन्हें तंग किया जाने लगा तो उन्होंने इस समस्या के सुन्दर उपाय स्वरूप दिनांक 20.11.1962 को भारत चीन युद्ध के समय अपना रजत सिंहासन सुरक्षा कोष में दान कर दिया। एक बार किसी साधक ने इसी संदर्भ में उनसे प्रश्न किया। "प्रश्न– सब सम्प्रदाय अनुयायी जगद्गुरु अपना सिंहासन रखते हैं किन्तु आप सम्प्रदाय रहित जगद्गुरु होकर भी नहीं रखते क्यों ?

इस प्रश्न पर आचार्य संत कृपालु महाराज का उत्तर था– सिंहासन से योग्यता नहीं बढ़ जाती, वैसे मेरे पास भी सिंहासन था प्रारम्भ में जब काशी विद्वत्परिषत् ने जगद्गुरु की उपाधि दी थी किन्तु मैंने उसे प्रपंच मानकर भारत चीन युद्ध के समय यू.पी. के तत्कालीन मुख्यमंत्री को रक्षा कोष में दान कर दिया। हमने सिंहासन भी त्याग दिया तथा शिष्य भी नहीं बनाते एवं सम्प्रदाय भी नहीं चलाते। यह सब मेरे मत से उचित नहीं है सम्प्रदायों में परस्पर द्वेष फैलता है। मैं सभी सम्प्रदाय आचार्यों के सिद्धान्तों का पूरा समन्वय करता हूँ।" *अध्यात्म संदेश : जुलाई 2005 (ये कौन हैं) लेख*

संत कृपालु महाराज का व्यक्तित्व रहस्य एवं आश्चर्यों से परिपूर्ण है (उनके व्यक्तित्व की उक्त प्रवृत्ति जुलाई 2005 में अध्यात्म संदेश पत्रिका में छपे ये कौन

हैं ? लेख से ज्ञातव्य है)। "बात 14 जनवरी 1957 की है। काशी के मूर्धन्य शास्त्रज्ञ विद्वानों की सभा तथा उपस्थित विशाल जनसमूह, इनके मध्य एक तेजस्वी युवक उपस्थित हुये, जिनकी आयु लगभग 34 वर्ष की होगी। उन्होंने अपनी अलौकिक वाणी और प्रतिभा से सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया। गौर वर्ण, काले घुँघराले बाल, बिजली के समान चमकता शरीर, प्रेम रस परिप्लुत सजल नेत्र, सभी का चित्त आकर्षित हो गया। सब कुछ भूलकर एकटक सब इनकी ओर देखते रह गए। कौन हैं ये ? ? ? इनके रोम रोम से प्रेम रस निर्झरित हो रहा है। इनको देखते रहो, देखते रहो, नेत्रों की तृप्ति नहीं होती बल्कि और अधिक प्यासे हो जाते हैं। उनके कठिन संस्कृत में दिए गए 9 दिन के विलक्षण प्रवचन को सुनकर विद्वत्समाज के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। सभी के मन में जिज्ञासा हुई, ये कौन हैं ? इनके ज्ञान को देखकर लगता है यह कोई अवतारी महापुरुष अथवा इन्होंने कायाकल्प किया हुआ है। क्योंकि इतना अधिक ज्ञान तो हजारों वर्षों के अध्ययन के पश्चात भी संभव नहीं है, और शास्त्रज्ञ ही नहीं ये तो भक्ति को मूर्तिमान स्वरूप प्रतीत होते हैं। सबके मानस पटल पर प्रश्न चिह्न अंकित हो गया। ये कौन हैं ? ? ? ऐसा पहले कभी नहीं सुना, कभी नहीं देखा। सब एक दूसरे से पूछने लगे–क्या आप इनको जानते हैं ? जिला प्रतापगढ़ से आये हनुमान प्रसाद महाबनी जी ने जो इन युवक के साथ आए थे, सबकी जिज्ञासा को शान्त करते हुए बताया अधिक तो मैं भी इनके विषय में नहीं बता सकता। मुझे तो मालूम ही नहीं था कि इनके अन्दर ज्ञान का अगाध समुद्र छिपा हुआ है। मेरे पास तो यह पिछले कुछ वर्षों से आते हैं, मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि ये वैदिक संस्कृत में पारंगत हैं। कब, कहाँ शास्त्रों वेदों का अध्ययन किया ? यह मेरे लिए भी प्रश्न बन गया है। कभी कोई शास्त्र वेद की पुस्तक इनको पढ़ते हुए नहीं देखा। रामायण, भागवत, गीता कुछ भी कभी इनके पास नहीं देखा। ये तो अपने पास कोई सामान भी नहीं रखते यहाँ तक कि पहनने के कपड़े तक भी साथ लेकर नहीं चलते, जिसके घर जाते हैं, उसी के कपड़े पहन लेते हैं और अपने कपड़े वहाँ छोड़ देते हैं। मैं तो यही समझता था कि यह संकीर्तन प्रेमी कोई रसिक है। मैंने कितनी बार इनको रोते तड़पते बिलखते देखा है। पूरी–पूरी रात हा कृष्ण! हा कृष्ण। कभी हा राधे! हा राधे! कहते हुए जमीन पर लोटने लगते हैं। श्यामा जू! राधे जू! कभी दीवारों का

आलिंगन करने के लिए दौड़ते हैं, तो कभी वृक्षों से लिपट जाते हैं। नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है, मानों वर्षा ॠतु बन गए हों। अश्रु, स्वेद रोमांच, कंप विवर्णता सभी सात्विक भाव इनके अन्दर प्रकट हुए देखकर मुझे अनेक बार लगा कि ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। आज समस्त शास्त्रों वेदों के अलौकिक ज्ञान को देखकर मैं भी आश्चर्य चकित हूँ। मेरा तो इनके प्रति वात्सल्य भाव रहा है। जब इन्होंने कहा कि मैं जगद्‌गुरु बनने जा रहा हूँ तो मैंने इनसे कहा– "जा जा शीशे में अपना मुँह देख ले, कहीं ऐसा न हो मेरी नाक कटा दे।" लेकिन आज इनकी दिव्य वाणी को सुनकर, काशी जो विश्व का गुरुकुल है, यहाँ के सभी विद्वान नतमस्तक हो गए हैं। मैं यही सोच रहा हूँ कि क्या ये वही युवक है जो मेरे पास रहकर संकीर्तन द्वारा प्रेम सुधारस का पान सभी भावुक भक्तों को कराते थे या कोई और ? मैं यही सोच रहा हूँ ये कौन हैं ? ? ?" *अध्यात्म संदेश : जुलाई–2005*

इसके पश्चात समस्त विद्वानों ने एकमत होकर आपको जगद्‌गुरूत्तम की उपाधि से विभूषित किया। उन्होंने स्वीकार किया कि चारों जगद्‌गुरुओं के सिद्धान्तों का समन्वय करने वाला यह कोई अवतारी पुरुष ही है, इतनी अल्पायु में इतना अधिक ज्ञान साधारण प्रतिभा से असम्भव है। सभी जगद्‌गुरुओं के सिद्धान्तों का वेद, शास्त्र सम्मत समन्वय सुनकर काशी के विद्वान विस्मय से अभिभूत होकर नतमस्तक हो गए। अतः उन सब ने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की कि श्री कृपालु जी जगद्‌गुरुओं में भी उत्तम हैं। ...."**धन्यो मान्य जगद्‌गुरूत्तम पदैः सोऽयं समभ्यर्च्यते**।" इतना ही नहीं उन विद्वानों ने यह प्रभु के अनुभवात्मक दिव्य ज्ञान व भक्तिरस से ओत–प्रोत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अन्य बहुत सी उपाधियाँ प्रदान की।

श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारीण,
वेद मार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, निखिलदर्शनसमन्वयाचार्य,
सनातनवैदिकधर्मप्रतिष्ठापन सत्सम्प्रदाय परमाचार्य,
भक्तियोगरसावतार, भगवदनन्त श्री विभूषित,
जगद्‌गुरु 1008 स्वामि श्री कृपालु जी महाराज।

अध्यात्म संदेश : जुलाई–2005, (ये कौन हैं लेख)

चिन्तनात्मक गंभीर प्रवृत्ति के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व में विनोदी प्रकृति उनकी विभूति को मणिकांचनमय बना देती है। साधारण बातचीत में अपने अनुकरणीय जनों के साथ हल्का–फुल्का विनोद कर वे सहज ही अपनत्व का और सभी के साथ सखा भाव को दर्शाते हैं। इसका एक उदाहरण जुलाई 2009 में प्रकाशित साधन साध्य पत्रिका से उद्धृत है– "एक डी.एस.पी. नारकोटिक्स विभाग में काम करते थे उनसे मिलने के लिए आये, उन्होंने अपना परिचय दिया कि मैं नशा करने वालों को पकड़ता हूँ! श्री महाराज जी ने अट्टहास करते हुए कहा– अरे भाई हम भी नशा करते हैं! गौरांग महाप्रभु के पास एक शराबी आया और उसने उनसे पूछा नशा करते हो ? महाप्रभु ने उत्तर दिया रात–दिन प्रेम रस मदिरा पीता रहता हूँ जिसका नशा भी नहीं उतरता। प्रेम रस मदिरा पीने वाला ऐसा पियक्कड़ हो जाता है कि पीये बिना रह नहीं पाता। यही हाल तो शराबी का भी होता है, किन्तु यह नशा कोई भी व्यक्ति इसलिए करता है कि इसकी मस्ती में अपने टैंशन को भूल जाए किन्तु प्रेम रस मदिरा तो सदा–सदा के लिए उन्मत्त कर देती है, इसका पान करने वाले को असीम शाश्वत आनन्द प्राप्त हो जाता है जिससे सदा–सदा को दुःख निवृत्ति हो जाती है। टैन्शन मुक्त हो जाता है।"

रोम रोम चाहे तोहिं गोविन्द राधे।ऐसी प्रेमरस मदिरा को पीला दे।।

साधन साध्य : जुलाई 2009, पृ.सं.–27

इसी प्रकार अनुशासन प्रियता, संयमी एवं नियंत्रित जीवन शैली उनके व्यक्तित्व को और अनुपम बनाती है। नित्य दैनिक जीवन में घोर व्यस्त होते हुए भी परम अनुशासित जीवन यापन, खान–पान, शयन इत्यादि को देखकर परम आश्चर्य होता है। उनके अनुसार "आहार, निद्रा इत्यादि सब संतुलित होना चाहिए। प्रत्येक साधक को अपना जीवन निम्न गीतोक्ति के अनुसार व्यतीत करना चाहिए।

युक्तहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। *गीता : 6–17*

स्वयं उनका जीवन इस गीतोक्ति का क्रियात्मक स्वरूप है। 91 वर्ष की अवस्था में इतना अधिक संयमित जीवन साधारण मनुष्य के लिए असंभव ही है। सर्दी, गर्मी, बरसात कोई भी मौसम क्यों न हो उनका नियमित रूप से घूमना और व्यायाम कभी भी बन्द नहीं होता। छोटे से छोटे स्थान पर भी रुकते हैं तो भी कोई न कोई घूमने की जगह बना ही लेते हैं। भोजन का समय भी बिल्कुल निश्चित है एवं उनका भोजन भी पूर्णतया वैज्ञानिक है। जितना विटामिन, प्रोटीन, डॉक्टर के अनुसार आवश्यक है वह वही ग्रहण करते हैं। कड़ुवा हो, मीठा हो, चटपटा हो, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। जितना शरीर स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है बस वही मात्रा ग्रहण करते हैं। कोई त्योहार हो उनका वही भोजन रहता है, कोई मिर्च मसाले नहीं, कोई आचार–चटनी नहीं, पूरी पकवान भी नहीं। इस विषय में एक बहुत ही रोचक घटना घटित हुई। हैदराबाद में किसी सेठ के यहाँ रुके थे। सेठ जी को बताया गया कि आज श्री महाराज जी आपके घर आये हैं। इस खुशी में वे माल–टाल खायेंगे, उनके भोजन के पश्चात आप प्रसाद लेने आ जाइएगा। जब वे प्रसाद लेने के लिए गए तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्हें खिचड़ी प्रसाद के रूप में दी गई और उनका भोजन बनाने वाले भक्तों ने उनको बताया कि उनका माल–टाल यही है। सेठजी ने कहा मैं तो यह सोच रहा था कि आज मालपूआ, हलुआ, खीर इत्यादि खाने को मिलेगा।" *साधन साध्य : जुलाई 2009, पृ.सं.–48*

उनके व्यक्तित्व के निरालेपन की एक और झांकी इस घटना से मिलती है। जब "एक साधक जो वृन्दावन में किराए का मकान लेकर रह रहे थे। एक दिन तो अत्यन्त दुःखी होकर श्री संत कृपालु महाराज से बोले कि मैं अपने मकान मालकिन से बहुत परेशान हूँ अब मैं वहाँ नहीं रहूँगा, लेकिन क्यों ? "महाराज जी, मकान मालकिन आपको बहुत गालियाँ देती है, मुझसे सहन नहीं होता। अच्छा क्या–क्या गालियाँ देती हैं ? मुझे भी सुना। अरे वृन्दावन में गोपियों की गाली ही तो सुनने श्री कृष्ण आये थे– भला गोलोक में उन्हें गालियाँ सुनने को कहाँ मिलती ? मेरा अहो भाग्य जो कोई वृन्दावन वासिनी मुझे गाली देती है– तुम तो उसी मकान में रहो और प्रतिदिन आकर मुझे उसकी गालियाँ सुनाया करो।"

अध्यात्म संदेश :1997, पृ.सं.–29

इसप्रकार सहनशीलता और सरलता की प्रतिमूर्ति संत श्री कृपालु जी महाराज के व्यक्तित्व की एक छोटी सी झांकी मात्र प्रस्तुत करने का असफल प्रयास किया गया है। यह प्रयास सदा आंशिक ही रहेगा। उनके व्यक्तित्व की गरिमा में सन् 1956 में कानपुर में आयोजित विराट संत सम्मेलन में उपस्थित काशी के प्रख्यात पण्डित, शास्त्रार्थ महाविद्यालय के संस्थापक शास्त्रार्थ महारथी, सर्वमान्य एवं अग्रगण्य दार्शनिक काशी विद्वत् परिषत् के प्रधान आचार्य, श्री राजनारायण जी शुक्ल षट्शास्त्री ने सार्वजनिक रूप से काशी आने का निमंत्रण देकर जो घोषणा की थी उसका अंश इस प्रकार है। "काशी के पण्डित आसानी से किसी को समस्त शास्त्रों का विद्वान नहीं स्वीकार करते हम लोग तो पहले शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारते हैं। हम उसे हर प्रकार से कसौटी पर कसते हैं और तब उसे शास्त्रज्ञ स्वीकार करते हैं। हम आज इस मंच से इस विशाल विद्वन्मंडल को यह बताना चाहते हैं कि हमने सन्ताग्रगण्य श्री कृपालु जी महाराज की भगवद्दत्त प्रतिभा को पहचाना है और हम आपको सलाह देना चाहते हैं कि आप उनको पहचाने और इनसे लाभ उठाएँ। आप लोगों के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि ऐसे दिव्य वाङ्मय को उपस्थित करने वाले एक संत आपके बीच आए हैं। काशी समस्त विश्व का गुरुकुल है। हम उसी काशी के निवासी यहाँ बैठे हुए हैं। कल श्री कृपालु महाराज के अलौकिक वक्तव्य को सुनकर हम सब नतमस्तक हो गए। हम चाहते हैं कि लोग श्री कृपालु जी महाराज को समझें और उनके सम्पर्क में आकर इनके सरल सरस अनुभूत एवं विलक्षण उपदेशों को सुनें तथा अपने जीवन में उसे क्रियात्मक रूप से उतारकर अपना कल्याण करें।"

साधन साध्य : जुलाई 2009, पृ.सं.-26-27

इस प्रकार संत श्री कृपालु महाराज का व्यक्तित्व अगाध जलधि की भाँति अनन्त एवं अपार है जिसमें से कुछ रत्न प्रस्तुत करने का प्रयास है उनके जीवन की संक्षिप्त झांकी निम्नानुसार है।

जन्म एवं परिवार – भारत वर्ष के उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला प्रतापगढ़, तहसील कुण्डा के ग्राम मनगढ़ की पावन धरा पर सन् 1922 की शरद् पूर्णिमा की शुभ एवं शुभ्र रात्रि में माँ भगवती के गर्भ से तीसरी संतान के रूप में जिस अलौकिक शिशु का प्राकट्य हुआ उसी शिशु को कालान्तर में संत कृपालु महाराज के रूप में जाना जाने लगा।

संत कृपालु महाराज, पिता श्री ललिता प्रसाद जो कि उस समय के प्रख्यात कर्मकाण्डी ज्योतिष आचार्य थे एवं परम सरल स्वभावमयी, सुशील, भगवद्भक्त माँ श्रीमती भगवती मैया की तीसरी संतान के रूप में प्रकटित हुए। इनके प्राकट्य से पूर्व इनके प्रथम अग्रज बड़े भ्राता श्री उद्धव दादा एवं द्वितीय अग्रज श्री राम नरेश त्रिपाठी के पश्चात जब माँ भगवती ने तीसरी बार गर्भ धारण किया तब से ही उन्हें कुछ विलक्षण अनुभूति होने लगी। तृतीय गर्भकाल में उन्हें किसी प्रकार की कोई पीड़ा तथा प्रसव काल में भी कोई पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ एवं प्रसव के समय विशेष सुखानुभूति करते हुए माँ भगवती ने एक सुन्दर शिशु को जन्म दिया। इस अलौकिक अनुभव को भगवान राम की परम कृपा मानते हुए इस अलौकिक शिशु का नामकरण संस्कार करते हुए इन्हें नाम दिया गया राम कृपालु त्रिपाठी। संत कृपालु जी महाराज के जन्म के बाद माँ भगवती के गर्भ से एक कन्या रत्न उत्पन्न हुआ जिनका नामकरण कु. राजवती के नाम से किया गया। इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज दो अग्रज भ्राता एवं एक अनुज भगिनी के साथ अपने परिवार के अंग रहे। जिस समय इनका नामकरण संस्कार करते हुए जन्मपत्री बनायी गई तब ही ज्योतिष आचार्य ने कहा कि इनके योग में गृहस्थ का सुयोग नहीं है। वैभव और वैराग्य ये विरोधी लक्षण वाला इनका जीवन रहेगा। ऐसा सुनकर माँ भगवती चिन्तित हो गई थी और ये सदा से ही इन्हें गृहस्थ जीवन की ओर प्रेरित करती रहती थी। उन्हें चिंता थी कि मेरा पुत्र बाबा न बन जाए। शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न संत कृपालु महाराज बाल्यकाल से ही अद्भुत, प्रखर बुद्धि सम्पन्न बालक थे। उनकी समस्त पारिवारिक पृष्ठ भूमि भी ज्ञानमयी एवं आस्थामयी थी। उनके पिता श्री ललिता प्रसाद परम ज्ञानी

ज्योतिष आचार्य थे, वहीं उनके अग्रज उद्धव दादा एवं श्री रामनरेश त्रिपाठी भी वेदज्ञ ब्राह्मण एवं आचार्य थे। संस्कृत व्याकरण आदि ज्ञान इन्होंने कुछ समय तक अपने भ्राता से ही प्राप्त किया था जब उनके भ्राता महू छावनी इन्दौर में एक विद्यालय में आचार्य के रूप में कार्यरत थे।

परम संस्कारी परिवार में उत्पन्न संत कृपालु जी महाराज अपनी माँ, जिन्हें वे आदर से आजी संबोधित करते थे का अत्यन्त आदर एवं सम्मान करते थे। "आप अपना अथवा और किसी का काम भले ही न करते हों किन्तु आजी की सेवा और सहायता मन से करते। कभी पानी लाते, कभी लकड़ी, कभी बर्तन लाते और उनके पास खड़े होकर आजी की ओर देखकर मुस्कराते, मानों इन्होंने कोई बड़ा काम कर लिया है। आजी का इन्होंने सदा ही मान किया। ये उनके बराबर चारपायी पर कभी न बैठे। बाहर से आते तथा जाते समय सर्वदा उनके तथा मौसी के चरण स्पर्श करते। अपने आप तो सर्वदा उनका ध्यान ही रखते किन्तु कभी आजी ने उनसे किसी वस्तु के लिए कह दिया, वह सर्वदा शीघ्रातिशीर्घ पूरा किया। आजी कहा करती थी – "मैं कह दूँ तो राम कृपालु चिरई का दूध भी ले आवे। (असंभव कार्य भी तुरन्त कर दे)।" एक बार होली के अवसर पर श्री महाराज जी मनगढ़ में नहीं थे। उनके आने पर आजी ने उन्हें होली पर अवश्य मनगढ़ आने की आज्ञा दी। आजी के अन्तिम समय तक श्री महाराजजी साल भर कहीं रहें किन्तु होली पर मनगढ़ अवश्य आ जाते।"

इसी प्रकार अपनी मौसी का भी इन्होंने जीवन भर खूब आदर सम्मान किया स्वयं उनके मुख से– "एक वर्ष मैं बहुत बीमार हुई, उठना बैठना भी कठिन था। बोला–मौसी बद्रीनाथ, केदारनाथ चलोगी। हम सब लोग भी चलेंगे। मैंने सोचा अशक्त तो हूँ लेकिन मरने से पहले तीर्थ तो कर जाऊँ। दो कार व एक जीप। आगे–आगे उसकी जीप उसके पीछे मेरी कार। देखती क्या हूँ मेरा प्राण, थोड़ी–थोडी देर में मेरी ओर देखता जा रहा है। हाय रे मेरी इतनी चिन्ता है इसे, यह सोच–सोच कर मैं रो पड़ी। कछुए अपने अण्डों की जैसे देखभल करते हैं उसकी भाँति यह भी सभी का इसी प्रकार ध्यान रखता है। तभी तो हजारो लोग इसके पीछे लगे

रहते हैं।" मौसी के ही मुख से संत कृपालु महाराज की बाल सुलभ चंचलता का प्रसंग सुना गया। "मेरे एकाकी जीवन को रसमय राम कृपालु ने ही बनाया। चंचलता को लेकर तो इनका जन्म ही हुआ था। पालने में पैर लटकाना, गोदी में से बार-बार चढ़ना, उतरना और सोने में तभी सोना जब इसे वक्ष स्थल पर सुलाऊँ और लोरी सुनाऊँ। जब भी करवट बदलूँ यह उठकर बैठ जाए ऐसा लगे जैसे यह सोया ही नहीं। ये कभी किसी दूसरे बच्चे को गोद में लेने नहीं देता।" बाल्यकाल से ही दिखावटी आडम्बर इन्हें पसन्द नहीं थे। इस प्रसंग में मौसी के मुख से सुना गया- "एक बार मेरे साथ गंगा स्नान को गया, स्नान के बाद पण्डा ने सबको तिलक लगाया, जब इसकी बारी आयी, इसने मुँह फेर लिया, बहुत समझाया नहीं माना।" इस प्रकार संत कृपालु महाराज का जन्म एवं बचपन विलक्षण भावों व कार्यों से परिपूर्ण रहा।"

भक्ति पीयूष : कृपालु लीला प्रसंग, पृ.सं. 35-40

शिक्षा अर्जन - संत कृपालु जी महाराज की पारिवारिक पृष्ठ भूमि शिक्षा सम्पन्न थी। उनके अग्रज भ्राता श्री राम नरेश त्रिपाठी महू छावनी में संस्कृत के आचार्य थे। इनके पिता श्री ललिता प्रसाद वेदज्ञ ज्योतिष आचार्य रहे थे। परम्परानुसार शिक्षा संस्कार करते हुए इन्हें मनगढ़ ग्राम के ही स्थानीय विद्यालय में प्रवेश दिलवाया गया। जहाँ उन्होंने कक्षा 04 तक प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भ से ही ये प्रत्येक कक्षा में प्रथम स्थान पर रहते थे तत्कालीन विद्यालय प्रधानाध्यापक श्री सहदेव सिंह एवं समस्त अध्यापकों के ये चहेते छात्र थे। ये कक्षा में अव्वल रहते तथा प्रत्येक पाठ सदा कण्ठस्थ रहता था। आगे की शिक्षा हेतु इन्हें कुण्डा के मिडिल स्कूल में दाखिला दिलाया गया जहाँ उन्होंने कक्षा 7 तक विद्याध्ययन किया। शिक्षा के प्रति इनकी रूचि सदा से ही रही थी। प्रारम्भ में ये मनगढ़ ग्राम से प्रतिदिन विद्यालय पैदल जाते और आते। बाद में सन् 1932 से 1934 तक मिडिल स्कूल की पढ़ाई उन्होंने छात्रावास में रहकर की। मिडिल स्कूल की परीक्षा में इन्होंने उत्तर प्रदेश के 32 जिलों में प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

इनके स्वयं के मुखारविन्द से सुना गया– "प्राइमरी की भाँति मिडिल स्कूल में भी रामकृपालु के सहपाठियों को आश्चर्य होता था कि ये पढ़ते तो कभी नहीं किन्तु कक्षा में सदा प्रथम ही आते हैं। वे सोचते–इसके पीछे अवश्य ही कोई विशेष कारण होगा। मिडिल स्कूल की दूसरे वर्ष की परीक्षा के समय जब ये परीक्षा भवन जा रहे थे, इनके सहपाठियों ने अच्छे नम्बर आने का कारण इनकी कमीज का कमाल समझा। उन लोगों ने उसको फाड़ डाला और उसका एक–एक टुकड़ा अपनी जेब में रख लिया। वे सभी आश्वस्त थे कि अब उन सबके अच्छे नम्बर आयेंगे। इन्हें वापस जाकर दूसरी कमीज बदलनी पड़ी। इसी प्रकार एक बार परीक्षा भवन में प्रश्न पत्र आरम्भ होने से पूर्व इनकी स्याही नीचे गिर गयी। साथियों ने देखा और समझा स्याही गिरने से ही अच्छे नम्बर का कमाल है। सबने अपनी स्याही कक्षा में गिरा दी। सारी कक्षा स्याममय हो गई और निरीक्षक बड़बड़ा रहे थे। अब सहपाठियों ने सोचा अवश्य ही त्रिपाठी को सरस्वती सिद्ध है। कुछ लड़के, सरस्वती सिद्ध करने का मंत्र बता देने के लिए इनके पीछे पड़ गए। आपने एक जल्दी–जल्दी बोलने वाली तुकबन्दी बोल दी और कहा–इसका पाठ करो तो सरस्वती सिद्ध हो जायेगी लड़कों ने कहा लिखकर दो। इन्होंने कहा लिखकर नहीं दी जा सकती। साथियों से न बोला गया और न सरस्वती सिद्ध हुई।" *भक्ति पीयूष : कृपालु लीला प्रसंग, पृ.सं.34*

1934 के मिडिल पास करने के पश्चात आपने 1935 में पीली कोठी, श्री राम नाम संस्कृत विद्यालय, अक्षयवट में प्रवेश लिया जहाँ संस्कृत व्याकरण की कौमुदी और मध्यमा की परीक्षा दी। यहाँ भी आप कीर्तन करते और कराते। कीर्तन कराते–कराते अक्सर संज्ञा शून्य हो जाते। प्रारम्भ में तो साथ के विद्यार्थी डरे किन्तु पश्चात यह ज्ञान होने पर कि ये सात्विक भाव हैं, वे निश्ंचित हो गए। केवल इनके ऊपर निगाह रखते कि कहीं इनको कोई कष्ट न हो जाए। आप अक्सर पाठशाला का समय समाप्त हो जाने पर अपने निवास स्थान न आते और वहीं एकान्त स्थान पर कीर्तन करते थे। एक बार आप उस पहाड़ी से जहाँ आप कीर्तन करते थे नीचे गिर गए किन्तु कुछ ही देर में होश में आने पर आप स्वयं उठकर चले आए।

भक्ति पीयूष : कृपालु लीला प्रसंग, पृ.सं.34

तदनन्तर 1936 में आप वाराणसी गए। यहाँ पहुँच कर आपने व्याकरणाचार्य की परीक्षा पास की 12 वर्ष के पाठ्यक्रम को एक ही वर्ष में पूर्ण कर लिया। तत्पश्चात 1937 में आप महू छावनी गए यहाँ अपने अग्रज राम नरेश त्रिपाठी से आपने संस्कृत साहित्य व भाषा का अध्ययन किया तथा साहित्य में कौमुदी व मध्यमा की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके अलावा भी आप भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से परीक्षाएँ देते रहते थे और सभी परीक्षाओं में प्रथम आते थे।

इस प्रकार 16 वर्ष की आयु में महू से चलकर ये चित्रकूट पहुँचे जहाँ इन्होंने अनुसूइया के घने जंगलों में गुप्त वास किया तथा स्वाध्याय, ध्यान, साधना में तल्लीन रहते हुए शरभंग आश्रम गए। जहाँ ये कई बार महाभाव अवस्था में देखे गए। इनकी अति उच्च महाभाव अवस्था को कई लोग समझ नहीं पाते और कई लोग इन्हें पागल समझते। इस प्रकार चित्रकूट से वृन्दावन, मथुरा, आगरा, इलाहाबाद घूमते हुए 1942 में आप पुनः महू गए। यहाँ 1943 में आपने दो परीक्षाएँ पास की, काव्य तीर्थ एवं साहित्याचार्य की। दोनों परीक्षाएँ इन्होंने एक ही वर्ष में पास की। अगले वर्ष 1944 में इन्होंने आयुर्वेदाचार्य की भी परीक्षा उत्तीर्ण की। ये सभी परीक्षाएँ 10–10, 12–12 वर्ष में पूर्ण होती हैं। पूरा गहन अध्ययन करना पड़ता है। एक आचार्य की परीक्षा को उत्तीर्ण करने में कम से कम पाँच वर्ष अध्ययन करना ही पड़ता है लेकिन महाराज जी ने एक वर्ष में ये सभी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। ये इनकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय था। उनकी इस अद्भुत प्रतिभा से इनके सहपाठी भी प्रभावित थे और अक्सर एक दूसरे से कहते थे कि कोई दिव्य पुरुष है जो हमारे मित्र बने हुए हैं। अपने मित्रों से इनकी बहुत गहरी आत्मीयता एवं घनिष्ठता थी। अध्यापकगण भी इन्हें बहुत सम्मान देते थे और इन्हें दिव्य पुरुष मानते थे। क्योंकि ये बिना पढ़े ही सब कुछ जानते थे। *भक्ति पीयूष धारा : पृ.सं.–16, प्रकाशित लेख के अनुसार*

एक बार इनकी परीक्षाएँ चल रही थी परीक्षा में एक प्रश्न पत्र अनुवाद का था। हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद करना था। एक घण्टे का समय होता था। ये अनुवाद कठिन होता था। आप जैसे ही परीक्षा भवन में गए अनुवाद करना प्रारम्भ किया आधे घण्टे में पूरा करके बाहर आ गए। इन्होंने तीन प्रकार से वह अनुवाद किया।

(1) सामान्य संस्कृत में (विद्यार्थियों के अनुसार)

(2) विद्वानों के लिए (क्लिष्ट शब्द, समास संधि आदि जिसमें अध्यापकों को भी कोश देखने की आवश्यकता पड़ जाती थी)।

(3) पद्यात्मक अर्थात श्लोकों के रूप में अनुवाद।

श्लोक में अनुवाद करना अत्यन्त कठिन होता है। अनुवाद के अन्त में लिख दिया कि अध्यापक अपनी योग्यता अनुसार इन तीनों में से किसी भी अनुवाद को देख ले। ये सब इनकी बाल सुलभ विद्यार्थी काल की लीलाएँ थी। ऐसी ही अनेक प्रतिभाओं का परिचय इन्होंने अपने विद्यार्थी काल में दिया।

साधन साध्य : मार्च 2009 पृ.स.–29 पर प्रकाशित लेख के अनुसार

संत कृपालु महाराज 20 से 26 जनवरी 2009 में जब चित्रकूट की यात्रा पर निकले। 23 जनवरी को कामदगिरि मन्दिर दर्शन के लिए भक्त मण्डली को लेकर गए। अचानक आपको अपना विद्यार्थी जीवन याद आया, अरे यहीं तो है मेरा 'राम नाम संस्कृत विद्यालय'। शीघ्र ही वे विद्यालय के प्रांगण में पहुँच गए 68–69 वर्ष बाद भी इन्होंने पहचान लिया। वहाँ के विद्यार्थी, अध्यापक प्राचार्य हतप्रद थे कि कौन महान संत आज हमारे विद्यालय में अचानक आये हैं। उनमें से एक अध्यापक जो कभी–कभी टी.वी. पर श्री कृपालु महाराज का प्रवचन सुनते थे उसने कहा– ये तो जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज हैं। तब श्री महाराज जी बोले कि ये विद्यालय वैसा का वैसा ही है जैसा 1940 में था, कोई परिवर्तन नहीं हुआ फिर महाराज जी ने कहा ये हमारे गुरू जी का कमरा है, यहाँ बैठते थे वो। अरे भई इस कमरे में एक खिड़की हुआ करती थी वो कहाँ है ?, क्यूँकि उस खिड़की पर परदा पड़ा हुआ था तब टीचर्स ने परदा हटाकर खिड़की खोल कर दिखाया। उसी खिड़की से हमारे गुरुजी हमको देखते थे कि हम पढ़ रहे हैं कि नहीं। जब श्री महाराज जी ये सब बाते कर रहे थे तो उपस्थित लोग बड़े असमंजस में थे कि श्री महाराज जी ये सब क्या बोल रहे हैं ? क्योंकि किसी को भी ज्ञात नहीं था कि श्री महाराज जी सोलह वर्ष की अवस्था में यहाँ पढ़े हैं। तब श्री महाराज जी ने बताया कि अरे आप लोग आश्चर्य में न पड़िए ये मेरा

विद्यालय है, यहाँ मैंने करीब आठ–नौ महीने संस्कृत व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की है। तब संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य ने विस्मित होकर कहा कि आप यहाँ के विद्यार्थी रहे हैं ? कब ? और आपका पूरा नाम क्या है ? तब श्री महाराज जी ने बताया मेरा नाम राम कृपालु त्रिपाठी है और मैं सम्वत् 1997 में यहाँ पढ़ा हूँ। उस विद्यालय के प्राचार्य ने सम्वत् 1997 (सन् 1940) का पुराना रजिस्टर निकलवाया और ढूँढने लगे श्री महाराज जी का नाम। तो इस नाम के दो छात्र निकले। अब वो असमंजस में पड़ गए इनमें से कौन जगद्गुरु हैं। तब तक अध्यापक ने कहा कुण्डा प्रतापगढ़ में देखिए। तब महाविद्यालय के प्रवेश रजिस्टर में पूज्य श्री महाराज जी के प्रवेश सम्बंधित निम्न जानकारी प्राप्त हुई–

श्री राम नाम संस्कृत महाविद्यालय, अक्षयवट, चित्रकूट

क्र.सं.	–	421
नाम	–	राम कृपालु त्रिपाठी
पितृ नाम	–	ललिता प्रसाद त्रिपाठी
पता	–	मनगढ़–कुण्डा, जिला प्रतापगढ़ (यू.पी.)
कक्षा	–	मध्यमा द्वितीय वर्ष
उम्र	–	16 वर्ष 6 मास
श्रावण शुक्ल	–	वि.सम्वत् 1997 (15 अक्टूबर 1940)

ये रिकार्ड देखकर प्राचार्य एवं सभी आनन्द विभोर हो गए कि हमारे संस्कृत महाविद्यालय से पढ़ा छात्र आज विश्व के सबसे बड़े दार्शनिक विद्वान् जगद्गुरु के पद पर आसीन है वो भी मूल जगद्गुरु के रूप में जिसको सारा विश्व नमन कर रहा है।"

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज विद्यार्थी जीवन में भी अनोखी दिव्य प्रतिभा से सम्पन्न छात्र थे।

विवाह – संत कृपालु जी महाराज के जन्म पश्चात उनके नामकरण संस्कार के समय इनकी जन्म पत्रिका बनाते समय ज्योतिषाचार्य ने इनकी माता (आजी) से कहा कि ये तो एक अनोखे बालक की जन्म पत्रिका है। इनके व्यक्तित्व में संन्यासी जीवन एवं वैभवपूर्ण जीवन, इन दोनों विरोधाभासी गुणों का योग है तथा ये कभी स्थायी जीवन

नहीं व्यतीत करेंगे तथा विरक्ति का स्वभाव इनका रहेगा। गृहस्थ की डोर इन्हें बांध न सकेगी। ये बात सुनकर सहज ममतावश माता (आजी) अत्यन्त चिन्तित हुई और प्रारम्भ से ही उनका प्रयास अपने पुत्र को गृहस्थ की ओर उन्मुख करने का रहता था ताकि उनका पुत्र वैरागी न बने। *साधन साध्य : जुलाई 2009 में प्रकाशित*

संत कृपालु महाराज का विवाह मनगढ़ से लगभग 50 मील की दूरी पर स्थित प्रतापगढ़ जिले के लीलापुर ग्राम निवासी श्री कृष्ण कुमार ओझा व श्रीमती रामरती ओझा की सुपुत्री पद्मा देवी से हुआ था। इनके पिता एक बड़े जमींदार व गणित के अध्यापक थे और इन्हीं के समान अति सरल एवं उच्च कोटि के भक्त थे। इनके पितामह पं. माधव प्रसाद ओझा एक प्रख्यात ज्योतिषाचार्य व प्रकाण्ड विद्वान थे। वस्तुतः उन्होंने ही संत कृपालु महाराज को पहिचाना व उनके बाल्यकाल संबंधी अलौकिक कौतुक एवं ख्याति से प्रभावित होकर इन्होंने अपनी सर्वगुण सम्पन्न पौत्री का हाथ श्री महाराज जी को देने का निश्चय किया और तत्कालीन ग्रामीण परम्परानुसार बाल्यकाल में ही दोनों का विवाह हो गया था। विवाह के दूसरे दिन 'खिचड़ी' नामक उत्सव के अवसर पर पितामह श्री माधव प्रसाद जी ने दोनों की कुण्डली पढ़कर सुनाई और सबको इस बात से अवगत कराया कि दोनों की कुण्डली में दोनों के पच्चीसों गुण एक समान हैं। ऐसा संसार में कहीं संभव नहीं होता। कुछ गुणों की साम्यता ही दुर्लभ है, पच्चीसों की कौन कहे ? उन्होंने उपस्थित जनसमूह के सामने यह भी घोषणा की थी कि– "आप सब से मेरा निवेदन है कि आज इनके (महाराज जी) दर्शन आप जी भरकर कर लें। भविष्य में इनको सारी दुनिया पूजेगी और इनके दर्शन अति दुर्लभ हो जायेंगे। ये कोई साधारण बालक नहीं है। इनकी कुण्डली इस बात को प्रमाणित कर रही है कि साक्षात भगवान हमारे सम्मुख बैठे हैं।.........अपनी ज्योतिष विद्या के आधार पर भी मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि एक दिन यह बालक अपने ज्ञानदीप से हमारे विश्व को आलौकित करेगा। यह एक अद्वितीय महापुरुष हैं।"

सन् 1932 में जब संत कृपालु जी महाराज मात्र दस वर्ष के थे तथा कुण्डा के मिडिल स्कूल में पढ़ते थे, लीलापुर से पण्डित माधव उनके घर आये। श्री महाराज

जी के पिता से मिले। उन्होंने अपनी नातिन–कुमारी पद्मा देवी के वर के रूप में उनके पुत्र श्री रामकृपालु के लिए जिज्ञासा की। उनकी जन्मपत्री मांगी। राम कृपालु के पिता श्री ललिता प्रसाद जी ने जन्मपत्री दी। वे अपने क्षेत्र के संस्कृत और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने रामकृपालु की जन्मपत्री को कुमारी पद्मादेवी जी की जन्मपत्री से मिलाया, बहुत प्रसन्न हुए। लीलापुर जाकर उन्होंने कहा–पद्मा के लिये यह लड़का अत्यन्त उपयुक्त है। यह अवश्य ही कोई देव पुरुष है। इसका संसार में बड़ा नाम होगा।" थोड़े दिनों के पश्चात अपने अन्य संबंधियों के साथ वे आए और संबंध पक्का कर गए। सन् 1933 में अपने क्षेत्र और कुल की परम्परा के अनुसार 11 वर्ष की अल्पायु में ही शुभ मुहर्त्त में उनका विवाह सम्पन्न हो गया। उस समय पूज्य पद्मा देवी जी की आयु मात्र 06 वर्ष की थी।

संत कृपालु जी महाराज के अजा ससुर पंडित माधव प्रसाद जी प्रारम्भ से ही इनका बड़ा आदर करते थे। जब राम कृपालु लीलापुर जाते, वे उनसे संस्कृत में शास्त्रालोचना करते। एक मिडिल स्कूल के छात्र को इस प्रकार संस्कृत में सम्भाषण करते और शास्त्रों की व्याख्या करते देख वे फूले न समाते उनकी वेद शास्त्रों की व्याख्या का वे आदर करते और सब लोगों को कहते अवश्य ही ये लड़का किसी महान देवता का अवतारी है। पतिव्रत धर्म एवं सदाचार की मूर्ति माँ पद्मा देवी सदा ही संत कृपालु जी महाराज की संगिनी एवं शक्ति के रूप में रहीं। जीवन भर उन्होंने पूर्ण पतिव्रत धर्म का पालन किया। प्रारम्भ में जब महाराज जी चित्रकूट आदि स्थानों पर अज्ञातवास, महाभाव अवस्था में रहते तो ये कईं– कईं महीनों अपने गृहस्थ वास से दूर रहते। पुनः इनकी खोज की जाती और बड़े प्रयत्नों पश्चात् जब इनका पता चलता तो उन्हें प्रयासरत होकर घर लाया जाता किन्तु ईश्वरीय सहज अनुराग उन्हें कभी भी गृहस्थ जीवन में बांध नहीं सका। बार–बार ये अपने घर से चुपचाप चले जाते और शरभंग के बीहड़ जंगलों में लुप्त हो जाते।

एक बार आजी के अनुनय विनय पर इन्होंने गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया और माँ पद्मादेवी के साथ वास किया। दो पुत्र रत्न एवं तीन कन्या रत्नों से माँ पद्मा

देवी की गोद सुशोभित हुई– बड़े पुत्र श्री घनश्याम त्रिपाठी, छोटे पुत्र श्री बालकृष्ण त्रिपाठी, बड़ी पुत्री सुश्री विशाखा त्रिपाठी, मझली पुत्री सुश्री श्यामा त्रिपाठी, छोटी पुत्री सुश्री कृष्णा त्रिपाठी ये सभी आज भी संत कृपालु महाराज के व्यक्तित्व की आभा के रूप में उनके समाज कल्याण के कार्यों में सम्मिलित हैं। इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज गृहस्थ जीवन में सपरिवार होते हुए भी विरक्त रहकर अध्यात्म साहित्य एवं समाज की सेवा में तल्लीन रहे। माँ पद्मा देवी सदा उनके धर्म कार्यों में सहयोगिनी रहती। पति–पत्नी के जीवन एवं संबंध का ऐसा सुन्दर उदाहरण वर्तमान में अन्यत्र दुर्लभ है। संयमशील, धैर्य से परिपूर्ण, ममतामयी भावों से परिपूर्ण, सदा पति चरणों के ध्यान में मग्न श्रीमती पद्मा देवी कभी भी संत कृपालु महाराज के कार्यों में गृहस्थ धर्म की दुहाई देकर बाधक नहीं बनी अपितु स्वयं को सम्पूर्ण पति धर्म हेतु समर्पित किया तथा जीवन की अन्तिम श्वास तक वे उनकी शक्ति बनकर रहीं। संत कृपालु महाराज से हमें जो ममत्व और प्यार मिलता है उसका सारा श्रेय उनकी गोलोकवासिनी धर्मपत्नी श्रीमती पद्मा देवी को है। जिन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन का समस्त सुख केवल पति की प्रसन्नता में ही न्यौछावर कर दिया और इस प्रकार गुरुदेव को अपने लक्ष्य संबंधी कार्यक्रमों के सफल प्रयासों के लिए उन्हें पूर्णतया निर्बन्ध कर दिया। स्वयं अपने पतिव्रत धर्म के सहारे वर्षों त्याग, वैराग्य का जीवन जीती रहीं।

संत कृपालु जी महाराज स्वयं उन्हें अपनी शक्ति के रूप में अनुभव करते थे एवं यदा कदा कहते भी थे।13 मार्च 2009 को वे जब पंचतत्व भौतिक शरीर छोड़कर गोलोक प्रयाण कर गईं तब अश्रुपूरित जनों को सांत्वना स्वरूप श्री महाराज जी ने कहा– “आपकी माँ कहीं नहीं गई हैं। वे मुझ में ही समाहित हो गई हैं।” ऐसा कहकर वे चुप हो गए।

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज का वैवाहिक जीवन सुन्दर, सुखद, संयमपूर्ण, विरक्त भावों से परिपूर्ण एवं आदर्श रहा।

साधन साध्य : जुलाई 2010, पृ.सं. 11 पर प्रकाशित लेख के अनुसार

प्रारम्भिक वैरागी जीवन – संत कृपालु जी महाराज का प्रारम्भिक जीवन परम वैरागी एवं महाभावावस्था का रहा। ये लगभग 1938 की बात है। जब संत कृपालु जी महाराज ने 16 वर्ष की अल्पायु में चित्रकूट में शरभंग आश्रम के समीपस्थ बीहड़ वनों में एवं वृन्दावन में वंशीवट के निकट वास किया। महू में इन्होंने 10–15 दिन का कीर्तन कराया। वहाँ से अपने भ्राता से अनुमति लेकर चित्रकूट चले गए। एक दो दिन चित्रकूट रुके। उस समय चित्रकूट के आगे अनुसूइया का घना जंगल था, सैंकड़ों मीलों तक फैले हुए शरभंग आश्रम तक इस घने जंगल में प्रवेश किया। अभी तक ये जाग्रत अवस्था में ही थे किन्तु शीघ्र ही तन की सुध बुध खो दी। कहाँ चल रहे हैं ? कहाँ बैठे हैं ? कुछ पता नहीं। जोर–जोर से रुदन करते हुए अलक्ष्ञित स्थान की ओर कभी बहुत तेजी से दौड़ते कभी जड़वत बैठ जाते। इतनी जोर से चीत्कार करते कि आकाशमण्डल क्रन्दन की ध्वनि से भर जाता। कभी जोर से हुँकार भरते। श्री कृष्ण प्रेम में विभोर भावावस्था में जो भी उनको देखता वह आश्चर्य चकित होकर यही कहता कि यह तो प्रेम के साकार स्वरूप हैं, भक्तियोग रसावतार हैं। उस समय कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता। कि ज्ञान का अगाध, अपरिमेय समुद्र भी इनके अन्दर छिपा हुआ है, क्योंकि प्रेम की ऐसी विचित्र अवस्था थी कि शरीर की कोई सुधि–बुधि नहीं थी, घण्टों–घण्टों मूर्च्छित रहते, कभी उन्मुक्त अट्टाहास करते तो कभी भयंकर रुदन। खाना–पीना तो जैसे भूल ही गए थे, नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती थी, कभी किसी कंटीली झाड़ी में वस्त्र उलझ जाते तो कभी किसी पत्थर से टकराकर गिर पड़ते। कभी किसी वृक्ष का आलिंगन करके हा! श्याम सुन्दर कहकर विरह वेदना से तप्त विरहिणी की भाँति करुण क्रन्दर करते। तो कभी प्यारी जू! श्यामा जू! कहते हुए भागते मानो प्रिया जू सामने हैं और ये उन्हें पकड़ना चाहते हैं। रसिकवर गुरुवर की यह विरहावस्था थी अथवा मिलन की यह तो कोई रसिक ही समझ सकता है जो स्वयं उस भाव समाधि की अवस्था तक पहुँचा हुआ हो। प्राकृत बुद्धि से यह सब अगम्य है। भूख, प्यास, नींद सब से रहित हो गए, न इन्होंने खाया–पिया, न ही सोए। शरीर की कोई भी आवश्यकता प्राकृत शरीर को होती है

दिव्य शरीर को नहीं। दिव्य शरीर में मलमूत्र, पसीना, भूख, प्यास, निद्रा, थकान आदि कुछ बाधा नहीं पहुँचाते। शरीर की किसी भी आवश्यकता ने इन्हें बाधा नहीं पहुँचाई।

इसी परमहंस अवस्था में एक बार गोपी भाव युक्त बाबा को प्रेमदान किया, (इस घटना का उल्लेख यदा कदा संत कृपालु महाराज ने स्वयं किया है।) "मैंने एक बार शरभंग आश्रम के पास सघन वन में (तब मैं 16 वर्ष का था) एक विचित्र महात्मा को देखा। वे महात्मा अपनी पर्णकुटी में बैठे थे उनके सामने एक टूटा सा छोटा सा दर्पण रखा था एवं हाथ में एक टूटा कंघा लिए थे। वे बार–बार टूटे कंघे से अपने सूखे सिर के बालों को संवारते थे एवं बार–बार उस टूटे शीशे में देखते थे। फिर इधर–उधर चारों ओर बड़ी व्याकुलता से देखकर हा! प्राणनाथ! हा! प्राण वल्लभ! हा! प्राणेश्वर! कहरकर छोटे बच्चों की भाँति रोने लगते थे। थोड़ी देर में जैसे कुछ पा गए हों, आनन्द विभोर होकर अट्टाहास करने लगते थे। कभी कुछ बड़बड़ाते थे। कभी रूठने का सा व्यवहार करते थे। कभी नाचने लगते थे। विचित्र दशा थी उनकी। मैं चुपचाप देख रहा था जब वे घण्टों बाद चेतनावस्था में आए। तब मैंने सन्मुख होकर दण्डवत प्रणाम किया और पूछा कि अभी आप क्या कर रहे थे। उन्होंने बाल स्वभाव अनुसार सहज भाव से बताया कि अरी सखी! तू नहीं जानती प्रियतम आते होंगे। अतएव सदा तैयारी करती रहती हूँ। इतना कहकर मुझसे चिपट गए। जैसे सचमुच कोई परम व्याकुल विरहिणी, अपने प्रियतम से चिपट रही हो।"

इस प्रकार किशोरावस्था में संत कृपालु जी महाराज का जीवन परम प्रेम स्वरूप वैराग्य से परिपूर्ण था।

जंगल से बस्ती की ओर जीवन – इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज स्वयं प्रेम में डूबे होकर भी चर अचर सबको दिव्य प्रेम रस से आप्लावित करते हुए शरभंग से बस्ती की तरफ आ गए। कहीं बैठे, कहीं चले। अब जंगलों से बाहर पहले चरवारी स्टेट पहुँचे। जैसे ही वे जंगल से बाहर आए, गाँव में कुछ बच्चे खेल रहे थे। बच्चों ने देखा कि एक

नवयुवक बहुत ही सुन्दर लेकिन उन्मत्त दशा में आ रहा है। कपड़े फटे हैं, मेले हैं, सिर के बाल लम्बे हैं, आँखे खुली हैं, कभी बंद होती हैं, कभी खुलती हैं– 'कृष्ण–कृष्ण', 'राधे–राधे', पैर कुछ लड़खड़ा रहे हैं। कोई शराबी लगता है। अचानक बेहोशी सी आ गई, एक वृक्ष के नीचे गिर पड़े, फिर होश आया, फिर बैठ गए। कुछ ग्रामवासी आए, उनमें कुछ श्रद्धालु लोग भी थे। उन्होंने कहा कि ये कोई महापुरुष मालूम पड़ते हैं। श्री महाराज जी जब होश में आए तो कुछ भक्तों ने कहा कि प्रभु! आप मेरे घर चलिए। इन्होंने कहा कुछ नहीं और उठकर चल दिए। लोगों ने इसको स्वीकृति मान लिया और उनको अपने घर ले आए। उन लोगों ने देखा कि महाराज जी हर समय भाव में रहते हैं। पूर्णतया। सामान्य कभी नहीं रहते थे। अगर वे सामान्य रूप से बात भी कर रहे हैं तो भी आँखे कुछ बन्द हैं, लगता है शरीर का भान बिल्कुल नहीं है। महाराज श्री वहाँ पहुँचे, घर वालों ने कहा आपके कपड़े बदल दें। महाराज जी ने कुछ नहीं कहा लेकिन महाराज श्री जी की मुद्रा इतनी भोली, इतनी आत्मीयतापूर्ण थी कि लोगों को लगता था कि मैं इनको अपने हृदय से लगा लूँ, अपने ही हैं; 'अपने ही हैं' अपनी आत्मा ही हैं तो घर वालों ने महाराज जी के कपड़े बदले। शरीर पोंछा गीले तौलिए से, खाने को लाए। इस प्रकार एक आध दिन वहाँ निवास किया उस घर में, उन लोगों ने देखा कि महाराज जी हर समय भाव में रहते हैं, पूर्णतया सामान्य कभी नहीं रहते थे। कभी–कभी मुख से कुछ वाक्य निकल जाते, न दिन का पता न रात का पता, क्योंकि ये कभी सोते ही नहीं थे। ये बात प्रसिद्ध हो गई चरवारी स्टेट में कि एक सन्त आए हैं। सोलह वर्ष की अवस्था है, सदैव परम हंस अवस्था में रहते हैं। जहाँ रुके थे वहाँ भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। लगभग दो वर्ष तक आचार्य श्री इस परमावस्था में रहे।"

इस प्रकार श्री महाराज जी कुछ दिवस वहाँ चखारी स्टेट में रहे। वे किस समय किस घर में चले जाएँगे, कहाँ पर भोजन पाएंगे, कहाँ पर पानी पीएंगे ये कोई निश्चित नहीं था। इसके बाद वे पैदल ही मध्यप्रदेश चले गए कोई योजना नहीं थी कि यहाँ से कहाँ जाना है। इस प्रकार चखारी से महोबा और कई प्रान्तों में होते हुए सांसी आए

और धीरे–धीरे वृन्दावन की तरफ प्रस्थान करने लगे। चित्रकूट से वृन्दावन के आगमन तक लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए। 1940 की बात है, जब आचार्य श्री वृन्दावन आए। उस समय सावन का महीना था। सावन में ब्रज में काफी उत्सव होते हैं। उसी महीने में उन्होंने उसी भावोन्मत्त अवस्था में ब्रज में प्रवेश किया। उनकी भावावस्था की चर्चा पूरे ब्रज मण्डल में फैल गयी।

उसी समय आगरा में एक भक्त जानकी प्रसाद माथुर रहते थे। उनको ब्रिटिश सरकार ने राय साहब की पदवी दी थी। सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनकी रुचि थी– सब संतों की सेवा करना। वे भी वृन्दावन में इनसे मिलने गए और खाना भी साथ लेकर गए। महाराज जी की स्वीकृति से यह खाना इन्होंने थाली में परोसा। ये शायद पहली बार श्री महाराज जी ने दो वर्ष में अपने हाथ से भोजन किया होगा। वे इनको अपने साथ मथुरा ले आए। इस प्रकार ये परमहंस अवस्था से सामान्य अवस्था की ओर आने लगे। तब उन्होंने ढोलक की थाप पर 'भजो गिरिधर गोविन्द गोपाला' संकीर्तन करना प्रारम्भ किया।

मथुरा में कुछ दिन रहने के बाद श्री संत कृपालु महाराज आगरा आ गए। 1942 में फिर महू चले गए। पुनः कृपालु जी महाराज इलाहाबाद में लक्ष्मण स्वरूप भटनागर के यहाँ आ गए। वहाँ से ये प्रतापगढ़ चले गए। यहीं से इनका ज्ञान प्रकटीकरण प्रारम्भ हुआ। श्री महाबनी जी के यहाँ प्रतिदिन रात्रि बारह बजे तक संकीर्तन होता था। यहाँ आकर इनके सभी रूप प्रकट होने लगे– साधक भी, सिद्ध भी और गुरु भी। श्री महाबनी जी के यहाँ रहते ही ये भावावेश अवस्था में संकीर्तन करवाते और वहीं पर उन्होंने चित्रकूट सम्मेलन का आयोजन किया।

ज्ञान का प्राकट्य चित्रकूट सम्मेलन – 16 अक्टूबर 1955 से 31 अक्टूबर 1955 तक श्री संत कृपालु जी महाराज ने चित्रकूट में संत सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें 72 संत और विद्वानों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में स्वयं संत कृपालु जी महाराज स्वागत अध्यक्ष बने एवं सभी संतों की स्वयं सेवा टहल की। स्वागत भाषण में श्री महाराज जी ने कुछ विषय सभी विद्वान संतों के समक्ष रखे यथा– वेदों में कर्म,

ज्ञान, भक्ति आदि कितने स्वरूप बताए गए हैं ? निर्गुण और साकार का समन्वय, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत का समन्वय, ईश्वर प्राप्ति का सुगम मार्ग, वैदिक धर्मानुसार आदि। प्रश्नों का उत्तर देने के लिए वक्ताओं ने भरपूर प्रयास किया किन्तु जनसाधारण संतुष्ट नहीं हुआ। स्वयं सभी वक्ताओं ने मेजबान स्वयं प्रश्नकर्त्ता को समाधान करने की चुनौती दे डाली। इससे पूर्व श्री महाराज जी ने कभी भी सार्वजनिक प्रवचन या भाषण नहीं दिए थे। ये पहला अवसर था जब उन्होंने सार्वजनिक रूप से लगभग दो लाख जन सभा के सम्मुख उक्त आध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान वेदों शास्त्रों के अनुसार किया। उनकी विद्वता को सुन और देखकर सभी हक्के-बक्के रह गए। क्योंकि इससे पूर्व कभी भी किसी ने उनके शास्त्रीय ज्ञान को नहीं सुना और जाना था। इस सम्मेलन में काशी विद्वत् परिषत् के उपाध्यक्ष श्री गिरिधर शर्मा भी आए हुए थे और काशी विद्वत् परिषत् के ही छः विद्वान इस सम्मेलन में आए थे। उन सभी ने काशी लौटकर संत श्री कृपालु जी महाराज के समस्त वेद शास्त्रों के अद्‌भुत गहन ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस समय महाराज जी की आयु मात्र 32 वर्ष की थी। काशी विद्वत् परिषत् के सभी सद्स्यों को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि हिन्दू धर्म के सभी शास्त्रों का ऐसा गहन ज्ञान इतनी कम अवस्था के एक लड़के को कैसे हो सकता है। इसके बाद अगले वर्ष संत कृपालु जी महाराज ने कानपुर सम्मेलन किया।

कानपुर सम्मेलन – कानपुर में फूलबाग मैदान में, अब तो वहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें बन गयी जिससे यह छोटा हो गया है, लेकिन उस समय विशाल मैदान था। 5 अक्टूबर 1956 से 19 अक्टूबर 1956 तक यह अद्वितीय महाधिवेशन हुआ। इसमें भी तमाम बड़े-बड़े महात्माओं को बुलाया गया। जब इस सम्मेलन की सूचना काशी विद्वत् परिषत् के विद्वानों के पास पहुँची तो वहाँ के जनरल सेक्रेटरी श्री राज नारायण शुक्ल अचानक वहाँ पहुँचे, बिना किसी सूचना के ताकि वे संत श्री कृपालु जी महाराज की विद्वत् ख्याति को स्वयं औचक निरीक्षण से परख सकें। जब वे सम्मेलन के प्रारम्भ में पहुँचे तो पता लगने पर संत कृपालु जी महाराज ने वक्ताओं की सूची में

उनका नाम भी लिख दिया और उनसे मंच पर बोलने का आग्रह किया। शुक्ल जी ने कहा पहले आप बोलिए मैं बाद में बोलूंगा। महाराज जी ने कहा ठीक है। महाराज जी प्रवचन करने लगे तथा शुक्ल जी पेन कागज उठाकर सुनने लगे। ताकि उनकी गलतियों को लिखते जाएँ। महाराज जी प्रवचन देते गए.......लगभग डेढ़ घण्टा लेकिन शुक्ल जी का पेन चला ही नहीं। इसके बाद श्री राज नारायण शुक्ल को बोलने का आग्रह किया गया किन्तु उन्होंने कहा कि मैं कल बोलूँगा। दूसरे दिन उन्होंने कहा कि आज मैं आपसे पहले बोलूँगा। श्री महाराज जी ने कहा 'ठीक है।' तब शुक्ल जी ने महाराज जी के विषय में बोलना शुरू किया कि 'हमने कभी यह स्वीकार नहीं किया था एवं न सोचा था कि इतनी विद्वत्ता किसी में हो सकती है, ऐसा भी विद्वान कोई हो सकता है। हम इनका प्रवचन सुनकर नतमस्तक हो गए हैं। उन्होंने सार्वजनिक रूप से जो मंच से घोषणा की वह निम्नानुसार है–

"कानपुर नगर निवासियों का यह परम सौभाग्य है कि अध्यात्म जगत की महानतम विभूति संत शिरोमणि श्री कृपालु जी महाराज ने इस वर्ष के महाधिवेशन का आयोजन उनके नगर में किया है। गत वर्ष यह सम्मेलन चित्रकूट धाम में हुआ था। संत कृपालु जी महाराज ने बारह दर्शनों का समन्वय किया था। इस वर्ष आपने कानपुर नगर को यह सौभाग्य दिया है। यहाँ अध्यात्म एवं भौतिकवाद का समन्वय किया है........काशी के विद्वान आसानी से किसी को समस्त शास्त्रों का विद्वान नहीं स्वीकार करते। हम तो पहले शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारते हैं, हम उसे हर प्रकार से कसौटी पर कसते हैं तब उसे शात्रज्ञ स्वीकार करते हैं। हम आज इस मंच से इस विशाल विद्वन्मंडल को यह बताना चाहते हैं कि हमने संताग्रगण्य श्री कृपालु जी महाराज एवं उनकी दिव्य प्रतिभा को पहचाना है और हम आपको सलाह देना चाहते हैं कि आप भी उनको पहचाने और उनसे लाभ उठाएँ। यहाँ आने से पूर्व भी हमने श्री कृपालु जी महाराज के बारे में सुना था। इतनी छोटी अवस्था में उन्होंने सब वेदों शास्त्रों का इतना विलक्षण ज्ञान प्राप्त कर लिया है यह मैंने इससे पूर्व कभी भी स्वीकार नहीं किया था। किन्तु कल उनका दिव्य प्रवचन सुनकर मैं मंत्रमुग्ध हो गया।

इस प्रकार का प्रवचन भगवान की देन है। इस प्रकार की प्रतिभा एवं इस प्रकार का ज्ञान कोई स्वयं अर्जित नहीं कर सकता।..........हम काशी के लोग यही देखते हैं कि किसमें कितनी गहराई है। आज यहाँ बैठे अनेक व्यक्ति हमारे इस कथन का समर्थन करते हुए श्री कृपालु जी को पहचान रहे होंगे............लोग श्री कृपालु जी महाराज को समझें और इनके सम्पर्क में आकर इनके सरल, सरस, अद्‌भुत एवं विलक्षण उपदेशों को सुनें तथा उसे अपने जीवन में क्रियात्मक रूप में उतार कर अपना कल्याण करें।"

जगद्‌गुरूत्तम की उपाधि – इस प्रकार श्री राज नारायण शुक्ल काशी विद्वत् परिषत् लौट गए और वहाँ पहुँचकर अन्य विद्वानों को संत कृपालु जी महाराज की विद्वता के बारे में बताया कि इतनी कम उम्र में न केवल उनको सारे वेद शास्त्रों का गहन ज्ञान है अपितु सभी शास्त्रों और विषयों का समन्वय भी करते हैं किन्तु अन्य विद्वान इस बात को मन से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे अतः उनकी परीक्षा लेने की दृष्टि से उनको काशी आने का निमंत्रण भेजा। उनकी मंशा श्री महाराज जी को चारों तरफ से घेरकर हराने की थी। श्री संत कृपालु जी महाराज अपने दो तीन शिष्यों के साथ पहुँचे। उनके एक भक्त से काशी के विद्वान् ने पूछा कि आपके श्री महाराज जी के बारे में हमने बहुत सुना है। क्या वे संस्कृत में भी बोल सकते हैं ? इस प्रश्न पर उस भक्त ने बिना महाराज जी की आज्ञा से उन्हें हाँ कर दी कि वे संस्कृत में ही प्रवचन देंगे। बाद में उस भक्त को डर लगने लगा कि वे यह क्या कह आए। क्योंकि इससे पूर्व उन्होंने कभी भी महाराज जी को संस्कृत में बोलते नहीं सुना था। खैर.......डरते डरते ही उस भक्त ने महाराज जी को यह बात बताई तो संत कृपालु जी महाराज जी ने बड़ी सरलता से कहा 'अब तू कह आया है तो संस्कृत में भी बाले देंगे।' जैसे कोई साधारण सी बात हो।

अगले दिन वे काशी विद्वत् परिषत् पहुँचे और मंच से संस्कृत में ही बोलना शुरू किया। जैसे-जैसे उनका प्रवचन आगे बढ़ा उनकी संस्कृत भाषा का स्तर भी क्लिष्टतम् व परिष्कृत होने लगा। ऐसी स्थिति हो गयी कि संस्कृत के विद्वान भी समझने में कठिनाई अनुभव करने लगे। पहले ही दिन उन्होंने काशी विद्वत् परिषत्

के सभी विद्वानों को हिला दिया। परिषत् में 500 विद्वान् थे, उनमें से प्रत्येक किसी न किसी एक वेद शास्त्र ग्रंथ का परम विद्वान था। श्री महाराज जी ने कहा कि “आप लोग कहते हैं कि वेद जो हैं अपौरुषेय हैं, नित्य हैं, अथोरिटि हैं। इन्हीं के आधार पर बाकी सब सनातन ग्रंथ चलते हैं, लेकिन मैं कहता हूँ गीता और वेद जैसी गलत पुस्तक न थी, न है, न होगी। यह सुनकर सभी विद्वान क्रोधित हो गए। तब उन्होंने कहा– आप लोग मेरी बात सुनकर आश्चर्यचकित हो रहे हैं ? लेकिन मैं सिद्ध कर सकता हूँ कि मैंने जो कुछ भी कहा है वह सत्य है। तब महाराज जी ने सिद्ध किया, वेद से वेद को काटा और गीता को गीता से काटा। सैंकड़ों प्रमाण देकर श्री महाराज जी ने कहा– आप में से किसी को मेरी कोई बात ठीक नहीं लगी हो तो आकर इसका समाधान करे, लेकिन कोई भी कुछ भी नहीं बोला। फिर महाराज जी ने कहा अब मैं यह सिद्ध करूँगा कि गीता और वेद से श्रेष्ठ पुस्तक न थी, न है, न होगी। और इसको भी सिद्ध कर दिया। इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने नौ दिन तक परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का अद्भुत समन्वय कर परिषत् के सभी विद्वानों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस पर श्री राज नारायण शास्त्री ने समस्त सभा में घोषणा की कि कोई इन्हें शास्त्रार्थ में हराए वरना इन्हें जगद्गुरु की उपाधि देनी होगी। सभी विद्वानों ने एकमत होकर कहा– शास्त्रार्थ तो मनुष्य से किया जाता है, ये मनुष्य तो हैं ही नहीं, इनसे हम क्या शास्त्रार्थ कर सकते हैं। फिर अगले दिन 14 जनवरी 1957 को समस्त विद्वानों की सर्वसम्मति से संत कृपालु महाराज को ‘जगद्गुरुत्तम’ की उपाधि से विभूषित किया गया। जिसके प्रमाण स्वरूप पद्य प्रसूनोपहार प्रदान किया गया। उन्होंने स्वीकार किया कि चारों जगद्गुरुओं के सिद्धान्तों का समन्वय करने वाला यह कोई अवतारी पुरुष ही है, इतनी अल्पायु में इतना अधिक ज्ञान साधारण प्रतिभा से असम्भव है। जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज के श्री मुख से सभी जगद्गुरुओं के सिद्धान्तों का वेद, शास्त्र सम्मत समन्वय सुनकर काशी के विद्वान विस्मय से अभिभूत हो नतमस्तक हो गए। अतः उन सभी ने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की कि श्री कृपालु जी जगद्गुरुओं में भी सर्वोत्तम हैं।

“धन्यो मान्य जगद्गुरूत्तम पदैः सोऽयं समभ्यर्च्यते।”

इतना ही नहीं उन विद्वानों ने श्री महाराज जी के अनुभवात्मक दिव्य ज्ञान व भक्ति रस से ओत–प्रोत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अन्य बहुत सी उपाधियाँ भी प्रदान की। इसी प्रकार संत कृपालु जी महाराज के व्यक्तित्व के साथ–साथ उनके कृतित्व का परिचय निम्नानुसार है।

4.1.3 संत कृपालु महाराज का कृतित्त्व परिचय

संत कृपालु महाराज का साहित्यक परिचय निम्नानुसार है–

गद्य साहित्य

प्रेम रस सिद्धान्त – इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषता यही है कि समस्त विरोधी सिद्धान्तों का सुन्दर सरल भाषा में समन्वय किया गया है। इस पुस्तक के प्राक्कथन स्वरूप स्वयं श्री कृपालु जी महाराज ने लिखा है। “इस पुस्तक में मैंने क्या लिखा है, यह तो आप लोगों को पढ़ने से ज्ञात हो ही जाएगा। इस पुस्तक को मैंने क्यों लिखा है, यह प्रश्न बड़ा ही जटिल सा है, तो आप लोगों में से कुछ लोग कह सकते हैं– बड़ा महापुरुष का दादा बना है, जो जीव कल्याण का कार्य करने चला है, ‘यदि मैं कहूँ’ ऐसे ही कुछ टूटे–फूटे शब्दों की बकबक लिख दी है– तो कुछ लोग कह सकते हैं कि व्यर्थ ही ऐसी अनधिकार चेष्टा करने की क्या आवश्यकता है। ‘यदि मैं कहूँ’ मुझे श्री राधा–कृष्ण की प्रेरणा हुई थी, स्वप्न हुआ था या आदेश हुआ था। तो भी कुछ लोग कह सकते हैं कि श्री राधा–कृष्ण का बड़ा अन्तरंग बनता है जो इसको प्रेरणा आदि हुई है। अतएव मैं क्या कारण बताऊँ, मेरी बुद्धि में नहीं आता, जिसे सब लोग मान लें। इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे प्रवचनों को सुन सुनकर अधिकांश लोगों ने कहा कि महाराज जी! यदि ये सभी प्रवचन छप जाएँ तो बड़ा लाभ हो। मैंने बिना कुछ सोचे विचारे ही लोगों के कहने में आकर जो बुद्धि में आया लिख दिया। साथ में शास्त्र वेदों पुराणों एवं अन्यान्य धर्म ग्रंथों तथा महापुरुषों के आप्त प्रमाण भी लिख दिए। अब जो कुछ भी है, आप लोगों के समक्ष है। मुझ अकिंचन की भेंट को स्वीकार कीजिए एवं मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं श्री राधा–कृष्ण चरणारविन्द का यतकिंचित पान कर सकूँ।” इस प्रकार इस ग्रंथ में संत कृपालु जी महाराज के सिद्धान्त का निरुपण है।

सेवक सेव्य सिद्धान्त – इस ग्रंथ में धर्म, अर्थ काम मोक्षादि से उदासीन होकर केवल श्रीकृष्ण सुखैक तात्पर्यमयी निष्काम भक्ति द्वारा सेव्य श्रीकृष्ण की सेवा ही जीव का परम चरम लक्ष्य प्रदर्शित किया गया है। भक्ति युक्त कर्म, ज्ञानादि का भी सम्मान किया गया है। आनन्दकन्द सच्चिदानन्द श्रीकृष्णचन्द्र के सांगोपांग शास्त्रीय रूपध्यान का भी दिग्दर्शन कराया गया है। जो साधक के हेतु परमोपयोगी है।

कृपालु पंचामृत – इस रचना में उनका दिव्य उपदेश है। विश्व का प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः अनंत–आनंद ही चाहता है, क्योंकि वह आनंदकंद सच्चिदानंद श्रीकृष्णचंद्र का अंश है। उस आनंदप्राप्ति की साधना में अनंत वादों के विवाद चल रहे हैं, किन्तु उन समस्त वादों का समावेश निर्विवाद रूप से भौतिक वाद एवं अध्यात्मवाद में ही हो जाता है। जीव जिस अनंत दिव्यानंद को चाहता है, वह केवल श्रीकृष्ण–कृपा से ही प्राप्त होगा। अतः मन को सदा श्रीकृष्ण एवं उनके नाम–रूप–गुण–लीला–धाम तथा उनके स्वजन में ही रखना है। शरीर से शरीर संबंधी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु यथोचित कर्म करते रहना है। बस 'मन यार में तन कार में', यही गीता का कर्मयोग है। यह वेदांत का ज्ञानयोग है।

पद्य साहित्य

भक्ति शतक – श्री राधा–कृष्ण सम्बन्धी भक्ति मार्गीय सिद्धान्तों से युक्त इस ग्रन्थ में 100 दोहे हैं। प्रत्येक दोहे की व्याख्या भी लिखी गई है। सभी शास्त्रों वेदों का सार इन दोहों में लिख दिया गया है।

प्रेम रस मदिरा – आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र को भी क्रीतदास बना लेने वाला उन्हीं का परमान्तरंग प्रेम तत्व है तथा यही प्रत्येक जीव का परम चरम लक्ष्य है। 'प्रेम रस मदिरा' में इसका विशद निरूपण किया गया है तथा इसकी प्राप्ति का साधन भी बताया गया है। इसमें 1008 पद हैं जिनमें श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन, वेद शास्त्र, पुराणादि सम्मत एवं अनेक महापुरुषों की वाणियों के मतानुसार किया गया है। सगुण–साकार ब्रह्म की सरस लीलाओं का रस वैलक्षण्य विशेषरूपेण

श्री कृष्णावतार में ही हुआ है। अतः इन सरस पदों का आधार उसी अवतार की लीलाएँ हैं। अर्थ साहित इस पुस्तक को दो भागों में प्रकाशित किया गया है।

राधा गोविंद गीत – ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह दोहों के रूप में, दो भागों में प्रकाशित, यह एक अद्बितीय एवं अनुपमेय ग्रन्थ है। वेद, पुराण, शास्त्र सभी का मन्थन करके ज्ञान के अगाध अपरिमेय समुद्र से आचार्य श्री ने कुछ रत्न निकालकर सामने रख दिये हैं। इतनी सरल भाषा है जो सर्वधारण को भी ग्राह्य है। वेदव्यास ने वेदों को सरल रूप में पुराण के रूप में प्रकट किया, किन्तु '**राधा गोविन्द गीत**' में तो सभी शास्त्रों, वेदों पुराणों का सार है। आश्चर्य की बात तो यह है कि सभी दोहे चलते–फिरते ही हँसी–खेल में ही बने हैं। भगवत्क्षेत्र सम्बन्धी कोई भी प्रश्न ऐसा नहीं है जिसका उत्तर इसमें न हो।

सौभाग्यशाली पाठकों को पढ़ने पर ही ज्ञात होगा कि कितनी बड़ी ज्ञान–राशि उनके हाथ में है। जो अगणित जन्म माथा पच्ची करने के बाद भी प्राप्त न हो पाती। कलियुग में दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से तपे हुए जीवों के लिये यह ग्रन्थ अत्यधिक उपयोगी है।

श्यामा श्याम गीत – ब्रजरस से आप्लावित '**श्यामा श्याम गीत**' जगद्‌गुरु श्री कृपालु जी महाराज की एक ऐसी रचना है, जिसके प्रत्येक दोहे में रस का समुद्र ओतप्रोत है। श्रीराधाकृष्ण की अनेक मधुर लीलाओं का सुललित वर्णन हृदय को सहज ही श्यामा श्याम के प्रेम से सराबोर कर देता है। अधिक क्या कहा जाय, '**श्यामा श्याम गीत**' सरल भाषा, मधुरतम भाव व गेय पदावली की एक ऐसी त्रिवेणी है, जिसमें अवगाहन करके ही भावुक महानुभाव इसकी लोकोत्तर रमणीयता का यत्किंचित् रसास्वादन एवं जगद्‌गुरु श्री कृपालु जी महाराज के 'भक्तियोगरसावतार' स्वरूप की एक झलक प्राप्त कर सकेंगे।

ब्रज रस माधुरी – श्री कृष्ण प्रेम से ओत प्रोत संकीर्तन संग्रह है। नित्य नवीन संकीर्तन जो आचार्य श्री के श्री मुख से प्रेम उन्मत्त अवस्था में निःसृत होते रहते हैं, इस पुस्तक में संकलित कर दिये गये हैं। अभी तक रचित सभी कीर्तन तीन भागों में प्रकाशित हैं।

युगल रस – आचार्य श्री के अनुसार जीव का चरम लक्ष्य श्री कृष्ण का माधुर्य भाव युक्त निष्काम प्रेम प्राप्ति है तदर्थ श्रवण, कीर्तन और स्मरण तीन प्रकार की भक्ति का अभ्यास करना है। इन तीनों साधनों में भी स्मरण प्रमुख है। अतएव आचार्य श्री येन केन प्रकारेण तत्वज्ञान साधकों के मस्तिष्क में भरने के लिए परम व्याकुल रहते हैं जिससे उनकी प्रेम पिपासा उत्तरोत्तर तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम हो जाय। एतदर्थ नित्य नवीन–नवीन रचनाओं की अमूल्य निधि देकर आचार्य श्री दुर्लभ युगल रस का वितरण कर रहे हैं। वर्तमान प्रकाशित पुस्तक 'युगल–रस' में 100 पदों का संकलन किया गया है। दिव्य प्रेम में ओत प्रोत पदों में भक्ति सम्बन्धी शास्त्रीय सिद्धान्तों का निरूपण अत्यधिक सरस और रोचक है, सर्वसाधारण के लिये ग्राह्य है। इसके अतिरिक्त दैन्य, शृंगार और लीला संबंधी पद भी हैं।

युगल शतक – ब्रजरस में सराबोर करने वाला '**युगल–शतक**' एक अद्वितीय एवं अनुपमेय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में श्री कृष्ण के पचास पद तथा श्री राधारानी के पचास पद संकलित किये गये हैं। इन पदों में निहित रस का रसास्वादन तो कोई रसिक ही कर सकता है फिर भी पाठक पढ़ने के बाद अनुभव करेंगे, ऐसा रस कभी नहीं मिला। श्री महाराज जी जब नया पद सुनाते हैं तो मूर्तिमान रस ही प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है मानो वह रस भी हैं और रसास्वादक भी। प्रज्ञा चक्षु वालों के लिए भी और ब्रज रस पिपासु भावुक भक्तों के लिए भी यह ग्रंथ अत्यधिक उपयोगी है क्योंकि इन पदों में केवल लीला–माधुरी और शृंगार माधुरी ही नहीं है, सिद्धान्त पक्ष का भी समावेश है।

युगल माधुरी – ब्रजरस से ओतप्रोत '**युगल माधुरी**' श्यामा–श्याम संकीर्तन संग्रह है। ब्रजरसिकों ने जिस श्री राधा–कृष्ण प्रेम माधुरी का वर्णन अपने साहित्य में किया है उसी दिव्य प्रेम रस को जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज जी ने अपने कीर्तनों में पूर्णरूपेण समाविष्ट कर दिया है। जिसका श्रवण, मनन व कीर्तन भावुक भक्तों के हृदयों को श्यामा–श्याम की प्रेम रस माधुरी से परिप्लुत कर देता है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि संकीर्तनों में ब्रजरस का सिद्धान्त पक्ष भी है और लीला पक्ष भी है। श्री कृष्ण तत्व, श्री राधा तत्व, भक्ति तत्व तथा गुरुतत्व जैसे गंभीर विषयों का निरूपण अत्यधिक सरसता से किया गया है।

श्री कृष्ण द्वादशी – इस पुस्तक में बारह पद हैं। जिनमें आनन्दकन्द सच्चिदानन्द श्रीकृष्णचन्द्र के सांगोपांग शास्त्रीय रूपध्यान का दिग्दर्शन कराया गया है। प्रत्येक अंग सौन्दर्य चित्रण इतना मनोहारी है कि बहुत कम प्रयास से साधक के मानस पटल पर श्री कृष्ण की सजीव झाँकी अंकित हो जाती है। अतः प्रत्येक साधक के लिये परम उपयोगी है।

श्री राधा त्रयोदशी – वृषभानुनन्दिनी राजेश्वरी श्री राधा रानी के प्रेम रस सार स्वरूप विग्रह का सांगोपांग चित्रण अत्यन्त ही आकर्षक एवं अनूठे ढंग से किया गया है। इसमें 13 पद हैं। प्रत्येक पद में मधुरातिमधुर प्रेम रस धारा प्रवाहित हो रही है।

संकीर्तन सरगम – यह पुस्तक निःसन्देह भक्तियोग की क्रियात्मक साधना में अत्यधिक सहायक सिद्ध होगी क्योंकि गायन के साथ–साथ किसी वाद्य–विशेष का उपयोग हृदय तंत्री के तारों को सुगमता से झंकृत कर, श्यामा–श्याम मिलन की लालसा बढ़ाता है; हृदय सरलता से द्रवित हो जाता है। यही भक्ति का आधार है। अतः साधकों को साधना में अवश्य अवश्य लाभ होगा। इसी उद्देश्य से यह पुस्तक प्रकाशित की गई है।

प्रवचन माधुरी

नारद भक्ति दर्शन – संत श्री कृपालु महाराज द्वारा भक्ति धाम मनगढ़ में अक्टूबर 1990 में ग्यारह प्रवचनों के रूप में नारद भक्ति सूत्रों की जो व्याख्या की गई है वह विलक्षण ही है। इस प्रवचन श्रृंखला में श्री महाराजजी ने इतना अधिक तत्त्व ज्ञान भर दिया है कि भक्तिमार्गीय किसी भी साधक के लिए इससे अधिक और कुछ सुनने समझने की आवश्यकता ही नहीं है। श्री महाराजजी ने इस प्रकार से व्याख्या की है कि साधना भक्ति, श्रवण, कीर्तन, स्मरण का स्वरूप भी पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। श्रोताओं के आग्रह पर ही इस दुर्लभ प्रवचन श्रृंखला को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

भगवद् भक्ति – पश्चिमी बंगाल के श्री नवद्वीप धाम में श्री महाराज जी ने–

हरि अनुराग हो या गोविन्द राधे। जग विराग हो हो मन से बता दे।।

इस स्वरचित दोहे की व्याख्या करते हुए बताया कि वास्तविक भक्ति किस प्रकार की जाय जिससे अन्तः करण शुद्धि होने पर दिव्य भक्ति प्राप्त करके जीव श्री कृष्ण की नित्य सेवा प्राप्त कर सके। 04 जनवरी 2007 से 11 जनवरी 2007 तक प्रत्येक दिन इस दोहे की व्याख्या श्री महाराज जी द्वारा की गई। प्रस्तुत पुस्तक में यह प्रवचन श्रृंखला प्रकाशित की गई है।

प्रेम भिक्षां देहि – संत कृपालु जी महाराज ने समस्त वेदों शास्त्रों के सार स्वरूप दैनिक प्रार्थना लिखकर साधकों के लिए साधना का बहुत संक्षिप्त रूप प्रकट कर दिया है। कोई भी साधक अगर पूरे मनोयोग के साथ यह प्रार्थना रूप ध्यान युक्त करता है तो वह अपने आप में दिव्य प्रेम प्राप्ति का सर्वसुलभ साधन है। प्रस्तुत पुस्तक में संत कृपालु जी महाराज के विभिन्न प्रवचनों का अंश संकलित किया गया है, जो दैनिक प्रार्थना के प्रत्येक वाक्य का अर्थ भली भाँति स्पष्ट करता है।

नाम महिमा – प्रस्तुत पुस्तक में जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज द्वारा समय–समय पर नाम महिमा पर दिए गए प्रवचनों के अंश संकलित करके उन्हें इस प्रकार से क्रमबद्ध किया गया है कि एक साधारण व्यक्ति भी यह भली प्रकार समझ सके कि किस प्रकार नाम संकीर्तन द्वारा वह भगवत्प्राप्ति कर सकता है। यद्यपि जगह–जगह अखण्ड संकीर्तन हो रहे हैं, किन्तु भगवन्नाम विज्ञान को भली भाँति न समझने के कारण हमारा लाभ नहीं हो पा रहा है। अतः नाम महिमा को समझकर गुणगान करने से ही संकीर्तन द्वारा वास्तविक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

गुरु कृपा – प्रस्तुत पुस्तक में गुरु कृपा से संबंधित कुछ सामग्री प्रकाशित की गई है। भगवत्कृपा का सबसे पक्का प्रमाण भगवज्जन मिलन है। कृपा से लाभ लेना तभी संभव है, जब इस कृपा को बार–बार चिन्तन में लाया जाए। भगवज्जन का यदि दर्शन मात्र प्राप्त हो जाए तो बार–बार चिन्तन कर आनन्द विभोर होना चाहिए क्योंकि उसके दर्शन को पाने या दिलाने की सामर्थ्य किसी भी साधना में नहीं है। यदि दर्शन के अतिरिक्त और भी सामीप्य मिल जाए फिर तो बात ही क्या है। यदि उस अमूल्य

निधि को पाकर भी साधारण भावना या चिन्तन रहा तो महान कृतध्नता एवं महान दुर्भाग्य ही होगा, क्योंकि इससे अधिक हमें क्या पाना शेष है। इसी सिद्धान्त का निरुपण इस पुस्तक में है।

जीव का लक्ष्य – जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज द्वारा दी गई इस प्रवचन शृंखला में सात प्रवचन हैं जो उन्होंने भक्ति धाम मनगढ़ में होली साधना शिविर 2003 में (11 मार्च से 17 मार्च) दिए। सभी श्रोताओं ने प्रेमाग्रहपूर्वक कहा कि VCD's. DVD's कैसेट के साथ–साथ यदि श्री महाराज जी के प्रवचन पुस्तक रूप में भी प्राप्त हो जाएँ तो विषय अधिक हृदयग्राही हो जाता है। इसी उद्देश्य से इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया। पुस्तकों की शृंखला–'प्रवचन माधुरी में यह पुस्तक नं. 12 है।'

मैं कौन मेरा कौन – 'मैं कौन मेरा कौन' विषय पर गूढ़ विस्तृत प्रवचन शृंखला जो पिछले कुछ समय से आस्था एवं संस्कार आदि टी.वी. चैनलों पर प्रसारित की जा रही है। इसी प्रवचन शृंखला को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक में व्यक्ति के आत्मिक स्वरूप एवं उसके अन्तिम परम लक्ष्य को निगूढ़ सिद्धान्त स्वरूप विभिन्न वेदों शास्त्रों के प्रमाण स्वरूप समझाया गया है। जीव का वास्तविक स्वरूप क्या है ? जीव का वास्तविक संबंधी कौन है ? वह संबंधी कैसे मिलेगा ? उस परम संबंधी को कैसे पाया जाए आदि प्रश्नों का सुन्दर निरुपण एवं निदान इस प्रवचन माधुरी में किया गया है।

भक्ति की आधारशिला – प्रस्तुत पुस्तक संत श्री कृपालु जी महाराज द्वारा विभिन्न अवसरों पर प्रवचन एवं दोहों की व्याख्या स्वरूप भक्ति के स्वरूप का निरुपण किया गया तथा भक्ति के लिए आवश्यक गुण एवं लक्षणों का विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया कि विनम्रता, सरलता, निश्छलता भक्ति की आधारशिला है। इन्हीं भक्ति प्रवचनों के निचोड़ को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

महारास अधिकारी – प्रस्तुत पुस्तक श्री महाराज जी के द्वारा श्रीकृष्ण महारास के अधिकारी विषय पर दिए गये प्रवचन स्वरूप प्रकाशित है। महारास क्या है ? महारास

क्यों हुआ ? महारास में कौन-कौन सम्मिलित हुए ? महारास के परम अधिकारी कौन थे ? आदि विषयों पर वेद शास्त्र, पुराण आदि ग्रंथों के प्रमाण स्वरूप श्री महाराज जी ने प्रकाश डाला है। भक्तजनों एवं श्रोताओं के प्रेमाग्रह स्वरूप इस प्रवचन को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

विश्व शांति – आज विश्व में तकनीकी, वैज्ञानिक व शैक्षिक विकास के फलस्वरूप भी इतनी अशांति और असंतोष क्यों है ? विश्व अशांति का मूल कारण क्या है ? विश्व शांति का सुगम और सरल, सुलभ मार्ग कौनसा है ? आदि प्रश्नों का उत्तर श्री महाराज जी द्वारा प्रवचन में दिया गया। इतने सुन्दर निरुपण को श्रोताओं के आग्रह पर पुस्तक स्वरूप प्रकाशित किया गया है।

श्रद्धा – श्री भक्ति धाम मनगढ़ में विभिन्न स्वरचित दोहों एवं प्रसंगवश श्रद्धा की परिभाषा निरुपण हेतु कई प्रवचन संत कृपालु जी महाराज द्वारा दिए गए जिसमें श्रद्धा किसे कहते है ? श्रद्धा कैसे पैदा होती है ? श्रद्धा किस पर हो ? श्रद्धा किस सीमा तक हो ? श्रद्धा क्यों आवश्यक है ? श्रद्धा बिना सत्संग शव समान है, बिना श्रद्धा के भक्ति निराधार है, श्रद्धा से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है, श्रद्धा को कैसे बढ़ाया जाए आदि प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इन्हीं प्रवचनों के आधार पर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है।

गुरु मंत्र – संत कृपालु जी महाराज का व्यक्तित्व सदा से ही स्पष्टवादी एवं अक्खड़ रहा है। उन्होंने गुरु तत्व के प्रत्येक प्रवचन में गुरु मंत्र के रहस्य पर प्रकाश डाला है। गुरु मंत्र क्या होता है ? गुरु, गुरु मंत्र कब देते हैं ? गुरु, गुरु मंत्र क्यों देते हैं ? और आजकल बिना अधिकारी केवल व्यापार स्वरूप शिष्य बनाने की होड़ में बाबा लोग कान फूँक-फूँक कर जन साधारण को भ्रमित कर रहे हैं आदि विषयों को उन्होंने कई बार अपने प्रवचनों में प्रकाशित किया इसी आधार पर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है।

रूपाध्यना – संत कृपालु जी महाराज ने भागवत के आधार पर नवधा भक्ति पर कई प्रवचन दिए जिसमें उन्होंने भक्ति के तीन प्रकारों को प्रमुख माना। श्रवण, कीर्तन

और स्मरण। इसमें भी स्मरण भक्ति को उन्होंने समस्त भक्ति का प्राण माना। स्मरण हेतु रूप ध्यान की आवश्यकता एवं रूप ध्यान के तरीके आदि पर विस्तारपूर्वक सरल सुगम तरीके से उन्होंने अपने प्रवचनों में प्रकाश डाला है। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं प्रवचनों को समाहित किया गया है।

हम दो हमारे दो – संत श्री कृपालु जी महाराज ने जीव के स्वरूप अर्थात जीव दो तत्त्वों से मिलकर बना है आत्मा और शरीर। शरीर के बिना आत्मा नहीं रहती और आत्मा के बिना शरीर कार्य नहीं करता। शरीर के प्रकारों जैसे–कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर, भाव शरीर आदि का वर्णन एवं हमारे दो कौन ? इस विषय पर स्पष्ट किया कि राधा–कृष्ण एवं हरिगुरु ही हमारे हैं। गुरु के बिना हरि की प्राप्ति असंभव है और हरि की कृपा के बिना गुरु की प्राप्ति असंभव है। इस प्रकार इस पुस्तक में हम दो हमारे दो तत्व को प्रवचन के आधार पर स्पष्ट किया गया है।

साधना नियम – भक्ति धाम मनगढ़ में प्रतिवर्ष कार्तिक मास में पूरा महीना साधना कार्यक्रम रखा जाता है। इसी अवसर पर प्रतिवर्ष श्री महाराज जी स्वयं साधना संबंधी अन्तरंग एवं बहिरंग साधना नियमों पर प्रवचन दिया करते थे। बहिरंग नियमों में मुख्य रूप से मौन व्रत का पालन एवं अन्तरंग नियमों में रूप ध्यानपूर्वक प्रतिक्षण श्री राधा–कृष्ण की आराधना। इसके साथ साधना में आने वाली समस्याओं, बाधाओं, नियमों आदि पर दिए गए प्रवचनों को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

प्रश्नोत्तरी – प्रस्तुत पुस्तक में समय–समय पर विभिन्न अवसरों पर जिज्ञासु साधकों द्वारा संत श्री कृपालु जी महाराज से पूछे गए साधनापरक एवं आध्यात्मिक प्रश्नों एवं श्री महाराज जी द्वारा दिए गए उत्तरों को प्रकाशित किया गया है जैसे भगवान कैसे मिलेंगे ? ईश्वरीय मार्ग कौनसा श्रेष्ठ है ? भगवान अब तक क्यों नहीं मिले ? भक्ति मार्ग श्रेष्ठ क्यों हैं ? रूप ध्यान कैसे करें ? आदि प्रश्नों के उत्तर हैं।

प्रेम मार्ग – संत श्री कृपालु जी महाराज ने अद्वितीय अन्तरंग प्रेम तत्त्व को प्रधान माना है। आत्मा का परमात्मा से प्रेम, भक्त का भगवान से प्रेम। ईश्वर को

प्राप्त करने का मात्र एक ही उपाय है– प्रेम। प्रेम की वास्तविक परिभाषा क्या है ? ज्ञान व कर्म मार्ग से प्रेम मार्ग ही श्रेष्ठ क्यों है ? आदि प्रश्नों पर दिए गए प्रवचनों को साधकों के आग्रह पर प्रकाशित किया गया है।

साधक सावधानी – उत्तराखण्ड (मसूरी, देहरादून) के प्रवास के दौरान किसी साधक द्वारा जिज्ञासावश पूछे गए प्रश्न के उत्तर में संत कृपालु जी महाराज द्वारा दिया गया प्रवचन प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। साधना के पथ पर चलने वाले साधक को विशेष रूप से कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे परनिन्दा न करना, भक्ति व ईश्वरीय प्रेम को यथा संभव छिपाना, सहनशीलता, विनम्रता, मिठास को बढ़ाना, सभी में ईश्वरीय भावना बढ़ाना आदि बातों का ध्यान रखते हुए यदि साधक साधना करता है तो निश्चित रूप से वह जल्दी–जल्दी आगे बढ़ेगा।

हरे राम – हरे राम महामंत्र पर संत श्री कृपालु जी महाराज द्वारा दिया गया प्रवचन प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। राम कौन हैं ? वैदिक इतिहास में हरे राम मंत्र की प्रधानता, हरे राम मंत्र का प्रभाव आदि जिज्ञासाओं पर संत कृपालु जी महाराज ने प्रकाश डाला है।

सुनहु साधक प्यारे – संत श्री कृपालु जी महाराज द्वारा रचित 'युगल माधुरी' पुस्तक में संकलित इस पद में सारे शास्त्रों, वेदों एवं पुराणों का सार है। अर्थात इतने को अगर कोई समझ ले और व्यावहारिक रूप से कर ले तो उसे न कुछ पढ़ना है, न सुनना है, न समझना है, न करना है। गागर में सागर है। भक्ति धाम मनगढ़ में आयोजित वार्षिक साधना शिविर में श्री संत कृपालु जी महाराज ने अपने श्री मुख से इस पद की विस्तृत व्याख्या की है। (15–11–2002 से 19–11–02)। इस पुस्तक में उक्त व्याख्या को यथार्थ में प्रकाशित किया गया है। भक्ति संबंधी समस्त शास्त्रीय ज्ञान इस पद में समाहित है।

भगवन्नाम महात्म्य – नाम में ही नामी का वास है। इस विषय पर श्री संत कृपालु जी महाराज द्वारा दिए गए प्रवचन जिसमें भगवन्नाम महात्म्य को शास्त्र वेद सम्मत

उदाहरणों से प्रकाशित किया गया है तथा भगवन्नाम की आवश्यकता, कलियुग में भगवन्नाम महात्म्य की विशेषता तथा भगवन्नाम की शर्त एवं प्रतिफल आदि बारिकियों को वैदिक दर्शन से समझाया है। इसी प्रवचन को हूबहू प्रकाशित किया गया है।

4.1.4 निष्कर्ष

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज का विपुल साहित्य भण्डार आज हिन्दी साहित्य की कीर्ति श्री को अद्‌भुत दिव्य आभा से मण्डित कर रहा है। न केवल उनका गद्य एवं पद्य साहित्य अपितु उनका प्रवचन साहित्य भी हिन्दी ही नहीं समस्त विश्व के जिज्ञासु साधु सज्जनों एवं साहित्य प्रेमियों के लिए विशेष प्रेरक स्त्रोत बनकर उभरा है।

इस प्रकार उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही शोध परक हैं।

❖❖❖

पंचम् अध्याय

संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता

पंचम् अध्याय

संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता

5.1.0 प्रस्तावना

पूर्व अध्याय में संत कृपालु महाराज के व्यक्तित्व, जन्म, परिवार, शिक्षा, विवाह, वैराग्यपूर्ण जीवन जगद्गुरु की उपाधि आदि तथ्यों एवं संत कृपालु महाराज के कृतित्व गद्य लेखन, पद्य लेखन एवं प्रवचन माधुरी साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्याय में संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता का अध्ययन प्रस्तुत है।

साहित्य समाज का पथ प्रदर्शक, समाज के मस्तिष्क का भोजन, समाज की वैचारिक चेतना के विकास का सूचक और भावों का आदर्श माना गया है। इसी कारण एक पाश्चात्य विद्वान ने साहित्य को मानव समाज का मस्तिष्क कहा है। "Literature is the brain of humanity" इस आधार पर यही स्पष्ट होता है कि मानव समाज में साहित्य का अत्यधिक महत्त्व है। यही एक माध्यम है जिससे मानव मस्तिष्क एवं मानवीय भावनाओं का उद्वेलन, पोषण एवं सद्मार्ग प्रशस्तीकरण होता है।

साहित्य की परिभाषा, लक्षणों एवं प्रयोजनशीलता पर अनेक साहित्य विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। जैसे विश्वनाथ ने साहित्य का अर्थ उन समस्त काव्य रचनाओं से लिया, जिनमें लौकिक ज्ञान का समावेश है। इस कारण साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति यह की जाती है। "हितेन सहित सह वा सहितम्, तस्य भावः साहित्यम्" अर्थात् जिसमें हित का भाव, लोक मंगल का भाव विद्यमान हो, जिसके द्वारा समाज का हित चिन्तन व्यक्त हो, वह साहित्य कहलाता है। मानव द्वारा समाज का हित करने के लिए साहित्य की रचना की जाती है। साहित्य का हित चिन्तन विश्वात्मैक्य तथा विश्व कल्याण की भावना पर आधारित रहता है। अतः जिस रचना में समष्टिगत हित

का चिन्तन रहता है उसे ही साहित्य कहते हैं। साहित्य के व्यापक स्वरूप पर विचार व्यक्त करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास ने यह परिभाषा दी है– "सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव सामग्री निकालकर समाज को सौंपता है, उसी के संचित कोष का नाम सहित्य है।" इस परिभाषा के अनुसार सामाजिक मस्तिष्क ही साहित्य का रचयिता है, इससे ही सामाजिक मस्तिष्क का पोषण होता है और यह भाव सामग्री का संचित कोष है। मानव ने सामाजिक जीवन अपनाकर अपनी भाषा का विकास किया है और उसके माध्यम से अपने अनुभवों को ज्ञान रूप में संचित करने का प्रयास किया है। इसे ही आगे चलकर साहित्य कहा जाने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस विशेषता के आधार पर साहित्य की परिभाषा दी है–**"ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।"**

इस प्रकार साहित्य रचना का उद्देश्य चेतना का पोषण करना है। साहित्य लोक संग्रह के कारण ही उपयोगी माना जाता है। यदि कोई रचना समाज के लिए उपयोगी नहीं है तो वह साहित्य की श्रेणी में नहीं आ सकती। वैसे भी बिना विशेष उद्देश्य एवं उपयोगिता के रचा गया साहित्य मात्र कूड़ा कचरा है जो रद्दी के ढेर में विलीन हो जाता है लेकिन उपयोगी साहित्य अमर बन जाता है। इसलिए साहित्य की कसौटी उपयोगिता ही है। मानव समाज के लिए साहित्य की उपयोगिता इसलिए भी है कि वह मानव की जिज्ञासा वृत्ति को शांत करता है, ज्ञान की पिपासा को तृप्त करता है, मस्तिष्क का पोषण करता है। जिस प्रकार पेट की भूख को शांत करने के लिए भोजन आवश्यक है उसी प्रकार मस्तिष्क की क्षुधा को मिटाने के लिए साहित्य आवश्यक एवं उपयोगी है। साहित्य के द्वारा मानव चेतना का प्रसार होने से उसमें शिवत्व की स्थापना होती है।

इस प्रकार साहित्य की प्रयोजनशीलता समाज सापेक्ष है। जिस प्रकार बिना प्रयोजन के मंदबुद्धि व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है जैसा कि दर्शनशास्त्री कहते हैं–**"प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते"** अर्थात् घोर मूर्ख से मूर्ख भी बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करता है तो साहित्य लेखन जैसा महत्ती कार्य बिना प्रयोजन के कैसे संभव है ? यह बात भिन्न है कि प्रत्येक साहित्यकार की प्रयोजनशीलता अलग–अलग होती है।

संस्कृत, हिन्दी, पाश्चात्य काव्यशास्त्रानुसार काव्य प्रयोजन का विस्तृत अध्यन पूर्व अध्याय में किया गया है। विस्तृत विश्लेषण उपरान्त निष्कर्षतः पाया गया कि आनन्द की प्राप्ति एवं लोक मंगल की कामना ही किसी भी काव्य अथवा साहित्य रचना का मुख्य उद्देश्य होता है। आनन्द का प्रयोजन तत्व काव्य में आन्तरिक और बाह्य दोनों पक्षों में विद्यमान रहता है क्योंकि धनार्जन, यशप्राप्ति, उपदेश, व्यवहार ज्ञान, मनोविनोद आदि प्रयोजन आनन्द के ही साधन हैं। पाश्चात्य विचारकों ने भी काव्य प्रयोजन में आनन्दवाद की ही स्थापना की है। अतः दोनों मतों के (भारतीय एवं पाश्चात्य) अनुसार चाहे लोकमंगल का चिन्तन हो, अथवा कान्ता सम्मित उपदेशात्मकता हो अथवा स्वान्तः सुखाय की भावना हो, इन सभी से आनन्द की अनुभूति होती है। काव्य के पठन अथवा पाठन से जो रस की अनुभूति होती है वह भी आनन्द ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि आनन्द प्राप्ति ही काव्य/साहित्य का मूल प्रयोजन है चाहे वह कवि निष्ठ हो या समाज निष्ठ।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के समस्त साहित्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन स्वरुप उनके साहित्य की प्रयोजनशीलता निम्नानुसार है।

5.1.1 समन्वयवादी विचारधारा का निरुपण

संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का एक प्रमुख प्रयोजन समन्वयवादी विचारधारा का निरुपण करना है। समन्वय का अर्थ है मेल या सब कुछ पचा लेने की क्षमता। काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार उनके साहित्य लेखन का प्रस्तुत प्रयोजन ज्ञान एवं बौद्धिक अभिवृद्धि तथा लोक मंगल पर आधारित है। जैसा कि आचार्य भरतमुनि एवं आचार्य दण्डी ने अपने ग्रंथों में प्रस्तुत काव्य प्रयोजनों को अभिव्यक्त किया है।

धर्म्य यशस्य मामुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्। *नाट्य शास्त्र*

इदमंधं तयः कृतस्नं जाएग भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाहव्यं ज्योतिराशसंसाराद्ध दीप्यते। *काव्यादर्श*

अर्थात काव्य मानव में धर्म, यश, आयु के साथ–बुद्धि एवं ज्ञान का विकास करता है। इसी आधार पर प्रस्तुत प्रयोजन सामाजिक के हित में है कि पाठक वर्ग समाज में फैले मत मतान्तरों, धर्मों, पंथों की विविधता से भ्रमित न होकर विभिन्नता में एकता के दर्शन कर, ज्ञान प्राप्त करे एवं लक्ष्य की ओर उन्मुख हो।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन कवि गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस ग्रंथ भी इसी प्रयोजन का साक्षी है। रामचरित मानस में भक्त कवि गोस्वामी तुलसी दास ने भी यत्र तत्र समन्वय की विराट चेष्टा प्रस्तुत की है यथा : निर्गुण–सगुण का समन्वय–

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस समुन सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।

रामचरित मानस : बालकाण्ड, दोहा –115/1–3

इसी प्रकार शैव एवं वैष्णव मत का समन्वय करते हुए लंकाकाण्ड में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया–

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।
संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।
संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास।

रामचरित मानस : लंकाकाण्ड दोहा–2/7–8

समन्वय की इसी विराट चेष्टा के प्रयोजन से रचित संत कृपालु महाराज का साहित्य भी विशेष रूप से अनुसंधानपरक है। संत कृपालु जी महाराज स्वयं समन्वयाचार्य की उपाधि से विभूषित आचार्य हैं। काशी विद्वत परिषत् द्वारा उन्हें जब जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित किया गया तब उनमें विभिन्न धर्मों, पंथों, ग्रंथों, मतों एवं विचारधाराओं के मध्य अद्भुत समन्वय की क्षमता एवं योग्यता देखकर काशी के सभी विद्वत् पुरुष अवाक् रह गए और पद्य प्रसूनोंपहार द्वारा उन्हें समन्वाचार्य के रूप में सम्मानित किया।

उनका समस्त गद्य–पद्य एवं प्रवचन साहित्य समन्वय की विराट चेष्टा से परिपूर्ण है। संत कृपालु जी महाराज ने अपने समस्त साहित्य में एवं अपने समस्त सांस्कृतिक क्रियाकलापों में विभिन्न प्रकार से समन्वय कर एक रूपता का संदेश दिया है। वर्तमान युग में संसार में व्याप्त विभिन्न धर्मों पंथों, ग्रंथों, संतों एवं मार्गों का तात्त्विक मर्म समझाते हुए उन्होंने सभी मतों के सार का एकत्व करते हुए ईश्वर की एवं ईश्वर प्राप्ति के मार्गों में समन्वय का संदेश दिया है। स्वरचित 'राधा गोविन्द गीत' के प्रारम्भ में अत्यन्त विनम्र भाव से उन्होंने निम्न शब्दों में विभिन्न मतों के समन्वय के उद्देश्य को निरुपित किया है–

नाना पुराण वेद, गोविन्द राधे। मत सम्मत यह ग्रंथ बता दे।।
सब वैष्णवाचार्य, गोविन्द राधे। मतों का समन्वय ग्रंथ में बता दे।।
भक्तों को अर्पित, गोविन्द राधे। यह गीत याचना है, प्रेम सुधा दे।।
जगत का गुरु मैं न गोविन्द राधे। जगत है मेरा गुरु, सब को बता दे।।
तुम हो कृपालु सांचो, गोविन्द राधे। हम तो हैं नाम के कृपालु ही बता दे।।
राधा गोविन्द गीत, गोविन्द राधे। उनहिन चरणारविन्द, अर्पित बता दे।।

राधा गोविन्द गीत : 01, प्रारम्भ प्राक्कथन

उनके समस्त साहित्य में समन्वय स्थान–स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। यथा–

राधा एवं कृष्ण भक्ति का समन्वय –

संत कृपालु जी महाराज के साहित्य में राधा एवं कृष्ण भक्ति का समन्वय स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। संसार में कई लोगों में अज्ञानवश यह भ्रम होता है कि कृष्ण की पूजा श्रेष्ठ है अथवा राधा जी की उपासना श्रेष्ठ है। लोग अज्ञानवश राधा और कृष्ण में भेद मानते हैं।

संत कृपालु जी महाराज ने अपने प्रवचन साहित्य के माध्यम से एवं अपने लिखित साहित्य में इस भ्रम का तात्त्विक निराकरण करते हुए राधा–कृष्ण की भक्ति का समन्वय किया है। संत कृपालु जी महाराज ने 'युगल रस' रचना में स्थान–स्थान पर कृष्ण एवं राधा की भक्ति का समन्वय किया है–

दोउ ठाकुर श्यामा श्याम, दोउ कोटि काम अभिराम।
दोउ सुखघन पूरनकाम, विहरत वृन्दावन धाम।
दोउ प्रेम सिंधु सुखधाम, दोउ रूप सिंधु अभिराम।
दोउ ब्रजरस सिंधु ललाम, विहरत वृन्दावन धाम।
दोउ इक नित श्यामा श्याम, दोउ भज दोउ आठों याम।
दोउ जीवन धन ब्रज बाम, विहरत 'कृपालु' ब्रजधाम।

युगल रस : पद सं. 01

अर्थात् इस पद में संत कृपालु जी महाराज राधा एवं कृष्ण का समन्वय करते हुए लिखते हैं– मेरे ठाकुर श्यामा–श्याम करोड़ों काम देवों से भी अधिक कमनीय हैं। दोनों ही चितघन, सुखघन स्वरूप हैं। दोनों नित्य दिव्य वृन्दावन धाम में विहार करते हैं। दोनों सुख की खान हैं। प्रेम के समुद्र हैं। दोनों ही सुन्दर ब्रज रस के सागर हैं।. ....कृपालु जी कहते है दोनों ही ब्रज गोपियों के जीवन सर्वस्व हैं। ये युगल सरकार सदा ही वृन्दावन धाम को विहार स्थली बनाते हैं।

इसी प्रकार अन्य रचनाओं में भी बड़े सुन्दर रूप से उन्होंने राधा–कृष्ण की एकता को निरूपित किया है। 'श्यामा श्याम गीत' के दोहों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है–

श्यामा जू को दूजो रूप श्याम सुखधामा। मरम बतायो यह वेदव्यास नामा।। (491)
श्याम है कपूर सम गंध सम श्यामा। गंध उड़ि जाय तो कपूर मिटे नामा।। (493)
दुग्ध में सफेदी जैसे वैसे श्याम श्यामा। श्यामा श्याम प्रतिबिम्ब सब ब्रज बामा।। (494)
श्यामा जू के रोम रोम कहें श्याम नामा। श्याम हूँ के रोम रोम कहें नाम श्यामा।।(500)
दोउ है चकोर दोउ चन्द्र श्याम श्यामा। कभु दोनों चन्द्र तो चकोरी ब्रज बामा।।(535)
श्याम ब्रज ठाकुर ठकुरानी श्यामा। दोनों की है रजधानी वृन्दावन धामा।।(494)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात वेदव्यास ने इस रहस्य का उद्घाटन किया कि श्री कृष्ण, श्री राधा का ही एक अभिन्न रूप हैं। यदि श्याम सुन्दर कपूर हैं तो श्री राधा उस कपूर की गंध हैं।

गंध के उड़ जाने पर कपूर का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। श्री राधा शक्ति है कृष्ण उस शक्ति से शक्तिमान हैं। इसी प्रकार श्याम सुन्दर दुग्ध हैं। श्री राधा उस दुग्ध की श्वेतिमा हैं। सम्पूर्ण ब्रज गोपियाँ इन युगल की प्रतिबिम्ब स्वरुपा हैं। ब्रज धाम के ठाकुर श्री श्यामसुन्दर हैं एवं ठकुरानी श्री राधा हैं। दोनों की राजधानी वृन्दावन धाम है। श्यामा-श्याम परस्पर दोनों ही चकोर हैं, दोनों ही चन्द्र हैं। श्री राधा के लिए श्याम सुन्दर चन्द्र हैं, वे चकोरी हैं। श्री कृष्ण के लिए राधा मुख चन्द्र हैं, जिसके हेतु वे चकोर बनकर अपलक दृष्टि से राधा मुख मण्डल को निहारते रहते हैं, कभी-कभी युगल सरकार दोनों ही चन्द्र के समान प्रतीत होते हैं, तब ब्रज बालाएँ चकोरी बनकर युगल मुख चन्द्र सुधा का पान करती हैं।

इसी प्रकार उन्होंने, 'राधा गोविन्द गीत' (भाग 02) के श्री राधा-कृष्ण अध्याय में तात्त्विक ढंग से राधा-कृष्ण की भेद बुद्धि को स्पष्ट करते हुए दोनों के एकत्व को निरुपित किया है तथा स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि राधा एवं कृष्ण दो होते हुए भी किस प्रकार एक हैं-

कोउ कह कृष्ण बड़ो गोविन्द राधे। राधा करणार्थ 'अ' प्रत्यय करा दे।।(6453)

x x x x x x x x x x

नित्य भेद भी है अरु गोविन्द राधे। नित्य अभेद भी है सत्य बता दे।।(6460)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात संत कृपालु जी महाराज ने जगत में व्याप्त कृष्ण एवं राधा की वरिष्ठता एवं उनके दो अथवा एक होने के भ्रम के प्रश्न को उठाया तथा वैदिक आधार पर दोनों के एकत्व को सिद्ध किया। राधा-कृष्ण की अभेदता को उन्होंने आगे अन्य दोहों में स्पष्ट किया है-

अग्नि सम श्री कृष्ण गोविन्द राधे। राधिका हैं दाहिका शक्ति बता दे।।(6461)

कृष्ण हैं मृगमद गोविन्द राधे। राधा हैं मृगमदगंध बता दे।।(6462)

x x x x x x x x x x x

कृष्ण हैं सूर्य सम गोविन्द राधे। राधा आतप सम हैं बता दे।। (6465)
कृष्ण हैं सिंधु सम गोविन्द राधे। राधा हैं सिंधु की तरंग बता दे।।(6466)
श्री कृष्ण जल सम गोविन्द राधे। राधा हैं माधुर्य बता दे।।(6467)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात राधा एवं कृष्ण में अभिन्नता को विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए संत कृपालु जी महाराज व्यक्त करते हैं कि जिस प्रकार अग्नि एवं उसकी दाहक शक्ति में भेद नहीं है, जिस प्रकार तेज एवं प्रकाश शक्ति एक है, जिस प्रकार चन्द्रमा एवं उसकी ज्योत्सना में एकत्व है, जिस प्रकार सागर एवं तरंग में एकत्व है एवं जिस प्रकार जल एवं तरलता में एकत्व है उसी प्रकार राधा–कृष्ण भी दो दिखते हुए एक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है, अपूर्ण है। दोनों में शक्ति और शक्तिमान का संबंध है। शक्ति के बिना शक्तिमान शून्य है। राधा–कृष्ण की अभेदता को सिद्ध करते हुए उनके द्वै रूप का कारण उन्होंने निम्न प्रकार से निरुपित किया है।

यों तो राधा कृष्ण गोविन्द राधे। एक थे हैं रहेंगे भी बता दे।।(6470)
किन्तु लीला हित गोविन्द राधे। दो थे हैं रहेंगे भी बता दे।।(6471)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात राधा–कृष्ण सदा से ही एक हैं और सदा एक रहेंगे, दोनों में कभी कोई भेद नहीं है किन्तु लीला रस हेतु उनके दो रूप हैं और दो रूप सदा रहेंगे। लीला क्षेत्र में कभी कृष्ण, राधा बन जाते हैं और कभी राधा, कृष्ण बन जाती हैं। यथा–

कभू राधा कृष्ण कभू गोविन्द राधे।कृष्ण बन जाते हैं राधा बता दे।।(6484)
x x x x x x x x x x x
श्यामा कहो श्याम कहो गोविन्द राधे। श्यामा में श्याम श्यामा श्याम में समा दे।।(6488)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात् कभी कृष्ण, राधा बन जाते हैं और कभी राधा, कृष्ण बन जाती हैं। लीला क्षेत्र में भी कृष्ण–राधा का स्वरूप बदलता रहता है कहने का तात्पर्य है कि श्याम में श्यामा समाहित हैं और श्यामा में श्याम समाए हुए हैं। राधा और कृष्ण की

एकता को आगे और सिद्ध करते हुए संत कृपालु जी महाराज ने लिखा है–

राधा कृष्ण एक आत्मा गोविन्द राधे। एक ज्ञान अरु एक आकृति बता दे।।(6514)
राधा कृष्ण एक आश्रय गोविन्द राधे। एक मन अरु एक बुद्धि बता दे।।(6515)
x x x x x x x x x x
कभू राधा विषय बने गोविन्द राधे। श्री कृष्ण ही बने आश्रय बता दे।।(6518)
दोनों का देह दो है गोविन्द राधे। शेष सब सनातन एक हैं बता दे।(6523)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' ग्रंथ में संत कृपालु जी महाराज ने राधा–कृष्ण को दैहिक रूप में दो मानते हुए भी आत्मिक रूप में एक माना है केवल लीला रस हेतु दोनों में भेद दृष्टिगोचर होता है। राधा–कृष्ण में छोटे–बड़े का प्रश्न व्यर्थ है। राधा ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राधा हैं।

इसी प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने स्वरचित 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के युगल माधुरी प्रकरण में भी अनेक पदों में श्री राधा–कृष्ण के समन्वय की झाँकी सुन्दर रूप में प्रस्तुत की है। यथा– निम्न पद में संत कृपालु जी महाराज ने राधा–कृष्ण को एक मानते हुए दोनों के युगल ध्यान का उपदेश दिया है–

धरो मन! युगल माधुरी ध्यान।
मन मोहन मोहिनि श्यामा अरु, मोहिनि मोहन कान्ह।
इन दोहन कहँ विलग न मानिय, द्वै देही इक प्रान।
पै लीला–विलास महँ मोहन, अनुचर रसिक प्रमान।
रिझवत नित निकुँज श्यामा कहँ, मरम न सक कोउ जान।
यह 'कृपालु' रस रसिकहिं जानत, जो नित कर रह पान।

प्रेम रस मदिरा : युगल माधुरी, पद–06

अर्थात अरे मन! तू प्रिया प्रियतम की रूप माधुरी का निरन्तर ही ध्यान किया कर। श्यामसुन्दर को मोहित करने वाली किशोरी जी एवं किशोरी जी को मोहित करने वाले श्याम सुन्दर हैं। अरे मन! इन दोनों को भिन्न न समझना, इन दोनों के

देह तो दो अवश्य हैं किन्तु प्राण एक ही हैं। हाँ रसिकों के सिद्धान्तों के अनुसार लीला विलास के क्षेत्र में श्यामसुन्दर दास अवश्य हैं तथा नित्य ही निकुंजों के मध्य में विविध प्रकार से किशोरी जी को रिझाया करते हैं। इस मर्म को रसिकों के सिवा और कोई भी नहीं जान सकता। 'कृपालु' कहते हैं कि इस निकुंज रस माधुरी को रसिक ही जानते हैं, जो कि इस रस का निरन्तर ही पान किया करते हैं।

राधा–कृष्ण की उपासना करने वाले भक्त के लिए राधा की उपासना या केवल कृष्ण की उपासना अपूर्ण है। संत कृपालु जी महाराज ने दोनों का एकत्व एवं समन्वय करते हुए युगल रूप की उपासना का उपदेश अपने साहित्य के माध्यम से दिया है और यदि दोनों में से किसी एक की उपासना में मन लगे तो यह तत्व ज्ञान अवश्य मन में रहे कि राधा में कृष्ण समाये हुए हैं और कृष्ण में राधा समाई हुई हैं। श्यामा–श्याम दोनों रसिक हैं दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। इसी मन्तव्य को उन्होंने अपने संकीर्तन ग्रंथ 'ब्रज रस माधुरी' में भी लिखा है यथा–

दोउ प्राणवल्लभ प्राणनाथ श्यामा श्याम।
दोउ सत चित आनन्द घन श्यामा श्याम।
दोउ दिव्य आनन्द घन तन श्यामा श्याम।
दोउ सेवक दोउ सेव्य दोउ श्यामा श्याम।
दोउ एक तत्व नाम रूप भिन्न श्यामा श्याम।
दोउ हैं 'कृपालु' अति कृपासिंधु श्यामा श्याम।

ब्रज रस माधुरी : पद सं. 74

उपर्युक्त छन्द में संत कृपालु जी महाराज ने कृष्ण एवं राधा के आत्मिक एकत्व एवं गुण एकत्व को निरुपित किया है। कहने का तात्पर्य कृष्ण एवं राधा में कोई भेद नहीं है। कृष्ण के प्राण राधा हैं और राधा के प्राण कृष्ण हैं। दोनों आनन्द के सिंधु हैं दोनों एक दूसरे के सेवक भी हैं और सेव्य भी। दोनों में केवल नाम भेद है एवं रूप भेद है किन्तु दोनों ही कृपा के सागर हैं।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' रचना में प्रारम्भ के दो दोहों में संत कृपालु जी महाराज ने राधा–कृष्ण दोनों की उपासना के भेद को समाप्त करते हुए दोनों को एक माना है। दोनों ही एक दूसरे का अभिन्न रूप हैं–

अद्वितीय इक तत्व है, राधा तत्व प्रधान।
याको दूजो रूप है, स्वयं कृष्ण भगवान।।(02) *भक्ति शतक*

अर्थात श्री राधा का अपर अभिन्न स्वरूप श्री कृष्ण हैं एवं श्री कृष्ण का ही अपर स्वरूप श्री राधा हैं। क्योंकि राधा शक्ति हैं एवं श्री कृष्ण शक्तिमान हैं। इस दोहे की व्याख्या करते हुए संत कृपालु जी महाराज ने अपने प्रवचन साहित्य में ब्रह्म वैवर्तपुराण का उदाहरण देते हुए व्याख्या की तथा राधा–कृष्ण में अभेदता को स्पष्ट किया– '**यथा क्षीरे च धावल्यं, दाहकता च हुताशने**......'अर्थात एक बार श्री राधा जी ने लीला में श्री कृष्ण से पूछा कि मैं तुम्हारे वियोग में कैसे जीवित रह सकूँगी। तब श्री कृष्ण ने उपर्युक्त उदाहरण देकर कहा था कि वियोग तो दो तत्वों में हुआ करता है। मुझ से वियुक्त तो प्राकृत जगत भी नहीं हो सकता फिर हमारा तुम्हारा संबंध तो ऐसा है जैसे दूध में श्वेतिमा। भला दूध की सफेदी कभी दूध से पृथक हो सकती है ? पुनः कहा कि जैसे आग में दाहकता अर्थात आग से कभी दाहकता पृथक नहीं हो सकती। इसी प्रकार पृथ्वी से गंध, जल से शीतलता कभी वियुक्त हो सकती है ? ठीक उसी प्रकार हम दोनों एक थे। एक हैं। एक रहेंगे।

इसी प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने 'युगल माधुरी' ग्रंथ में भी राधा–कृष्ण के समन्वय परक अनेक गीत लिखें हैं जिनमें दोनों के अभेद को निरुपित किया है–

मेरे दोउ ठाकुर श्यामा श्याम।
ठकुरानी श्यामा ठाकुर श्याम।
राजे दोउ श्री वृन्दावन धाम।
श्याम ही को रूप श्यामा श्यामा रूप श्याम।
श्यामा पियें श्याम रस गौर रस श्याम।
श्याम उर श्यामा श्यामा उर बस श्याम।

श्यामा मुख चन्द चकोर दृग श्याम।
श्यामा रोम रोम में समाये घनश्याम।
श्यामा हैं समाई रोम रोम घनश्याम।

युगल माधुरी : पद सं.–48

उपर्युक्त पद में संत कृपालु जी महाराज राधा–कृष्ण की युगल भक्ति का ही उपदेश देते हुए राधा–कृष्ण को एक ही रूप में निरुपित कर रहे हैं। कृष्ण के रोम रोम में राधा समाई हुई हैं और राधा जी के रोम रोम में कृष्ण समाए हुए हैं। श्याम ही श्यामा हैं और श्यामा ही श्याम हैं। दोनों में ही एकत्व है।

इसी प्रकार "युगल शतक" रचना का उद्देश्य भी राधा–कृष्ण की एकता को अभिव्यक्त करना है। 'युगल शतक' रचना के प्राक्कथन में ही संत कृपालु महाराज ने रचना के उद्देश्य को स्पष्ट किया है। "वस्तुतः राधा कृष्ण एक ही तत्व है। पूर्व संस्कार के अनुसार किसी में अधिक अनुराग हो सकता है यह ध्यान रहे कि दोनों सदा एक हैं। इस दृष्टि से राधा और कृष्ण दोनों के पचास–पचास पदों का शतक बनाया है।" इसी पुस्तक के प्रारम्भ में राधा–कृष्ण के समन्वय को स्पष्ट करते हुए निम्न पद की रचना की है।

गौर गागरिहिं श्याम रस, श्याम गागरिहिं गौर।
गागरिहूँ रस की बनी, अस दोउ रस सिर मौर।
श्री गुरु शरण गहु, भजु श्री युगल किशोर।
तब 'कृपालु' हरि कृपा ते, मिलइ प्रेम चित्त चोर। *युगल शतक*

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज के सम्पूर्ण साहित्य में सर्वत्र राधा–कृष्ण के समन्वय की झाँकी दृष्टिगोचर है।

राम एवं कृष्ण भक्ति का समन्वय–

संत कृपालु महाराज के समस्त साहित्य, सांस्कृतिक क्रियाकलापों में राम एवं कृष्ण का समन्वय भी दृष्टिगोचर होता है। उनके रामनवमी, तुलसी जयन्ती आदि

पर्वों पर दिए प्रवचन साहित्य एवं गद्य–पद्य साहित्य में यथा प्रसंग राम एवं कृष्ण भक्ति का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। हमारे भारत वर्ष में राम भक्त एवं कृष्ण भक्तों की संख्या अधिक है। राम एवं कृष्ण में अधिक श्रेष्ठ कौन है ? राम बारह कलाओं के अवतार एवं कृष्ण सोलह कलाओं के अवतार हैं तो दोनों में से किसकी भक्ति अधिक श्रेष्ठ है ? आदि प्रश्नों पर विवाद उठते रहते हैं। कई बार ये विवाद हिंसक प्रवृत्ति तक भी पहुँच जाते हैं। इसी विवाद का निराकरण करने हेतु राम एवं कृष्ण के आवतारिक एकत्व को शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध करते हुए उन्होंने राम भक्ति एवं कृष्ण भक्ति में भेद मानने वालों को घोर अज्ञानी सिद्ध किया है। एक बार दिए गए अपने प्रवचन में उन्होंने अपने अनुभव को सुनाया जो निम्न प्रकार से है–

"मैं अयोध्या गया एक बार सम्मेलन में तो वहाँ एक वृन्दावन के बाबा जी भी गए थे। उनका लैक्चर हमारे लैक्चर के पहले था। तो लैक्चर के पहले थोड़ा कीर्तन कराते हैं बाबा लोग। तो वो कीर्तन कराने लगे 'जय राधे जय राधे राधे राधे' तो पाँच छः सौ बाबा बैठे थे आगे, राम के भक्त। एक नहीं बोला। राधे नहीं बोलेंगे हम। सीता राम बोलेंगे और सब अंगूठा छाप बाबा। जब लैक्चर देने का हमारा नम्बर आया तो मैंने वो खिंचाई की उन लोगों की कि ये लोग राक्षस हैं, नामापराधी हैं, इनको अयोध्या में रहने का अधिकार नहीं है। इतना भी ज्ञान नहीं इनको वही लक्ष्मण बलराम बने, वहीं राधा वही सीता, वही राम वही कृष्ण वही सुग्रीव आए, वही हनुमान जी आये, कृष्णावतार में भी। दण्डकारण्य के परमहंस जिनको राम ने वरदान दिया सब गोपी बनकरके आए और इनका इष्ट बदल रहा है। भगवान के अनन्त अवतारों में थोड़ा भी भेदभव करने वाला नामापराधी है, सबसे बड़ा पापात्मा।.... ऐसी मूर्खता आप लोग कभी न करेंगे। चाहे राम कहो, चाहे श्याम कहो, सब भगवान के नाम हैं, सब एक फल देने वाले हैं। भगवान में कोई छोटा बड़ा नहीं होता।"

साधन साध्य : अक्टूबर–2009, पृ.सं.–31

इस प्रकार अपने प्रवचन साहित्य में स्पष्ट रूप से उन्होंने राम एवं कृष्ण में भेद को मूर्खता एवं घोर अपराध प्रमाणित किया है। इसी समन्वय को उन्होंने अपने 'राधा गोविन्द गीत' ग्रंथ में भी स्पष्ट किया है।

हरि के हैं सब रूप गोविन्द राधे। सभी नाम, व्यर्थ का विवाद मिटा दे। (10811)

सब हरि नाम रूप गोविन्द राधे। सच्चिदानन्द स्वरूप बता दे।। (10812)

राम कृष्ण हरि एक गोविन्द राधे।जामे लगे मन वामें लगा दे।। (10813)

जो हरि सोई राम गोविन्द राधे। जो राम सोई कृष्ण सार बता दे। (10814)

x x x x x x x x x x x

तीनों नाम रूप एक गोविन्द राधे। लीला अवश्य भिन्न भिन्न हैं बता दे।(10821)

राधा गोविन्द गीत : 02 संकीर्तन

अर्थात भगवान के प्रत्येक अवतार, नाम, रूप, लीला, गुण, धाम को उन्होंने एक बताया है तथा राम-कृष्ण-हरि तीनों नामों का अर्थ बताते हुए उनमें एकत्व को दर्शाया है। ईश्वर के अनेक नाम, रूप, लीलाएँ हैं। जिस भी जीव को संस्कार वश जो रूप, लीला, नाम अच्छा लगता है वह उसी की भक्ति करता है और यदि हम किसी नाम को छोटा और किसी नाम को बड़ा मानते हैं तो ये घोर अज्ञान और नामापराध की श्रेणी बन जाएगा। जैसा कि उन्होंने आगे इसी ग्रंथ में लिखा है-

निज रुचि अनुरूप गोविन्द राधे। किसी नाम रूप में भी मन को लगा दे। (10829)

छोटा बड़ा न्यूनाधिक गोविन्द राधे। भावना न आने पाए बता दे। (10830)

नामों में छोटा बड़ा गोविन्द राधे। मानना है नाम अपराध बता दे। (10831)

राधा गोविंद गीत : 02, संकीर्तन

राम एवं कृष्ण में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है, अपनी रूचि अनुसार ईश्वर का जो रूप हमें आराधना के लिए पसन्द हो उसे हम अपना आराध्य बना सकते हैं। ईश्वर के समस्त अवतारों में समान भावना होनी चाहिए। अवतारों की लीलाएँ देश काल के अनुसार बदलती रहती हैं। अवतारों में भेद बुद्धि रखना सर्वथा घोर निन्दनीय है। वास्तव में राम और कृष्ण के एकत्व को संत कृपालु जी महाराज ने निम्न पद में निरुपित किया है।

अवध के राम बने ब्रज श्याम।

लखन बने बलराम जानकी, राधा रानी नाम।

त्रेता में बड़ भ्रात राम भये, द्वापर में बलराम।
मुकुट, ग्रीव, कटि, पद टेढ़ो करि, प्रकटे चंचल राम।
योगारुढ़ जीव हित कीन्ही, लीला रास ललाम।
पग पलुटावति सदा जानकी, रामहिं येहि ब्रज धाम।
इनमें भेद 'कृपालु' मान जो, नरकहुँ नाहीं ठाम।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद सं. 27

अर्थात अयोध्या के भगवान राम ही ब्रज में श्याम बनकर प्रकट हुए। लक्ष्मण जी बलराम बन गए एवं श्री जानकी जी राधा रानी के नाम से प्रख्यात हुईं। त्रेता में बड़े भाई राम हुए एवं द्वापर में बड़े भाई बलराम हुए। भगवान राम ब्रज में मुकुट, गर्दन, कमर एवं पैरों को टेढ़ा करके चंचल स्वभाव से प्रकट हुए एवं मायातीत जीवों के लिए आदर्श स्थापित करते हुए दिव्य रासलीला का अभिनय किया। ब्रज में जानकी जी ने भगवान राम से अपने चरण दबवाए। कृपालु कहते हैं कि इन दोनों में जो भेदभाव रखता है वह नामापराधी है, उसको नरक में भी स्थान नहीं मिल सकता।

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने कई प्रकार से राम एवं कृष्ण में समन्वय किया साथ ही विभिन्न पर्वों, त्योहारों पर दिए गए प्रवचन साहित्य में भी वैदिक शास्त्रीय पद्धति से उक्त समन्वय के भावों को अभिव्यक्त कर जन सामान्य को समझाने का प्रयास किया है। यथा 18.08.1999 को तुलसी राम दर्शन स्थल ज्ञानगुदड़ी, वृन्दावन में तुलसी जयंती पर्व पर दिए गए प्रवचन का निम्न अंश प्रस्तुत है।

"वो राम और कृष्ण दो तत्व नहीं है। तत्व एक है। यह बात हमारे बहुत से साधु भाइयों को भी नहीं पता है। वो कहते हैं भाई ऐसा है सब अपने-अपने इष्ट को नमन करते हैं। हाँ! तो हमारा इष्ट तो दूसरा है तो हम राम को नमन कैसे करें, इतनी बड़ी जहालत है हमारे देश में। क्यों जी तुम से बड़ा और भी कोई बुद्धिमान है। ये ब्रह्म, विष्णु, शंकर ये तो रामावतार में भी आकर के नाक रगड़ रहे हैं कृष्णावतार में भी। तुम उनसे बड़े बुद्धिमान हो। हाँ! अरे, तुलसीदास जी तो कह रहे हैं-

सीया राम मय सब जग जानी। करउँ प्रणाम जोरि जुग पाणी।।

दुष्टों को तो पहले प्रणाम किया है तुलसीदास जी ने, सज्जनों को बाद में किया है और वो कृष्ण को प्रणाम नहीं करेंगे। इतनी भूल। अच्छा देखिए रामायण से बताते हैं आपको। **'मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिम्'**। अध्यात्म रामायण में राम को कहा गया 'माधव' मायातीत माधव, जगत के आदि में रहने वाले आपको नमस्कार। फिर उसी अध्यात्म रामायण में और स्पष्ट– **'वंदे रामं मरकत वर्णं मथुरेशम्'**। मथुरा के अधीश मरकत वर्ण के भगवान राम आपको नमस्कार है। फिर उसी अध्यात्म रामायण में **'वृन्दारण्ये वंदित वृन्दारक वृन्दम्'**। वृन्दावन में वृन्दारक वृन्द से वन्द्य राम तुमको नमस्कार है। ये रामायण कह रही है और तुम उसके भी आगे चले गये। तुलसीदास जी ने लिखा विनय पत्रिका में। सब जगह तो बहुत रोए गाये हैं। मुझसे बड़ा कोई पतित नहीं, महाराज दया करो कृपा करो। तो विनय है विनय पत्रिका में। लेकिन एक जगह चैलेंज किया है माया को–

अब मैं तोहि जान्यो संसार।

बांधि न सकइ मोंहि हरि के बल प्रकट कपट आगार।

ऐ माया! तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती, हरि का बल है मेरे पास। तो कौनसे हरि का बल है भाई, तो– **सहित सहाय तहाँ वसु अब जेहि हृदय न नन्द कुमार**। माया जिसके हृदय में नन्दकुमार न हो वहाँ जाकर अपना तू डेरा जमा। हमारे यहाँ दाल नहीं गलेगी। हमारे हृदय में नन्दकुमार रहते हैं। हाँ दशरथ कुमार नहीं कहा, नन्द कुमार। **विरद गरीब निवाज राम को, जड़ पतंग पाण्डव सुदाम को**। हमारे राम गरीब निवाज हैं। देखों सुदामा का उद्धार किया, पाण्डवों का किया, यमलार्जुन का किया। ये विनय पत्रिका कह रही है, आप उनसे आगे हो गए। हाँ। हमारे बहुत से भाई रामोपासक ऐसे हैं जो भाई कुछ भी हो, वो तो अपना इष्टदेव है अपना। हाँ। क्यों जी आपका बाप पच्चीस तरह के कपड़े पहनता रहता है। ऑफिस में और कपड़ा, घर में लुँगी लिये फिरता है, बाथरूम में नंगा नहाता है, तो क्या तो बाप बदल जाता है। अरे बाप तो वही है, स्त्री का पति वही है और फिर राम कृष्ण का तो शरीर का रंग भी नहीं बदला। दोनों नीलाम्बुज है दोनों पीताम्बरधारी हैं। सब चीज एक है। वो साहब मोर पंख ? तो क्या

राम को मोर पंख लगाना मना है। वो भी लगा सकते हैं मौज में आ जाएगी तो, उनको कोई रोकने वाला है क्या ? कि तुमने क्यों मोर पंख लगाया, वो तो जी श्री कृष्ण के नाम रिजर्वेशन हो गया है उसका, ऐसा तो नहीं कुछ। हाँ। राम धनुषधारी है। तो श्री कृष्ण धनुषधारी नहीं है। वह भी तो शाङ्र्गधर है। उनके धनुष का नाम शार्ङ्ग है।

ये लक्ष्मण, भरत, शत्रुधन ये कोई महापुरुष नहीं है। सब राम हैं। राम अपने आप चार बन गए, और वही चारों फिर कृष्णावतार में श्री कृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न यह चतुर्व्यूह बनकर के प्रकट हुए। और वही ब्रह्मा, विष्णु शंकर रामावतार में स्तुति करने गए। वहीं कृष्णावतार में स्तुति करने गए। इसलिए ऐसा नामापराध न कमाएँ। अगर कोई भोले भाले लोग शास्त्रों वेदों को नहीं पढ़े हैं तो वे हमारी ये प्रार्थना को स्वीकार करें, और थोड़ा भी अन्तर न माने कि दोनों बराबर हैं ऐसा नहीं कहना। दोनों एक हैं ऐसा कहना। बराबर का मतलब तो दो पर्सनैलिटी हो गई। पर्सनैलिटी दो नहीं हुई। एक ही पर्सनौलिटी के अनंत रूप हैं। **अनन्त नाम रूपाय।"**

तुलसी जयंती : प्रवचन माधुरी–04, पृ.सं.–23–26

संत कृपालु जी महाराज ने राम–कृष्ण के समन्वय का उपदेश न केवल अपने साहित्य में एवं प्रवचनों में दिया अपितु विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों में भी इस समन्वय की विभिन्न झाँकियाँ समय–समय पर प्रस्तुत की। वृन्दावन धाम में स्व निर्देशन में निर्मित 'प्रेम मन्दिर' जैसी सुन्दर स्थापत्य कला में भी कृष्ण नगरी में एक साथ राम एवं कृष्ण को विराजित किया है। 'प्रेम मन्दिर' राम एवं कृष्ण भक्ति के समन्वय का बेजोड़ उदाहरण है। इसी प्रकार स्वयं कृष्ण भक्त होते हुए भी स्वयं की जन्मस्थली में निर्मित 'भक्ति मन्दिर' में भी कृष्ण एवं राम दोनों को विराजित कर राम एवं कृष्ण के एकत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सर्व धर्म समन्वय –

संत कृपालु महाराज का साहित्य सर्व धर्म समन्वय की झाँकी भी प्रस्तुत करता है। संत कृपालु महाराज राधा–कृष्ण अवतार के उपासक रहे हैं तथा उनकी ही भक्ति

का उपदेश उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से दिया है किन्तु साथ में उन्होंने ईश्वर के एकत्व और सर्व धर्म समभाव को भी अपने साहित्य एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। विभिन्न पर्वों एवं उत्सव आयोजन में अनायास उनके मुख से निकली साहित्यिक पंक्तियाँ उनकी धार्मिक एकरूपता को बयान करती हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई धर्मों की एकता और समरसता का संदेश उन्होंने अपने साहित्य और उत्सव आयोजन क्रिया कलापों के माध्यम से दिया। इसी सर्व धर्म समभाव की झाँकी उनके साहित्य में हम अनेक प्रकार से देख सकते हैं। हिन्दू धर्म में ही देखें तो विभिन्न पंथों और सम्प्रदायों जैसे शैव, वैष्णव, शाक्त आदि में उन्होंने समन्वय करते हुए अपने प्रवचनों एवं लिखित साहित्य में शिव भक्ति को कृष्ण भक्ति से भिन्न न मानकर शिव और वैष्णव भक्तों के एकत्व का संदेश दिया जैसे–महाशिवरात्रि के अवसर पर दिए प्रवचन में उन्होंने कहा–

'**वेद में बताया गया है– एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमॉल्लोकानीशत ईशनीभिः।** *(श्वेतश्वेतरोपनिषद् 3–2)* "सुप्रिम पावर हैं भगवान शिव उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं विश्व का प्राकट्य विश्व की रक्षा, विश्व का प्रलय उन सब शक्तियों से वे करते हैं। एक अवतार काल में ऐसा भी हुआ है कि शंकर जी श्री राधा बने हैं और पार्वती जी श्री कृष्ण बनी हैं। कभी वो श्री कृष्ण की भक्ति करते हैं। तो ये तो लीला क्षेत्र के नाट्क हैं। स्वयं दो बन जाते हैं।" *साधन साध्य : मार्च–2011, पृ.सं.–28*

इस प्रकार कृष्ण–राधा, शिव–पार्वती, राम–सीता सभी एक रूप हैं लीला क्षेत्र में वे एक से दो और दो से फिर एक बन जाते हैं। इसी अवसर पर उनकी निम्न साहित्यिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

"कृष्ण प्रेम दो भोले नाथ। लहु रास रस तेरे साथ।
धरे गोपिका भेष महेश। कृष्ण प्रेम दे दो लवलेश।"

साधन साध्य : मार्च 2011, पृ.सं.–28

इसी प्रकार वैष्णव धर्म, के समन्वय को उनके साहित्य में देख सकते हैं। राम एवं कृष्ण भक्ति के एकत्व को हम पूर्व में विस्तार से देख चुके हैं फिर भी प्रसंगवश कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से देख सकते हैं।

तुलसी जयंती, रामनवमी, राम छठ आदि अवसरों पर अनायास भगवान राम के ईश्वरत्व पर उनकी साहित्यिक पंक्तियाँ समन्वय की ओर संकेत करती है। जैसे–तुलसी जयन्ती पर उन्होंने एक दोहा बनाया–

"आज तुलसी जयन्ती गोविन्द राधे। राम तत्व का कोई बोध करा दे।"

साधन साध्य : अक्टूबर 2010, पृ.सं.–40

इसी प्रकार रामलला की बर हौं (दिनांक मनगढ़ 23.4.2012, प्रातः 12:50 पर घूमते हुए निम्न पंक्तियों का उद्‌घोष 'राधे' नाम के साथ किया–

राम और श्याम दोनों एक द्वै नाम। चाहे भजो राम सीता चाहे श्याम राधे।

और आगे कीर्तन की कुछ नवीन पंक्तियों की रचना की–

जय जय राजा दशरथ नन्दन राम। जय जय सतधन चितधन सुखधन राम।
जय जय आनन्द आनन्द दाता राम। जय जय जीवन जीवन दाता राम।

साधन साध्य : जुलाई–2012, पृ.सं.–48

इसी प्रकार दिनांक 30.4.12 को श्री जानकी जयन्ती महोत्सव पर सच्चिदानन्द स्वरूप श्री सीता राम की स्थापना उन्होंने की तथा शंख, मृदंग, ढोल, ढ़प झाँझ, मंजीरे, घंटाल इत्यादि से आनन्दकंद श्री सीता राम का अभिनन्दन किया तथा निम्न साहित्यिक पंक्तियों द्वारा श्री राम जानकी की वन्दना की–

जय जय जानकी पति श्री राम। जय जय जनक नन्दिनी नाम।
आजु भक्ति मन्दिर में प्रकटे श्री राम।

साधन साध्य : जुलाई–2012, पृ.सं.–48

इसी प्रकार शाक्त पंथ के समन्वयत्व की ओर दृष्टिपात करें तो संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमें शक्तिमति माँ दुर्गा के ईश्वरत्व का समन्वय राधा–कृष्ण, राम–सीता, शिव–पार्वती के साथ मिलता है। दुर्गा के स्वरूप को शक्ति का स्वरूप बताया तथा राधा एवं सीता को उसी शक्ति का स्वरूप माना। दुर्गा माँ के पौराणिक

महत्त्व को स्पष्ट करते हुए माँ दुर्गा को योग माया की शक्ति बताया तथा उन्हें कृष्ण अवतार में उनकी बड़ी बहिन यशोदा पुत्री बताया। कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए ब्रजांगनाओं द्वारा जो कात्यायनी देवी की उपासना की गई उसे भी दुर्गा का ही रूप बताया। दुर्गा की उपासना करते हुए उन्होंने निम्न दोहे बनाए–

जय जय जय जय दुर्गा मैया गोविन्द राधे। कृपा करि मोहे कृष्ण प्रेम दिला दे।।

साधन साध्य : मार्च 2011, पृ.सं.–27

जगदम्बिका है दुर्गा गोविन्द राधे। जगद्पिता है शंभु वेद बता दे।।

तू तो मेरी माँ है दुर्गे गोविन्द राधे। कृपा करि मोकू कृष्ण प्रेम दिला दे।

दुर्गा जू की महिमा तो गोविन्द राधे। विधि हरि हर मति पर है बता दे।

अध्यात्म संदेश : मार्च 2008,पृ.सं.–49

इसी प्रकार हिन्दू धर्म में गणेश वन्दना के संदर्भ में भी उन्होंने कृष्ण भक्ति के साथ गणेश भक्ति का समन्वय किया है। गणेश चतुर्थी अवसर पर गणेश वन्दना करते हुए उन्होंने उनसे कृष्ण प्रेम की ही याचना की–

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा। यह वर दे दो पावूँ हरि गुरु सेवा।

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा। ऐसा वर दे दो मिले श्यामा श्याम सेवा।

प्रथम कीजिए गणपति पूजा। पूनि पूजिए विधि हरि हर दूजा।

साधन साध्य : अक्टूबर 2011, पृ.सं.–48

इसी प्रकार हिन्दू धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों जैसे मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध धर्म में भी यथा अवसर समन्वयपरक झाँकी प्रस्तुत की है जैसे मुस्लिम धर्म को यदि हम लें तो, संत कृपालु महाराज के प्रवचन साहित्य में अक्सर वेद शास्त्रों के साथ–साथ कुरान शरीफ की पंक्तियाँ भी उदाहरण स्वरूव उनकी जिह्वा पर रमण किया करती थी तथा ईद–उल–फितर जैसे मुस्लिम त्योहारों को भी आश्रम में धूम धाम से मनाकर उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकत्व का संदेश दिया।ईद के पर्व को हर्षोल्लास से मनाते हुए उन्होंने निम्न दोहा रचा–"**हिन्दू मुस्लिम ईसाई। ईद बना दे भाई भाई।**"

साधन साध्य : अक्टूबर 2011, पृ.सं.–48

इसी प्रकार वे सिक्ख धर्म के त्योहारों का आयोजन भी आश्रम में सुन्दर प्रकार से आयोजित करते तथा अपने प्रवचन साहित्य में कई बार उदाहरण स्वरूप महापुरुषों की चर्चा के दौरान सिक्ख महापुरुषों की चर्चा करते थे तथा यथा अवसर साहित्यिक पंक्तियाँ एवं दोहे रच कर वे उक्त धर्म को भी सम्मान देते हुए समन्वय का संदेश दिया है। दिनांक 13.04.2012 को दिल्ली गोलोक धाम आश्रम में बैसाखी का पर्व मनाते हुए निम्न दोहे की रचना की–

आज बैसाखी है, हरि गुण गाओ। नाच नाच भाँगड़ा से उनको रिझाओ।

साधन साध्य : जुलाई–2012, पृ.सं.–47

अर्थात प्रत्येक धर्म के प्रत्येक त्योहार को उन्होंने हरि भक्ति से जोड़ने का प्रयास अपने साहित्य के माध्यम से किया है। प्रत्येक धर्म, उत्सव, कार्य का उद्देश्य हरि को रिझाना है ताकि वे प्रसन्न हों क्योंकि जीवात्मा का उद्देश्य परमात्मा की सेवा और प्रसन्न्ता ही है।

इसी प्रकार ईसाई धर्म को लें तो संत कृपालु महाराज के साहित्य में तथा उनके द्वारा सम्पन्न सांस्कृतिक गतिविधियों में ईसाई धर्म की झलक भी मिलती है। जैसे आश्रम में क्रिसमस त्योहार बड़े हर्ष और उल्लास से मनाते हैं। इसी प्रकार कई बार अपने प्रवचन साहित्य में उदाहरण स्वरूप ईशु मसीह का उदाहरण देते हैं साथ में मदर मैरी की कथाओं का जिक्र भी उनके प्रवचनों में रहता है। इसी प्रकार क्रिश्चियन धर्म के त्योहारों को बड़े उत्साह के साथ मनाते तथा तत्वसंबंधी साहित्यिक रचनाएँ भी करते रहते थे। जैसे फ्रैंडशिप डे पर उन्होंने निम्न दोहा बनाया– (7 अगस्त 2011)।

आज है फ्रैंडशिप डे गोविन्द राधे। साँचो फ्रैण्ड हरि गुरु दो हैं बता दे।

साधन साध्य : अक्टूबर 2011, पृ.सं.–45

इसी प्रकार मदर्स डे त्योहार को वैदिक साहित्य से जोड़ते हुए प्रवचन दिया तथा हरि को ही अपनी सनातन माता बताया–

हरि है 'मदर' तेरी गोविन्द राधे। सारा जग माँ की संतान बता दे।

साधन साध्य : अक्टूबर 2009, पृ.सं.–24

इसी प्रकार वेलेन्टाइन्स डे 'प्रेम दिवस' को भी आध्यात्मिक रूप देकर मनाया करते तथा इसके वास्तविक पर्याय को समझाने का प्रयास करते। उपर्युक्त अवसर पर प्रवचन के माध्यम से वेलेन्टाइन डे का अर्थ समझाया–

"संसारी प्रेम तो मन से किया जाता है और ईश्वरीय प्रेम किया नहीं जाता, वो एक भगवान की सबसे प्राइवेट पावर का नाम है। वो कृपा से मिलता है, किसी साधन से नहीं मिलता। करोड़ों कल्प कोई तपश्चर्या करे, कुछ करे, भगवान का प्रेम नहीं प्राप्त कर सकता। उस प्रेम को पाने के लिए श्री राधा–कृष्ण नाम, रूप, लीला, गुण, धाम का गुणगान करुण क्रन्दन करते हुए करें तुम्हारे प्रेम के बिना यह जीवन मृत्यु से भी अधिक भयानक है अतएव '**प्रेम भिक्षां देहि**', '**प्रेम भिक्षां देहि, प्रेम भिक्षां देहि**' यही प्रेम दिवस मनाने का वास्तविक उद्देश्य है।"

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में सर्व धर्म समभाव की विशेष प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है तथा उनका समस्त साहित्य ईश्वर के एकत्व पर ही आधारित है और उन्होंने समस्त धर्मों को इसी उद्देश्य से जोड़ने का प्रयास किया है। इसी संदर्भ में उनके जीवन से संबंधित एक प्रसंग निम्नानुसार है–

"30 अगस्त को महाराष्ट्र में एक विशेष पूजा होती है बैलों की। उस दिन शाम को लकड़ी के बैल चलाए जाते हैं और घर के बड़े लोग अपने बच्चों को पैसे बाँटते हैं। तो एक महाराष्ट्रीयन सत्संगी ने कहा कि महाराज जी आज आप दस–दस रुपये उपहार के रूप में हम मराठियों को दीजिए। ये हमारे यहाँ की एक रस्म है। तो महाराज जी ने कहा ठीक है, सभी महाराष्ट्रियन हमसे आकर उपहार ले लें। तो करीब पचास से ऊपर महाराष्ट्रियन खड़े हो गए उपहार पाने के लिए। सभी को श्री महाराज जी ने अपने हाथों से 10–10 रुपये उपहार में दिए। तब श्री महाराज जी बोले अरे हमारे आश्रम में इतने सारे मराठी हैं ? मैंने तो कभी भी किसी से उसका जाति वर्ण नहीं पूछा। हम तो सबका सम्मान करते हैं। क्योंकि हमारा संबंध तो जीव की आत्मा से है,

उसके अन्तःकरण से है। तब महाराजजी ने एक दोहा बनाया और उसकी संक्षिप्त व्याख्या की–**हरि के ये चार वर्ण गोविन्द राधे।नर ने बनाए लाखों वर्ण क्यों बता दे।**”

साधन साध्य : अक्टूबर 2011, पृ.सं.–47

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का साहित्य सर्व धर्म समभाव के संदेश से परिपूरित है। समाज में सभी धर्मों, सम्प्रदायों में एकता स्थापित कर भाई चारे की भावना का प्रसार करना उनके साहित्य लेखन का उद्देश्य है।

ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति का समन्वय

संत कृपालु जी महाराज ने भगवत्प्राप्ति हेतु मुख्य रूप से ज्ञान, कर्म, योग एवं भक्ति मार्ग की चर्चा अपनी रचनाओं में की है। वेद पुराणों का उदाहरण देते हुए इन चारों मार्गों की वैधानिकता को पुष्ट किया है साथ ही समन्वय का अद्‌भुत कौशल दिखाते हुए उन्होंने वैदिक मतों से पुष्ट करते हुए ज्ञान, कर्म, योग का भक्ति के साथ समन्वय किया है। ईश्वर प्राप्ति के जितने भी मार्ग हैं उनका उद्देश्य ईश्वर से प्रेम और उनकी सेवा है। वास्तव में कर्म क्या है ? वास्तव में ज्ञान क्या है ? वास्तव में योग क्या है ? भक्ति के बिना ज्ञान, कर्म, योग का अस्तित्व औचित्यहीन है। भक्ति के बिना ज्ञान, कर्म, योग अधूरे हैं। संत कृपालु महाराज ने इन सभी मार्गों का समन्वय बहुत ही अद्‌भुत प्रकार से किया है। जैसे–

(क) ज्ञान व भक्ति का समन्वय – संत कृपालु जी महाराज ने ज्ञान मार्ग का वैदिक एवं पौराणिक विश्लेषण करते हुए ज्ञान मार्ग को भक्ति से जोड़ा है। केवल ज्ञान मार्ग ईश्वर प्राप्ति, आनन्द प्राप्ति, दिव्य प्रेम, ब्रह्म सेवा का लक्ष्य प्राप्त नहीं करा सकता। वास्तव में ज्ञान मार्ग को भक्ति मार्ग का अवलम्ब लेना ही पड़ता है लक्ष्य प्राप्ति के लिए। संत कृपालु महाराज ने अपनी अनेक रचनाओं में ज्ञान मार्ग की चर्चा की है। उनके मूल सैद्धान्तिक ग्रंथ ‘प्रेम रस सिद्धान्त’ में उन्होंने ईश्वरीय शाब्दिक ज्ञान एवं तत्संबंधी अनुभव ज्ञान दोनों को महत्त्व दिया है किन्तु बिना ईश्वर भक्ति के कोरा शाब्दिक ज्ञान मिथ्याभियान बनकर रह जाएगा। जैसा कि उन्होंने लिखा है–

"वेद के शाब्दिक ज्ञान के बिना ईश्वर का अनुभव ज्ञान नहीं हो सकता। वस्तुतः कोई भी ईश्वरीय शाब्दिक ज्ञान तभी अनुभव ज्ञान बन सकता है, जब ईश्वर की भक्ति की जाय। बिना ईश्वर की भक्ति के ज्ञानी (यानी शाब्दिक ज्ञानी) ज्ञान योगी अर्थात अनुभव ज्ञानी नहीं बन सकता, यह अकाट्य सिद्धान्त है।...............भक्ति रहित ज्ञान वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान कराने में सर्वथा असमर्थ है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : ज्ञान एव ंज्ञान योग, पृ.सं.–164

इसी पुस्तक में आगे उन्होंने शाब्दिक ज्ञान, अनुभव ज्ञान का आधार भक्ति को ही माना और वैदिक उदाहरणों से ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय को पुष्ट किया–

"ईश्वर संबंधी वैदिक–शाब्दिक ज्ञान पर हम विश्वास कर लें तो तत्क्षण ईश्वर से प्यार हो जाएगा और ज्यों ज्यों प्यार बढ़ता जाएगा, त्यों त्यों ज्ञानानुभव भी बढ़ता जाएगा। इसका विशेष विस्तार आगे आएगा। अतएव यदि कोई ज्ञानी वास्तव में ज्ञानी बनने का दावा करता है किन्तु भक्ति से शून्य है तो वह ज्ञानी अज्ञानी महानुभावों का नेता ही माना जाएगा क्योंकि वह ज्ञानी नहीं है, अपितु मिथ्या ज्ञानाभिमानी मात्र ही है और ऐसे मिथ्या ज्ञानाभिमानी को महत्तम ब्रह्मादि भी नहीं समझा सकते क्योंकि मिथ्याभिमान के कारण जिज्ञासा समाप्त हो जाती है और वह किसी बात पर विश्वास करने में संकोच करता है।" वेद व्यास ने संक्षेप में बड़ी सुन्दर परिभाषा दी है कि– **सा विद्या तन्मतिर्यया (भागवत)** अर्थात ज्ञान वही है जिसमें ईश्वर भक्ति हो। पुनः वेद व्यास ने कहा कि–

श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्ध्ये।
तेषामसौ क्लेशल एवं शिष्यते नान्यद्यथा स्थूल तुषाव जातिनाम्।।

भागवत :10/1414

अर्थात भक्ति के बिना ही, जो केवल 'ज्ञान' के द्वारा ही ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे उसी मूर्ख स्त्री के समान हैं जो चावल निकाले हुए धान के तुष (भूसी) को पुनः कूटती हुई एवं पछोरती हुई यह आशा करती है कि इससे पुनः चावल निकलेगा। भावार्थ यह कि केवल परिश्रम ही हाथ लगेगा, तत्व की प्राप्ति का तो सपना भी न पूरा होगा।" *प्रेम रस सिद्धान्त : ज्ञान एवं ज्ञान योग, पृ.सं.–165–166*

इसी प्रकार स्व रचित पद्य ग्रंथों में भी संत कृपालु महाराज ने ज्ञान एवं भक्ति का विलक्षण समन्वय किया है। ज्ञान का भक्ति से मेल ही लक्ष्य की प्राप्ति करवाता है। भक्ति के बिना ज्ञान तो केवल मिथ्याभिमान की ही वृद्धि करता है।

ज्ञान बिना हो भक्ति पै, भगति बिना नहिं ज्ञान।
भगति बिना हो ज्ञान जो, लावत उर अभिमान। (47) *भक्ति शतक*

अर्थात भक्ति पथ को ज्ञान की अपेक्षा नहीं है किन्तु ज्ञान मार्ग को सदा ही भक्ति का अवलम्ब लेना पड़ता है क्योंकि यदि भक्ति के बिना ज्ञान से लक्ष्य प्राप्ति का उद्देश्य बनाया जाएगा तो, ज्ञान केवल अभिमान की ही वृद्धि करेगा तथा लक्ष्य मिलना तो दूर और अन्तःकरण मिथ्याभिमान से चूर हो जाएगा।

संत कृपालु महाराज ज्ञान के साथ-साथ हरि कृपा एवं हरि शरणागति को अनिवार्य मानते हैं। बिना हरि की कृपा के जड़ माया से छुटकारा नहीं मिल सकता-

बिनु हरि कृपा न जाति यह, माया अति बलवान।
ज्ञानिन ब्रह्म न कछु कर, पुनि किमि कर कल्यान।।(48) *भक्ति शतक*

संत कृपालु महाराज कहते हैं कि ज्ञानियों का ब्रह्म तो निर्विकल्प, निर्गुण, निराकार, अकर्ता है तो जब उनका ब्रह्म कुछ कर नहीं सकता तो जड़ माया के बंधन में बंधी जीवात्मा को मुक्त कैसे कर पाएगा। ज्ञान से यदि मोक्ष मिलता तो ज्ञानी को भगवान की शरण में न आना पड़ता। अर्थात ज्ञान में जब तक भक्ति का मिश्रण नहीं होता तब तक माया जाल से मुक्ति भी संभव नहीं है क्योंकि ज्ञानियों का ब्रह्म भगवान का ही रूप है किन्तु उसमें शक्तियों का प्राकट्य नहीं होता इसलिए शरणागत वत्सल, भक्त अनुहारी श्री कृष्ण की भक्ति ही ज्ञानी को मोक्ष का अनुगामी बनाती है।

इसी प्रकार एक अन्य दोहे में संत कृपालु महाराज ने ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय को स्पष्ट किया है।

बिनु हरि कृपा न पाइ सक ज्ञानिहुँ ब्रह्म ज्ञान।
ब्रह्म अकर्ता वेद कह, सोचहु मनहिं सुजान।(49) *भक्ति शतक*

अर्थात चूँकि ज्ञानियों का ब्रह्म अकर्ता है तो वह ज्ञानी को दिव्य ज्ञान भी कैसे करवा सकता है केवल शाब्दिक, सांसारिक ज्ञान से तो आनन्द प्राप्ति, दुःख निवृत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के लिए भी हरि कृपा की आवश्यकता है और हरि कृपा प्राप्ति हेतु भक्ति का ही सहयोग लेना होगा। अतः ज्ञान एवं भक्ति का समिश्रण ही ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य दिलवा सकता है।

वास्तव में केवल ज्ञान मार्ग लक्ष्य को दिलाने में असमर्थ है। वास्तविक ज्ञान तो वही है जो ईश्वरीय प्रेम, सेवा भावना को बढ़ाए। बाकि का ज्ञान तो अहंकार वर्धन का ही कार्य करता है जैसा कि एक अन्य दोहे में उन्होंने स्पष्ट किया है–

जो हरि सेवा हेतु हो, सोई कर्म बखान।
जो हरि भगति बढ़ावे, सोई समुझिए ज्ञान।(66) *भक्ति शतक*

जिस ज्ञान से हरि में प्रेम बढ़े वही वास्तविक ज्ञान है। ज्ञान जब भक्ति से मिलता है तब ही हरि अनुरक्ति का अंकुर फूटता है। संत कृपालु महाराज ज्ञान को भक्ति के ही परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हैं और लिखते हैं–

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा–वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान। (74) *भक्ति शतक*

सत्य रूप में ज्ञान तो वही है जो ईश्वर के ध्यान को परिपक्व करे और परमात्मा की सेवा भावना का वर्धमान करें क्योंकि जीवात्मा परमात्मा का अभिन्न अंश है और अंश का स्वभाव है अपने अंशी की सेवा करना। जो ज्ञान अपने इष्ट से दूर कर केवल दम्भ का संस्कार पोषित करे वह तो ज्ञान नहीं अपितु महान अज्ञान है। इसी मत को पुष्ट करते हुए एक दोहे में उन्होंने अज्ञान को परिभाषित किया है–

मन हरि में तन जगत में, कर्मयोग तेहि जान।
तन हरि में मन जगत में, यह महान अज्ञान। (84) *भक्ति शतक*

संसार में कर्त्तव्य पालन हो और मन से हरि गुण ध्यान हो यही कर्म, योग और ज्ञान है। इस प्रकार 'भक्ति शतक' के अनेक दोहों में संत कृपालु महाराज ने ज्ञान एवं

भक्ति का समन्वय किया है। इसी समन्वय की झाँकी हम उनके अन्य ग्रंथ 'राधा गोविन्द गीत' (भाग 01) के ज्ञान अध्याय में भली भाँति रूप से समझ सकते हैं। इस ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने भक्ति एवं ज्ञान के समन्वय को अनेक उदाहरणों से समझाने का प्रयास किया है। कोरा ज्ञान तो केवल ज्ञानाभिमान ही बढ़ा सकता है। ज्ञान अध्याय के प्रारम्भ में ही उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि आनन्द प्राप्ति के लक्ष्य को पाने के लिए सर्व प्रथम शब्द ज्ञान को जानना होगा तत्पश्चात भक्ति करनी होगी और भक्ति का अनुभव लेना होगा। ज्ञान एंव भक्ति का संयोग ही लक्ष्य प्राप्त करवा सकता है।

प्रथम शब्द ज्ञान करे गोविन्द राधे। फिर करे भक्ति भक्ति अनुभव करा दे। (2510)
पाक शास्त्र रटने ते गोविन्द राधे। भूख नहिं जाये वाय खाना खिला दे। ।(2511)
महावाक्य रटने ते गोविन्द राधे। माया नहिं जाये वाय भक्ति करा दे। (2512)
x x x x x x x x x x
व्यंजन बनाओ खाओ गोविन्द राधे। तब ही हो तुष्टि पुष्टि आदि बता दे। (2515)
ऐसे श्री कृष्ण में भी गोविन्द राधे। मन ते करो भक्ति साध्य दिला दे।(2516)

राधा गोविन्द गीत : 01, अध्याय ज्ञान

अर्थात संत कृपालु महाराज ने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि जब तक ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय नहीं हो जाता तब तक कृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार व्यंजन बनाने की विधि याद कर लेने मात्र से क्षुधा शांत नहीं होती, पुष्टि और तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार केवल ज्ञान मार्ग का अनुसरण दिव्य प्रेम की प्राप्ति नहीं करवा सकता और यदि कोई व्यक्ति जिद्द कर ले कि उसे ज्ञान मार्ग से ही अध्यात्म की राह पर चलना है तो ऐसा ज्ञान उसे लाभ की अपेक्षा नुकसान ही पहुँचाएगा।

भाव यह भक्ति बिनु गोविन्द राधे।ब्रह्म ज्ञान तो अभिमान बढ़ा दे। (2519)
अनुभवहीन ज्ञान गोविन्द राधे। लख चौरासी योनि घुमा दे। (2520)
जानने का लाभ तब गोविन्द राधे। जब जाने माने मन हरि में लगा दे। (2521)
शब्द ज्ञान ज्ञान नहिं गोविन्द राधे। यह ज्ञान ज्ञानाभिमान बढ़ा दे। (2522)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात भक्ति के बिना केवल, कोरा ज्ञान अभिमान में अभिवृद्धि करता है। ज्ञान का लाभ तो तब है जब उसमें भक्ति का समिश्रण हो अन्यथा केवल ज्ञान का अनुसरण तो मानव को पुनः चौरासी लाख योनियों का ही भ्रमण करवाएगा। इसी विषय को और सुन्दर प्रकार से समझाने का प्रयास करते हुए संत कृपालु महाराज ने लिखा है–

उतना ही ज्ञान जानो गोविन्द राधे। जितने में गुरु तोहिं हरि ते मिला दे। (2529)
ज्ञान है अनन्त किन्तु गोविन्द राधे। तू तो साध्य साधन ज्ञान करा दे। (2530)
वह ज्ञान अज्ञान गोविन्द राधे। श्यामा श्याम ते जो ना प्रेम करा दे। (2531)

राधा गोविन्द गीत

ज्ञान एवं प्रेम का अर्थात भक्ति का सामंजस्य करते हुए उन्होंने लिखा है कि हरि की प्राप्ति हेतु जितने ज्ञान की आवश्यकता है केवल उतना ही ज्ञान होना श्रेष्ठ है। जो ज्ञान कृष्ण और राधा से प्रेम को अंकुरित न करे वह ज्ञान नहीं अज्ञान है। जिस प्रकार धान की भूसी को इस उद्देश्य से कूटना कि उसमें से चावल निकलेगा, व्यर्थ है। उसी प्रकार केवल ज्ञान के बल पर हरि प्रेम और आनन्द को प्राप्त करना केवल श्रम ही है।

धान की भूसी का गोविन्द राधे। कूटना है व्यर्थ केवल श्रम है बता दे। (2537)
ऐसे हरि भक्ति बिनु गोविन्द राधे। ज्ञान का प्रयास केवल श्रम है बता दे। (2538)

राधा गोविन्द गीत : 01, अध्याय ज्ञान

संत कृपालु महाराज ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय करते हुए लिखते हैं कि ज्ञान और वैराग्य तो भक्ति महादेवी के पुत्र हैं। जिस प्रकार संसार में भी बिना माता के कोई संतान उत्पन्न नहीं हो सकती उसी प्रकार अध्यात्म जगत में भी बिना भक्ति महादेवी के ज्ञान एवं वैराग्य रूपी संतान उत्पन्न नहीं हो सकती।

ज्ञान वैराग्य दोनों गोविन्द राधे। भक्ति महरानी के पुत्र हैं बता दे। (2540)
जग में भी माता बिनु गोविन्द राधे। पुत्र की प्राप्ति असम्भव बता दे। (2541)
ऐसे ही भक्ति बिनु गोविन्द राधे। ज्ञान वैराग्य असम्भव बता दे। (2542)

राधा गोविन्द गीत

ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय करते हुए संत कृपालु महाराज ने विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से ज्ञान एवं भक्ति की अन्तःनिर्भरता को सिद्ध किया है।

कोटि कल्प सिर मारे गोविन्द राधे। भक्ति बिनु ज्ञान हो ना बता दे। (2544)
भक्ति बिनु ज्ञान ऐसे गोविन्द राधे। जलधार गहि आकाश चढ़ा दे। (2545)
भक्ति बिनु ज्ञान ऐसे गोविन्द राधे। पँगुले को भी जैसे गिरि पै चढ़ा दे। (2546)
भक्ति बिनु ज्ञान ऐसे गोविन्द राधे। गगन में फूलों की वाटिका लगा दे।(2549)
भक्ति बिनु ज्ञान ऐसे गोविन्द राधे। गूंगे को जैसे वेदवक्ता बना दे।(2550)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात करोड़ों कल्पों तक प्रयास कर ले कोई तब भी केवल ज्ञान मार्ग से परम चरम लक्ष्य की प्राप्ति असंभव है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जल की धारा को आकाश में चढ़ाना, जिस प्रकार किसी पंगुले का पहाड़ पर चढ़ने का स्वप्न, जिस प्रकार सागर को तैर कर पार करने का प्रयास और जिस प्रकार एक गूँगा वेद वक्ता होने का दावा करें। किन्तु जब यही ज्ञान भक्ति के साथ मिल जाता है तो लक्ष्य की प्राप्ति सरल हो जाती है।

भक्ति सहित ज्ञान गोविन्द राधे। ब्रह्म ज्ञान अरु अपवर्ग दिला दे।। (2564)

राधा गोविन्द गीत

ब्रह्म ज्ञान और अपवर्ग अर्थात मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान और भक्ति के समन्वय से ही संभव है। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति के समन्वय को उन्होंने अन्य रचनाओं में भी स्पष्ट किया है जैसे 'श्यामा श्याम गीत' का निम्न दोहा है।

कोरे शब्द ज्ञान ते बने ना कछु कामा। मन करो शरणागत पद श्री श्यामा।।(30)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात कोरे शाब्दिक ज्ञान से काम नहीं बन सकता अपितु ज्ञान के साथ ईश्वरीय शरणागति अर्थात भक्ति का समिश्रण ही जीव को लक्ष्य प्राप्ति तक पहुँचा सकता है।

इसी प्रकार उद्धव और गोपी प्रेम के संदर्भ में जब ब्रज में कृष्ण की प्रेरणा से गोपियों के समक्ष ज्ञान मार्ग के अनुसरण का संदेश लेकर उद्धव जाते हैं तो वहाँ

गोपियों के प्रेम भाव और भक्ति को देखकर उन्हें स्पष्ट होता है कि कोरा ज्ञान नीरस है। ईश्वरीय प्रेम हेतु भक्ति आवश्यक है। इसी संदर्भ में ज्ञान और भक्ति के समन्वय को दर्शाती पंक्तियाँ निम्न हैं–

भक्ति युक्त ज्ञान ते ही मिले मुक्ति धामा।
भक्तिहीन ज्ञान तो अज्ञान कहें बामा।(885) *श्यामा श्याम गीत*

अर्थात् हे उद्धव! तुम मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो, वह तो भक्ति युक्त ज्ञान से ही प्राप्त होगी। भक्ति रहित ज्ञान तो कोरा अज्ञान ही है।

इसी प्रकार यदि ज्ञान मार्ग से कोई जीवन मुक्त हो भी जाए, तो भी वह कर्म बंधन में बंध जाता है जब तक कि वह भक्ति का आश्रय नहीं लेता। ज्ञानी जब भक्ति का आश्रय लेता है तब ही उसे वास्तव में मुक्ति प्राप्त होती है

जीवन मुक्त भी ऊधो बँधे कर्म कामा। भक्त ही की मुक्ति कहें वेदव्यास नामा।।(886)
श्यामा श्याम गीत

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि आपका ब्रह्म तो अकर्मा है। ज्ञानियों का ब्रह्म तो अकर्ता है तो ऐसा ब्रह्म जीव के कर्म बंधन को कैसे दूर कर सकता है जबकि वह स्वयं कुछ करता नहीं। इसलिए गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि ज्ञानी जब सगुण साकार ब्रह्म श्री कृष्ण की शरण में आता है तो तब उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अर्थात ज्ञानी लाख प्रयास कर ले किन्तु मुक्ति प्राप्त करने के लिए उसे भगवान की कृपा प्राप्त करनी होगी और भगवान की कृपा भक्ति से ही मिलेगी।

भक्ति ते ही कृपा करें ऊधो सुख धामा। श्याम कृपा ते ही मुक्ति मिले कह बामा।। (1887)
ब्रह्म तो अकर्ता ऊधो कहें ब्रज बामा। कृपा तो करेंगे एक श्याम सुख धामा।(888)
श्यामा श्याम गीत

इस प्रकार संत कृपालु महाराज की प्रत्येक रचना में हम ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय की झलक देख सकते हैं, उनके द्वारा रचित 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के पदों में भी ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय को देख सकते हैं। यथा–

अमोलक रतन मिलत बिनु मोल।

प्रेम–रतन याचत ज्ञानीजन, सुन लो कानहिं खोल।

श्याम प्रेम बिनु ब्रह्म–समाधिहुँ, मनहुँ निम्ब रस घोल।

तेहि बिनु कर्म, योग सब छूछो, लेहु तराजुहिं तोल।

स्वर्ग कर्म ते, सिद्धि योग ते, प्रेम बोल हरि बोल।

रतन 'कृपालु' अमोलक पायो, हमहुँ बजावत ढ़ोल।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–05

अर्थात परम तत्व रूपी अमूल्य रत्न बिना मूल्य के मिलता है, यह कैसी विलक्षण बात है। इस अमूल्य प्रेम रत्न को परम हंस लोग भी चाहते हैं, किन्तु कान खोल के सुन लीजिए श्याम सुन्दर के प्रेम के बिना ब्रह्म ज्ञानियों की निर्विकल्प समाधि भी नीम के रस के समान कड़वी है। प्रेम के बिना कर्म एवं योगादि सब थोथे हैं क्योंकि कर्म से स्वर्ग मिलता है एवं योग से सिद्धि मिल सकती है किन्तु प्रेम तो हरि बोल बोलने में ही प्राप्त हो सकता है। 'कृपालु' कहते हैं हमने तो यह अमूल्य निधि ढ़ोल बजाकर प्राप्त कर ली।इसी प्रकार संत कृपालु महाराज ने अपनी प्रत्येक रचना में यत्र–तत्र ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय को सिद्ध किया है जैसे 'श्री कृष्ण द्वादशी' रचना के प्रथम पद में ही उन्होंने ज्ञानियों की मुक्ति को खारा बताया है। जब भक्त के साकार ब्रह्म का रस, ज्ञानी अनुभव करता है तब ही उसकी मुक्ति भी रसमय बनती है–

नीलमणि तनु लखि गइ बलिहार।

उनके अगनित गुनित मनोहर, हैं सुन्दर सरकार।

उनकी चिन्मय तनु लखि ज्ञानिहुँ, मानत मुक्तिहिं खार।

शिव, शुक, जनक, सनक तनु छवि लखि, देत समाधि बिसार।

श्री कृष्ण द्वादशी : पद सं.–01

अर्थात एक सखी दूसरी सखी से कहती है– हे सखी! श्याम सुन्दर का दिव्य सौन्दर्य देखकर मैंने अपने तन मन, प्राण न्यौछावर कर दिए। श्याम सुन्दर इतने सुन्दर हैं कि उनका सौन्दर्य स्वयं उनको ही मोह लेता है। उनके चिदानन्दमय शरीर का

दर्शन कर ज्ञानी जन मुक्ति के सुख को खारा समझते हैं। यहाँ तक कि शिव, शुक, जनक एवं सनकादिक जैसे ज्ञानी नन्द–नन्दन के दिव्य सौन्दर्य को देखकर समाधि सुख को विस्मृत कर देते हैं।

इस प्रकार जब भक्ति, प्रेम, ज्ञान का समन्वय होता है तब ही दिव्य प्रेम रस का पान जीवात्मा कर सकती है। संत कृपालु महाराज ने भक्ति और ज्ञान के मध्य माँ और पुत्र का संबंध बताया और दोनों को एक दूसरे पर अवलंबित बताया। जैसा कि उन्होंने 'ब्रज रस माधुरी' के विभिन्न पदों में स्पष्ट किया है–

भक्ति कल्प तरु सम श्रुति गाय।

ज्ञान योग फल भक्ति दिलाय।

भक्ति पुत्र ही ज्ञान कहाय। *ब्रज रस माधुरी : 02, पद सं.–12*

अर्थात् केवल ज्ञान से जीव का अन्तिम लक्ष्य आनन्द प्राप्ति हल नहीं हो सकता। ज्ञान और भक्ति का मेल लक्ष्य की प्राप्ति को सरल बना देता है।

(ख) भक्ति और कर्म का समन्वय – वैदिक शास्त्रों में जीव के आनन्द प्राप्ति के लक्ष्य हेतु मुख्य रूप से चार मार्ग बताए गए हैं भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग, योग मार्ग व कर्म मार्ग। संत कृपालु महाराज ने तात्विक विवेचन से विभिन्न वेद शास्त्रों का उदाहरण देते हुए ईश्वर प्राप्ति के प्रत्येक मार्ग की अन्तिम परिणिति को स्पष्ट किया है कि ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। कर्म का अन्तिम लक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति है। संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में भक्ति व ज्ञान, भक्ति व कर्म, भक्ति व योग का समन्वय स्थापित किया है।

संत कृपालु महाराज ने अपने सिद्धान्त ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' में विस्तार से कर्म मार्ग को समझाया है। कर्म के विभिन्न रूपों–कर्म, विकर्म, अकर्म संन्यास को समझाते हुए उनकी अन्तिम गति को स्पष्ट किया है एवं विभिन्न शास्त्रों को उल्लेखित करते हुए वास्तव में कर्म और भक्ति के समन्वय को श्रेयस्कर बताया है। बिना भक्ति के केवल कर्म मार्ग का अनुसरण किया जाए तो वह अत्यन्त कठिन मार्ग होगा और

यदि कोई उस कठिनता को लांघते हुए श्रुति स्मृति अनुसार कर्म करे भी तो उसे केवल नश्वर स्वर्ग की ही प्राप्ति होगी। जैसा कि उन्होंने लिखा है– "कर्म का अभिप्राय उससे है जिसमें व्यक्ति श्रुति स्मृति प्रतिपादित विधिवत कर्म का पालन करे किन्तु ईश्वर भक्ति न करे। ऐसे कर्म में प्रमुख विचारणीय बात यह है कि श्रुति स्मृति की विधि में थोड़ा भी गड़बड़ न हो, अन्यथा–

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थ माह।
स वाग्वज्रं यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽराघात्।।

के अनुसार यदि एक वैदिक स्वर की भी त्रुटि रह जाएगी तो कर्म कर्ता को लाभ के बजाय हानि हो जाएगी। एक राक्षस ने ऋषियों को पकड़ कर बरबस एक यज्ञ करवाया। उसमें मंत्र 'इन्द्रशत्रुर्विवर्धस्व' रखा गया, जिसका अर्थ था कि इन्द्र का शत्रु अर्थात राक्षस बढ़े। किन्तु अक्षर वही रखते हुए भी ऋषियों ने एक स्वर बदल दिया। उस राक्षस को वैदिक स्वरों का ज्ञान नहीं था। अतः वह इस चातुरी को नहीं समझ सका। यज्ञ सम्पन्न हुआ। भगवान ने भी मंत्रानुसार फल देने का वरदान दिया। पश्चात् राक्षस ने इन्द्र पर आक्रमण कर दिया परिणामस्वरूप राक्षस मारा गया। मरते समय उसने कहा कि यह ईश्वर के समदर्शित्व पर कलंक है कि उसने वरदान देकर भी पूरा नहीं किया। ईश्वर ने आकाशवाणी द्वारा इस रहस्य का उद्घाटन किया कि 'इन्द्रशत्रुर्विवर्धस्व' इस मंत्र में जो स्वर लगाया था उसका अर्थ यही था कि इन्द्र की शक्ति बढ़े, अतएव इन्द्र विजयी हो गया। यह विधिहीन कर्म का फल है और यदि विधियुक्त कर्म सम्पन्न हो गया तो उसका फल स्वर्ग है, जो नश्वर है, यह पूर्व में समझाया जा चुका है। अतएव शास्त्रोक्त विधिवत कर्म की निन्दा सी पाई जाती है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : कर्म, पृ.सं.–142–43

इस प्रकार केवल कर्म का विधिवत् पालन भी केवल स्वर्ग तक पहुँचाकर समाप्त हो जाता है और जीव का लक्ष्य नश्वर स्वर्ग की प्राप्ति नहीं है। जीव के परम चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्म के साथ भक्ति का समन्वय ही कर्म मार्ग को सम्पूर्ण बनाता है जैसा कि आगे इसी ग्रंथ में उन्होंने लिखा है–

"गुणातीत एक मात्र ईश्वर है, अतएव यदि कर्म में ईश्वर भक्ति का संयोग न होगा तो वह सात्विक हो या राजस या तामस किन्तु मायिक होने के कारण सदोष एवं दुःखमय ही होगा। अतएव कर्मयोग में केवल इतना ही समझना है कि मन ईश्वर में नित्य लगा रहे एवं कर्म धर्म का पालन शरीर से होता रहे।..........अभी इतना समझ लीजिए कि 'मन यार में हाथ कार में' बस यही कर्मयोग है। यदि मन का लगाव ईश्वर से पृथक कहीं हुआ तो आप कर्मयोग नहीं कर सकते। कर्मयोग तो तभी संभव है जब मन नित्य ईश्वर में रहे, एक क्षण के लिए भी पृथक न हो।"

प्रेम रस सिद्धान्त : कर्म, पृ.सं.–148–49

इसी कर्म एवं भक्ति के संयोग एवं समन्वय को उन्होंने अपनी लगभग प्रत्येक रचना में यथा प्रसंग स्पष्ट किया है एवं अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार कर्म एवं भक्ति के समन्वय की तात्त्विक विवेचना की है। केवल कर्म मार्ग का अनुसरण नश्वर स्वर्ग प्राप्ति तक ही सीमित है। अलौकिक आनन्द प्राप्ति हेतु जब कर्म का भक्ति से मेल होता है तब कर्म मार्ग भी सक्षम हो उठता है। वेदों में कर्म, ज्ञान, योग जो भी मार्ग बताए हैं वे अधूरे हैं। जैसा कि संत कृपालु महाराज ने 'भक्ति शतक' ग्रंथ के एक दोहे में लिखा है।

कर्म, योग अरु ज्ञान सब साधन यद्यपि बखान।
पै बिनु भक्ति सबै जनु, मृतक देह बिनु प्रान।। (08) *भक्ति शतक*

अर्थात यद्यपि कर्म, ज्ञान, योग मार्गों का बखान वेदों शास्त्रों में लिखा है किन्तु ये मार्ग ठीक उसी प्रकार जड़ हैं जिस प्रकार बिना प्राण (आत्मा) के देह। भक्ति रूपी प्राण जब उक्त मार्गों से जुड़ जाता है तब उक्त मार्ग भी सार्थक और प्राणवान बनते हैं। इसी प्रकार इसी रचना के एक अन्य दोहे में कर्म मार्ग को भक्ति मार्ग का मुखापेक्षी बताया है–

लखत रहत नित भक्ति मुख, कर्म, योग अरु ज्ञान।
अति स्वतंत्र है भक्ति पथ, वेद पुरान बखान।। (44) *भक्ति शतक*

अर्थात कर्म, योग, ज्ञान तीनों मार्ग भक्ति मार्ग पर अवलंबित है। वेदों शास्त्रों में वर्णित है कि जब उक्त तीनों मार्ग भक्ति के साथ समन्वित होते हैं तब ही वे लक्ष्य निर्धारक बनते हैं। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में संत कृपालु महाराज ने ज्ञान, कर्म मार्ग के प्राप्य को स्पष्ट करते हुए भक्ति मार्ग के समन्वय को स्पष्ट किया है–

ज्ञान मरै दे मुक्ति पद, कर्म मरै दे स्वर्ग।
अमर रहै इक भक्ति ही, चह न स्वर्ग अपवर्ग। (61)

कर्म, ज्ञान अरु योग को, जो भी फल श्रुति गाय।
अनायास बिनु माँगे, भगत सकल फल पाय।। (64) *भक्ति शतक*

अर्थात कर्म मार्ग स्वर्ग देकर नष्ट हो जाता है जबकि भक्ति मार्ग का अनुसरण करने से बिना माँगे उक्त फल अनायास प्राप्त हो जाते हैं। चाहे कर्मी हो, चाहे ज्ञानी हो या चाहे योगी हो इन सभी का समन्वय भक्ति मार्ग से होने पर प्रेम साकार होता है जैसा कि उन्होंने निम्न दोहे में स्पष्ट किया है–

सकल धर्म को मूल है, एक कृष्ण भगवान।
मूल तजे सब शूल हैं, कर्म, योग अरु ज्ञान। (65) *भक्ति शतक*

अर्थात संसार में, वेदों शास्त्रों में जितने भी धर्म, मार्ग बताए गए हैं उन सब का मर्म कृष्ण भगवान अर्थात भक्ति मार्ग है। क्योंकि कृष्ण साकार ब्रह्म के प्रतीक हैं और साकार ब्रह्म भक्ति पथ का अनुगामी है। बिना भक्ति के जितने भी कर्म, ज्ञान, योग मार्ग हैं वे सब शूल के समान अर्थात व्यर्थ एवं परिश्रम साध्य हैं।

इसी प्रकार कर्म मार्ग की सही परिभाषा को उन्होंने निम्न दोहे में स्पष्ट किया है–

मन हरि में तन जगत में, कर्म योग तेहि जान।
तन हरि में मन जगत में, यह महान अज्ञान। (84) *भक्ति शतक*

अर्थात वास्तव में मन को हरि में निरन्तर लगाए रखना फिर चाहे शरीर से वैदिक कर्म, सांसारिक कर्म हो, यही कर्म योग है और यदि शरीर तो हरि कार्यों में हो किन्तु मन सांसारिक चिंतन में लीन हो तो इससे बढ़ के और कोई अज्ञान नहीं हो सकता।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने कर्म को तब ही लक्ष्य साधक माना है जब वह भक्ति से मिलता है। इसी समन्वय को उन्होंने स्वरचित 'श्यामा श्याम गीत' के दोहों में भी स्पष्ट किया है–

मूर्ख कर्म करे स्वर्ग हित कह बामा। ज्ञान मुक्ति धाम पाए, भक्त हरि धामा।।(48)

वेद धर्म पालन ते मिले स्वर्ग धामा। श्याम प्रेम ते ही मिले गोलोक बामा।(49)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात् वह मूर्ख ही है जो केवल कर्म मार्ग का अनुसरण करता है। क्योंकि केवल कर्म मार्ग का अनुसरण नश्वर स्वर्ग की ही प्राप्ति करवाता है जबकि हरि भक्ति युक्त कर्म हरि धाम को प्राप्त करवाता है।

इसी प्रकार कर्म एवं हरि प्रेम अर्थात सगुण भक्ति के समन्वय से युक्त 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में विरचित पद भी अत्यन्त रमणीय हैं। ईश्वर रूपी रत्न की प्राप्ति का उपाय बताते हुए भक्ति युक्त कर्म का उपदेश संत कृपालु महाराज ने निम्न पद में दिया है।

अमोलक रतन मिलत बिनु मोल।

तेहि बिनु कर्म, योग सब छूछो, लेहु तराजुहिं तोल।

स्वर्ग कर्म ते, सिद्धि योग ते, प्रेम बोल हरि बोल।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–05

अर्थात प्रेम भाव से भक्ति युक्त कर्म ही उस अमोल रतन अर्थात ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति करवाता है। इसी ग्रंथ में एक अन्य पद में संत कृपालु महाराज ने बाह्य कर्म विधान को मिथ्या बताते हुए हरि प्रेम युक्त कर्म को ही सुख प्रदायक माना है।

अरे मन! इहै सार संसार

झूठो जप, तप, जोग, योग, व्रत, नेम, धर्म, आचार।

हरि बिनु सुख 'कृपालु' नहिं सपनेहुँ, पचि पचि मरिय हजार।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, 43–9

अर्थात बाह्य पूजा, कर्म विधान आदि सभी मिथ्या हैं जब तक कि उन विधानों का संयोग हरि अर्थात ईश्वर प्रेम से नहीं हो जाता। बिना हरि प्रेम, भक्ति के समस्त कर्म विधान मिथ्या है।

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज ने 'राधा गोविन्द गीत' में तो विस्तार से कर्म मार्ग का निरुपण किया है तथा साथ ही भक्ति एवं कर्म मार्ग के समन्वय को भी स्पष्ट किया है। कर्म मार्ग का अनुसरण नश्वर स्वर्ग की प्राप्ति करवाता है किन्तु बिना हरि भक्ति के वह भी असंभव है।

कर्मी के कर्मों का गोविंद राधे। फल भी मिले ना बिनु भक्ति बता दे।(2398)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात कर्मी जितना भी चाहे उसे बिना हरि भक्ति के अपने कर्म प्रयास का फल प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए कर्म एवं भक्ति का संयोग आवश्यक है। इसी प्रकार जितने भी मानवीय धर्म, कर्म आवश्यक माने जाते हैं जैसे सत्य, अहिंसा, दया आदि। उनकी प्राप्ति भी बिना हरि भजन के नहीं हो सकती।

दया अहिंसा आदि गोविन्द राधे। शास्त्र वेद सम्मत सत्य बता दे। (2399)
सत्य दया युक्त धर्म गोविन्द राधे। तप युक्त ज्ञान मन शुद्ध ना करा दे। (2400)
धर्म तो पाप नासे गोविन्द राधे। मन की तो शुद्धि कृष्ण भक्ति करा दे। (2401)
भक्ति मन शुद्ध करे गोविन्द राधे। सत्य ब्रह्मचर्य आदि गुण भी दिला दे। (2402)
हरि भक्ति के बिना गोविन्द राधे। सत्य अहिंसा गुण सपना बता दे। (2403)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात कर्म मार्ग का अनुसरण करने पर जिन लक्षणों, गुणों की प्राप्ति की आशा की जाती है, उनकी प्राप्ति बिना भक्ति का अवलम्ब लिए नहीं हो सकती क्योंकि कर्म-धर्म द्वारा पाप से निवृत्ति हो सकती है किन्तु पाप करने की चित्त वृत्ति का नाश नहीं हो पाता। मन की शुद्धि तो मात्र भक्ति से ही हो सकती है। भक्ति युक्त कर्म, ज्ञान स्वमेव सब धर्मों एवं गुणों की प्राप्ति करवाता है। आगे कर्म और भक्ति का समन्वय करते हुए संत कृपालु महाराज लिखते हैं कि कर्म का लक्ष्य ही हरि भक्ति तक पहुँचना है।

कर्म की है सीमा ज्ञान गोविन्द राधे। ज्ञान की है सीमा प्रेम सबको बता दे। (2416)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात कर्म की अन्तिम सीमा ईश्वरीय ज्ञान तक पहुँचाना एवं ज्ञान की अन्तिम सीमा हरि भक्ति तक पहुँचाना। वास्तव में कर्म की सही परिभाषा भक्ति युक्त कर्म ही है। जिस कर्म से कृष्ण प्रेम की उपज न हो उसे कर्म ही नहीं कहा जाना चाहिए।

जिस कर्म धर्म ते भी गोविन्द राधे। पिय सुख पावे, सोई कर्म है बता दे।(2420)
हरि हित कर्म अरु गोविन्द राधे। हरि हित ज्ञान हरि प्रेम दिला दे। (2422)
राधा गोविन्द गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज अन्त में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का सम्पूर्ण समन्वय स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि जिस कर्म से हरि भक्ति उत्पन्न हो, जिस ज्ञान से हरि प्रेम की प्राप्ति हो वही कर्म, वही ज्ञान श्रेष्ठ है।

(ग) भक्ति एवं योग का समन्वय – संत कृपालु महाराज के साहित्य में योग मार्ग के साथ भक्ति का समन्वय भी देखने को मिलता है। यथार्थ में योग का वास्तविक पर्याय क्या है ? योग मार्ग का प्राप्य क्या है ? योग एवं भक्ति का संयोग क्या लक्ष्य दिलाता है ? आदि प्रश्नों का उत्तर हमें उनके साहित्य में विशेष रूप से 'राधा गोविन्द गीत' में मिलता है।

'राधा गोविन्द गीत' में योग अध्याय के अन्तर्गत उन्होंने योग का विशेष रूप से निरुपण किया है तथा योग एवं भक्ति के समन्वय को सिद्ध किया है। सच्चा योग वही है जो जीव को ब्रह्म से मिला दे। क्योंकि जीव उसी परम ब्रह्म का अभिन्न अंश है और योग विद्या वही है जो जीवात्मा को परमात्मा से मिलाए–

योग वही योग है जो गोविन्द राधे। जीव ब्रह्म का संयोग करा दे। (2423)
ब्रह्म का वियोगी जीव गोविन्द राधे। साँचो योग सोई जोई योग करा दे। (2424)
राधा गोविन्द गीत

अर्थात सच्चा योग वही है जो जीव को परम तत्व से मिलवाए। आगे संत कृपालु महाराज उस योग को धिक्कारते हैं जो हरि मिलन न करवा कर केवल शारीरिक व्यायाम तक सीमित है।

हरि ते मिलावे ना जो गोविन्द राधे। ऐसा योग योग ना कुयोग बता दे। (2425)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात जिस योग से आत्मा का मेल विशुद्ध तत्व से ना हो उस योग को योग नहीं कुयोग कहना चाहिए। संत कृपालु महाराज ने विस्तार से योग मार्ग के प्राप्य को स्पष्ट किया है कि योग क्रिया करना, योग मार्ग पर चलना अत्यन्त जटिल एवं कठिन है, अनेक नियम, उपनियमों का पालन इस मार्गावलम्बी को करना पड़ता है। कलियुग में तो इस मार्ग को अपनाना अत्यन्त दुष्कर है। किन्तु यदि कोई दृढ़ संकल्प से यह मार्ग अपनाए तो भी उसे दिव्य आनन्द प्राप्ति का लक्ष्य नहीं अपितु उसे आठ सिद्धि, नौ निद्धियों की ही प्राप्ति होगी और इन्हें प्राप्त कर जीव का उत्थान नहीं अपितु पतन ही होगा क्योंकि उसे मिथ्या अभिमान हो जाएगा तथा अन्तःकरण की शुद्धि भी इससे नहीं होगी।

योग है कठिन अति गोविंद राधे। योग जोग कलि में ना कोउ बता दे।। (2430)
योगियों को योग शक्ति गोविंद राधे। रिद्धि सिद्धि दै के वाय बुद्धू बना दे।।(2456)
ब्रह्मा ने भी योग बल गोविन्द राधे। युगों खोजा ब्रह्म ना पाया बता दे।।(2476)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात माया निवृत्ति एवं आनन्द प्राप्ति का लक्ष्य केवल योग मार्ग के अनुसरण से पूर्ण नहीं हो सकता योग मार्ग की अक्षमता का उदाहरण दिया है कि खुद ब्रह्मा भी युगों तक योग बल से ब्रह्म को नहीं जान पाया। इसी अध्याय में आगे संत कृपालु महाराज ने योग एवं भक्ति के समन्वय को सार्थक और सक्षम बताया है। हरि भक्ति के संग किया गया योग ही वास्तव में योग है।

कर्मी, ज्ञानी, योगी आदि गोविन्द राधे। भक्ति बिना माया इन्हें मोह करा दे। (2477)
मन परमात्मा में गोविन्द राधे। जोड़ने का काम है योग बता दे।(2487)

राधा गोविन्द गीत

मन परमात्मा से जोड़ना अर्थात् भक्ति। जब भक्ति का योग, योग मार्ग से होता है तब ही उसका वास्तविक रूप निरुपित होता है।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' में भी संत कृपालु महाराज ने योग एवं भक्ति के समन्वय से संबंधित दोहों की रचना की है।

ज्ञानी अरु योगी जबै, कृष्ण भक्ति उर आन।
कृष्ण कृपा ते ही तवै, पावे ब्रह्म ज्ञान। (27) *भक्ति शतक*

अर्थात ज्ञानी हो या योगी जब उनका समन्वय कृष्ण भक्ति से होता है तब ही कृष्ण भगवान की कृपा से ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है। अनेक प्रयास युक्त साधनाएँ करने पर भी योगियों की माया निवृत्ति नहीं हो सकती जब तक कि विशुद्ध प्रेमा भक्ति से उनका योग नहीं हो जाता। इसका उदाहरण यही है कि स्वयं ब्रह्म केवल प्रेम युक्त अनुहार पर ब्रज गोपियों की करताल पर नृत्य करता है। अर्थात योगी को भी प्रेम भक्ति की शरण लेनी ही होगी।

जाकी माया ते नचे, योगी यती महान।
नचे सोइ करताल पै, ब्रज बीथिन बनितान।(100) *भक्ति शतक*

अर्थात महान योग मार्गावलम्बी भी भक्ति के बिना ईश्वर प्राप्ति नहीं कर सकते। इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' संकीर्तन रचना के अनेक पदों में योग एवं भक्ति के समन्वय को संत कृपालु महाराज ने स्पष्ट किया है।

भक्ति कल्प तरु सम श्रुति गाय। भक्ति सबहिं सब फल दिलवाय।
भक्ति तत्व पर तत्व कहाय। तेहि बिनु धर्म अधर्म कहाय।
ब्रह्म ज्ञान अज्ञान कहाय। अष्ट योग हूँ रोग कहाय।(12)

ब्रज रस माधुरी : 02, पद सं.–12

अर्थात बिना भक्ति के ज्ञान अज्ञान है, सब धर्म अधर्म हैं एवं समस्त योग, योग नहीं रोग है। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में ऊद्धव एवं गोपी संवाद में भी संत कृपालु महाराज ने कोरे योग की निन्दा कर भक्ति युक्त योग का ही समन्वय स्पष्ट किया है।

ऊधो तुम्हें छला भल श्याम छल धामा। जोग जोग कोउ नहिं जाओ और ठामा। (877)
नित्य सिद्ध योगिनी हैं सब ब्रज बामा। योग अधिकारी नहिं मिले ब्रज धामा। (878)
योग सिखाओ ऊधो मधुपुरि धामा। भोग में लिप्त कृष्ण कुबरिहुँ नामा। (879)
भक्ति ते ही कृपा करे ऊधो सुख धामा।श्याम कृपा ते ही मुक्ति मिले कह बामा। (887)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात गोपियाँ योगी, ज्ञानी उद्धव से कहती हैं कि इस ब्रज में तुम्हारे योग मार्ग की अवलंबी कोई भी नहीं है। तुम्हें अपने योग मार्ग के संदेश को मथुरा में ले जाके सुनाना चाहिए क्योंकि ब्रज में तो भक्ति, प्रेम, श्रद्धा का ही साम्राज्य है। यहाँ की गोपियाँ तो नित्य सिद्धा, योगिनी स्त्रियाँ हैं क्योंकि उनके मन का योग सदा ही कृष्ण में होता रहता है। इस योग के अलावा और योग क्या है, ये हम नहीं जानती और न ही जानना चाहती हैं। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम्हारे योग का लक्ष्य मुक्ति है किन्तु इस मुक्ति की प्राप्ति भी तुम्हारे केवल योग मार्ग से नहीं हो सकती। इस मुक्ति को पाने के लिए भी भक्ति की ही शरण लेनी होगी। इस भक्ति से ईश्वर की कृपा होगी और बिना ईश्वर की कृपा के मुक्ति नहीं हो सकती।

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज ने 'युगल शतक' में भी उद्धव गोपी संवाद में कोरे योग मार्ग की निन्दा की है तथा प्रेम योग का ही अभिनन्दन किया है।

ऊधो कहु नन्द कुमार, हम सब भोरी ब्रजनार,
मम संग किय रास बिहार, मम संग रह मम भरतार।
हम ब्रजरस पीवन हार, तव नीरस योग विचार,
हम प्रेम योग उर धार, मम संग रह मम भरतार।
ऊधो दो योग बिसार, गहु तुमहुँ शरण ब्रजनार,
लहु प्रेम सुधा रस सार, लो मत 'कृपालु' उर धार।

युगल शतक : पद-49

अर्थात संत कृपालु महाराज गोपियों के माध्यम से कह रहे हैं कि जिस योग की बात उद्धव कर रहे हैं वह योग मार्ग तो नीरस है और उस योग का ब्रज में कोई

स्थान नहीं है। गोपियाँ कहती हैं कि हमने तो कृष्ण से प्रेम कर उनके साथ प्रेम योग का संबंध स्थापित कर लिया है और यही प्रेम योग रस से परिपूर्ण है। इस पद में भी संत कृपालु महाराज ने योग एवं प्रेमा भक्ति का समन्वय किया है। अर्थात ईश्वर से प्रेम योग किए बिना योग, व्यर्थ है।

इसी प्रकार 'युगल रस' रचना में भी संत कृपालु महाराज ने यत्र-तत्र, यथा प्रसंग ज्ञान, कर्म, योग का भक्ति के साथ समन्वय प्रमाणित किया है।

कैसे कहुँ तू कृपालु कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
सुन्यो बिनु कारण कृपा करे कान्हा,
कोउ कह धर्म कर्म ते कान्हा,
मन हो निर्मल कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कोउ कह योग मार्ग ते कान्हा,
चित्त शुद्ध हो कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कोउ कह ज्ञान मार्ग ते कान्हा
चित्त शुद्ध हो कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
सार 'कृपालु' एक है कान्हा
कृपा तिहारी कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा। *युगल रस, पद-20*

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे कृष्ण। आप कृपालु हैं, आप बिना कारण कृपा के भण्डार हैं। कोई कहता है कि धर्म, कर्म करने से मन निर्मल हो जाता है, कोई कहता है योग मार्ग के अवलम्ब से अन्तःकरण शुद्ध होता है, कोई कहता है ज्ञान मार्ग से चित्त शुद्ध हो जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि जब तक आपकी भक्ति से आपकी कृपा न प्राप्त हो जाए तब तक कर्म, धर्म, योग, ज्ञान मार्ग सब व्यर्थ हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने अपने विविध ग्रंथों, रचनाओं, प्रवचन साहित्य में ज्ञान, कर्म, योग एवं भक्ति मार्ग में समन्वय को प्रस्तुत किया है। उनके इस समन्वय का सार यही है कि ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति आदि जिस किसी भी मार्ग का अनुसरण करने पर स्वयं ईश्वर का प्रेम एवं कृपा प्राप्त हो वही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि 'युगल शतक' ग्रंथ में उन्होंने एक पद में इस समन्वय का सार प्रस्तुत किया है-

नंददुलारे प्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे।
हमहूँ तो हैं अंश तिहारे,
वेद पुरान पुकारे, प्यारे प्यारे प्यारे।
कर्मी, ज्ञानी, योगी सारे,
चहत कृपा तव प्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे।
अब 'कृपालु' अस करु कछु प्यारे,
होय न हम तुम न्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे। *युगल शतक, पद–14*

अर्थात चाहे कर्मी हो, चाहे ज्ञानी हो, चाहे योगी हो सभी को ईश्वरीय कृपा का अवलम्ब आवश्यक है और ईश्वरीय कृपा भक्ति मार्ग से ही मिलेगी। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि आत्मा परमात्मा का योग हो जाए, दोनों में कोई अन्तर न रह जाए ऐसे योग की कृपा वे ईश्वर से चाहते हैं।

निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का समन्वय –

संत कृपालु महाराज के साहित्य में ब्रह्म की निराकार एवं साकार उपासना का समन्वय मिलता है। संत कृपालु महाराज ब्रह्म को निराकार मानते हैं किन्तु साथ ही निराकार ब्रह्म के साकार स्वरूप के विज्ञान को वैदिक उदाहरणों से प्रमाणित करते हैं। उनके मतानुसार जिस प्रकार जीवात्मा निराकार है किन्तु जीवात्मा भी शरीर धारण करती है उसी प्रकार सर्व शक्तिमान परम ब्रह्म भी निराकार होते हुए दिव्य शरीर और गुणों को धारण करता है। जैसा कि अपने सैद्धान्तिक ग्रंथ में उन्होंने लिखा है–

"जैसे निराकार जीव शरीर धारण करता है, वैसे ही ब्रह्म भी शरीर धारण करता है। अन्तर इतना है कि जीव मायाधीन होने के कारण मायिक शरीर धारण करता है। किन्तु ईश्वर योग माया के द्वारा दिव्य चिदानन्दमय शरीर धारण करता है जीवों को रस देने के हेतु स्वेच्छा से शरीर धारण करता है। यह कहना कि वह कभी तो दिखाई देता, तो यह बच्चों का सा तर्क है, क्योंकि ईश्वर का शरीर दिव्य है और हमारी आँखें प्राकृत हैं, अतएव प्राकृत आँख से दिव्य शरीर नहीं दिखाई पड़ सकता। हाँ जब उपासनादि के द्वारा अधिकारी बन जाते हैं एवं ईश्वर कृपा से दिव्य दृष्टि मिल जाती है, तब उस दिव्य ईश्वर को साकार रूप से सर्वत्र देखते हैं।"

प्रेम रस सिद्धान्त : अध्याय निराकार–साकार ब्रह्म

संत कृपालु महाराज वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट करते हैं कि जब ब्रह्म सम्पूर्ण जगत का संवरण कर सूक्ष्म में लीन कर लेता है और पुनः सूक्ष्म जगत को स्थूल रूप में, साकार रूप में प्रकट करता है तो वह स्वयं निराकार से साकार क्यों नहीं हो सकता। अतः निराकार ब्रह्म ही स्वेच्छा से, जगत कल्याण के भाव से साकार रूप धारण करता है। इसलिए साकार एवं निराकार में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं। इसी समन्वय को उन्होंने स्वरचित अनेक रचनाओं में निरुपित किया है। यथा– 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है–

गयो ब्रज माहिँ ब्रह्म बौराय।

जो अदृष्ट, अग्राह्य, अलक्षण, अव्यवहार्य कहाय।
सोई चंचल माखन हित यशुमति, अंचल गहि बिरुझाय।
जो इन्द्रिय-मन-बुधि-अतीत अस, चारिहुँ वेद बताय।
सोई छछिया लौं छाछ हेतु ब्रज, थेइ थेइ नाच नचाय।
कहँ लौ कहिय 'कृपालु' जाय बलि, चौर जार पद पाय।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद 36

प्रस्तुत पद में संत कृपालु महाराज ने निराकार ब्रह्म की साकार झाँकी प्रस्तुत की है। वे कहते हैं ब्रज में तो ब्रह्मा भी आकर बौराय जाता है क्योंकि जिस ब्रह्म को अर्थात भगवान को अदृश्य, अग्राह्य, अलक्षण एवं अव्यवहार्य माना जाता है वही निराकार ब्रह्म ब्रज में माखन प्राप्त करने के लिए चंचलता वश यशुमति के आँचल को पकड़कर झगड़ा कर रहा है तथा जिस ब्रह्म को चारों वेद इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे बताते हैं, वही ब्रह्म ब्रज में थोड़ी सी छाछ के लिए गोपियों के इशारों पर नाच रहा है। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वही निराकार ब्रह्म इस ब्रज में चोर, जार पद को प्राप्त कर बलिहार जा रहा है।

निर्गुण, सगुण के समन्वय का रूप हम संत कृपालु महाराज द्वारा रचित 'युगल रस' रचना के पदों में भी देख सकते हैं जैसे–

कैसे कोउ जाने तोहिँ कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कर्ता भी अकर्ता भी है कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

निरपेक्ष सापेक्ष कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
जन्मा अजन्मा भी कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
गम्य भी अगम्य भी है कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तू तो निराकार साकार भी है कान्हा,
निर्गुण सगुण भी कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तोको जाने तू ही बस कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

युगल रस : पद सं.10

अर्थात ईश्वर के दोनों रूप हैं, किस प्रकार कान्हा अर्थात कृष्ण भगवान को जाना जा सकता है। भगवान कर्ता भी हैं अकर्ता भी, निरपेक्ष भी हैं सापेक्ष भी हैं, जन्मा भी हैं अजन्मा भी हैं, गम्य भी हैं और अगम्य भी, निराकार भी हैं साकार भी हैं, निगुर्ण भी हैं सगुण भी हैं। अतः हे प्रभु! आपको केवल आप ही जान सकते हो।

इसी प्रकार 'युगल रस' के एक अन्य पद में भी संत कृपालु महाराज ने निराकार एवं साकार ब्रह्म का समन्वय किया है–

यह अचरज सुनु कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने ब्रह्म अजन्मा माना,
सोइ जनमेउ बनि कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने जगतपिता जेहि माना,
बन्यो नंद सुत कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने निराकार जेहि माना,
सोइ धर नरतनु कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने नेति नेति जेहि माना,
सोइ घोड़ा बन कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
हौं 'कृपालु' अचरज नहिं माना,
भक्तिवश्य रह कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

युगल रस, पद सं. 14

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि यह अचरज सुनो! वेद ने जिस ब्रह्म को अजन्मा माना है, वही ब्रह्म कृष्ण के रूप में जन्म धारण करता है। वेद जिसे जगत

का पिता कहता है, वही नन्द का पुत्र कृष्ण बना है। वेद ने जिसे निराकार ब्रह्म स्वीकार किया है, उसी ने कृष्ण के रूप में मानव शरीर धारण किया है। वेद जिसकी महिमा का पूर्ण रूप से वर्णन करने में असमर्थ होकर 'नेति नेति' कहने लगता है। वह सखाओं को कंधे पर बिठाकर उनका घोड़ा बनकर ब्रज भूमि में दौड़ लगा रहा है। 'कृपालु' कहते हैं, मैं इस आश्चर्य को आश्चर्य नहीं मानता। कारण श्री कृष्ण सदा भक्ति के वश में रहते हैं।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' रचना में भी संत कृपालु महाराज ने अनेक दोहों में निराकार एवं साकार ब्रह्म के एकत्व का संदेश दिया है। यथा–

ब्रह्म निरंजन जनि भनो, सुनहु खोलि निज कान।
अंजन बनि डोलै सदा, पाछे ब्रज बनितान। (92) *भक्ति शतक*

अर्थात ब्रह्म को केवल निरंजन न कहो, ब्रह्म को निरंजन मानने वालों से, बड़े सख्त शब्दों में संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वही निरंजन ब्रह्म ब्रज में ब्रजांगनाओं की आँखों में अंजन बनकर डोलता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में भी इसी एकत्व को देख सकते हैं।

जाको कह अज सोइ ब्रज, नन्द नन्दन बनि आय।
ग्वालन जूठन खात लखि, विधि बुधि गइ भरमाय।(98) *भक्ति शतक*

अर्थात जिस ब्रह्म को वेद में अजन्मा कहा गया है वही ब्रह्म ब्रज में नन्द नन्दन बनकर आया है और ग्वालों की झूठन खाते देखकर स्वयं ब्रह्मा की बुद्धि भी भ्रमित हो रही है कि ये अजन्मा ब्रह्म का कैसा स्वरूप है।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ में भी संत कृपालु महाराज ने अनेक स्थानों पर ईश्वर के निर्गुण, सगुण रूपों के समन्वय की ओर संकेत किया है।

तेरे हैं अनन्त रूप अस श्रुति गाय,
वैसे ही अनन्त नाम श्रुति बतलाय।
ज्ञानिन को तेरा रूप ब्रह्म मन भाय,
योगिन को तू ही परमात्मा लखाय।
भक्तन प्रिय छवि श्यामा श्याम आय,
जाको मन भाय यामें वामें मन लाय। *युगल शतक : पद सं. 11*

अर्थात वेद में ब्रह्म के अनेक रूपों का वर्णन है। अनन्त नामों का वर्णन हैं। ज्ञानियों को ब्रह्म सुहाता है, योगियों को परमात्मा नाम भाता है और भक्तों को कृष्ण-राधा का रूप भाता है। जिस भी व्यक्ति की जैसी चित्त वृत्ति होती है उसी प्रकार के रूप में उस का मन आसक्त हो जाता है। ये सभी रूप एक ही ईश्वर के हैं।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी संत कृपालु महाराज ने निर्गुण ब्रह्म के वास्तविक अर्थ को समझाते हुए सगुण के साथ निर्गुण का समन्वय किया है-

वेद कहें निर्गुण ब्रह्म सुख धामा। याको अर्थ माया गुण हीन कह बामा।(76)
ब्रह्म है सगुण याको अर्थ कह बामा।दिव्य गुण युक्त श्याम हैं पूर्ण कामा। (77)
ब्रह्म है अकाय याको अर्थ कह बामा। श्यामा श्याम काय तो है चिदानन्द धामा। (78)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वेद में ब्रह्म को निर्गुण, सगुण एवं अकाय कहा है। इसका वास्तव में अर्थ यह है कि ब्रह्म माया के तीनों गुणों से परे, विशेष दिव्य गुणों से युक्त है तथा ब्रह्म मायिक पंचभौतिक शरीर युक्त नहीं अपितु चिदानन्द मय स्वरूप से युक्त, शरीरधारी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, निर्विशेष कहने का वास्तविक अर्थ यह है कि ब्रह्म मायिक विकारों से दूर विशेष दिव्य गुण, रूप, ज्ञान से युक्त है। इसी रचना के एक अन्य दोहे में भी इसी एकत्व के दर्शन होते हैं-

ब्रह्म था अतनु वाय तनु दियो श्यामा। ब्रज रस पायो जब आईं ब्रज बामा। (242)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप तो निराकार है किन्तु राधा शक्ति की कृपा से अशरीरी ब्रह्म भी शरीर युक्त अर्थात साकार बनकर आया और ब्रज की गोपियों के साथ मिलकर रस की वृष्टि की। इस प्रकार निराकार ब्रह्म ही साकार बनकर, कृष्ण रूप में अवतरित हुआ है।

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' में भी संत कृपालु महाराज ने ज्ञान, भक्ति के संदर्भ में निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म के गूढ़ रहस्य को समझाते हुए निराकार एवं साकार ब्रह्म को एक बताया है तथा ईश्वर के एकत्व किन्तु उसके रूप वैविध्य पर प्रकाश डाला है। वेद में जिस ब्रह्म को निर्गुण निराकार माना गया है वही ब्रह्म भक्तों के विनय से एवं कल्याण कामना से सगुण रूप धारण करता है–

ब्रह्म सत्य संकल्प गोविन्द राधे। याते निराकार साकार बता दे। (3154)

x x x x x x x x x x

ब्रह्म की स्वरुप शक्ति गोविन्द राधे। ब्रह्म को सगुण साकार बना दे।(3158)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात ब्रह्म की सत्य संकल्प शक्ति एवं योग माया ऐसी शक्ति है जो ईश्वर के निर्गुण, निराकार स्वरूप को साकार एवं सगुण बना देती है। साकार सविशेष ब्रह्म इस संकल्प शक्ति से निर्गुण निराकार में परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म योग माया की शक्ति से सगुण, साकार रूप धारण कर लेता है।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' संकीर्तन रचना के अनेक छन्दों में संत कृपालु महाराज ने निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म के एकत्व की झाँकी प्रस्तुत की है। जैसे निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें संत कृपालु महाराज ने ईश्वर को अद्वितीय माना है, हालाकि उस ईश्वर के तीन रूप हैं ब्रह्म, परमात्मा और भगवान।

अद्वितीय इक तत्व कहाय। ब्रह्म नाम जेहि वेद बताय।
ब्रह्म रूप भी तीन बताय। एक रूप तो ब्रह्म कहाय।
एक रूप परमात्मा आय। एक रूप भगवान कहाय।
तीनिहुँ रूप अभिन्न बताय। निराकार तो ब्रह्म कहाय।
परमात्मा साकार बताय। जो स्वरूप भगवान कहाय।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद सं. 04

अर्थात निराकार ब्रह्म का ही दूसरा रूप साकार भगवान एवं परमात्मा है। दोनों एक दूसरे के रूप हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार इस ग्रंथ के एक

अन्य, छन्द में भी संत कृपालु महाराज ने निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म को एक ईश्वर के दो रूप माने हैं।

ब्रह्म रूप आनन्द कहाय। दोउ शब्द पर्याय बताय।

ब्रह्म अभिन्न रूप द्वै आय। निराकार इक ब्रह्म कहाय।

इक साकार ब्रह्म कहलाय। कृष्ण ब्रह्म साकार कहाय।

ब्रज रस माधुरी : भाग 02, पद–10

उपर्युक्त पद में संत कृपालु महाराज ने ब्रह्म को एक ही माना है किन्तु उसके दो रूप स्वीकार किये हैं। एक निर्गुण, निराकार एवं दूसरा सगुण साकार। तत्त्वतः दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। साकार ब्रह्म के भी अनेक रूप हैं किन्तु वास्तव में भगवान तो एक ही है। इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का समन्वय किया है।

विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वय –

संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमें हिन्दी साहित्य की विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वय मिलता है। संत कृपालु महाराज स्वयं पंचम मूल जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित हैं तथा उन्हें जगद्गुरु ही नहीं अपितु जगद्गुरुत्तम की उपाधि से सम्मानित किया गया है तथा उनके दार्शनिक समन्वय की क्षमता को देखते हुए काशी विद्ववत्परिषत् द्वारा समन्वयाचार्य की उपाधि भेंट की गई है। उनसे पूर्व अब तक चार मूल जगद्गुरु हुए हैं, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य।

संत कृपालु महाराज के साहित्य में उक्त चारों जगद्गुरुओं के दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वय मिलता है। वैष्णव भक्ति को विविध रूपों में स्थापित करने वाले आचार्यों का युग ग्यारहवीं शताब्दी से सोलहवीं तक स्वीकार किया जाता है। श्री रामानुजाचार्य (1017–1127) से यदि आचार्य युग का प्रारम्भ माना जाए तो इसमें निम्बार्काचार्य, विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य तक का काल आता है। इन आचार्यों के अतिरिक्त विष्णु (राम और कृष्ण) के उपासक अन्य आचार्य एवं महात्मा भी इसमें समाविष्ट हो जाते हैं, जिनमें कृष्ण, चैतन्य, गोस्वामी तुलसीदास,

सूरदास तथा अष्टछाप के कवि, गोस्वामी हितहरिवंश तथा उनके सम्प्रदाय के कवि, स्वामी हरिदास और उनके सम्प्रदाय के कवि आते हैं। उपर्युक्त वैष्णवाचार्यों ने अपने सिद्धान्तों की स्थापना संस्कृत भाषा के माध्यम से की थी। इनके अपने मौलिक ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं, किन्तु उनसे भी अधिक महत्त्व इनके भाष्यों, टीकाओं और वृत्तियों का है। प्रस्थानत्रयी (उपनिषद् गीता और ब्रह्मसूत्र) पर भाष्य लिखकर अपनी दार्शनिक मान्यताओं की स्थापना प्रायः सभी आचार्यों ने की है। वस्तुतः इन्हीं भाष्यों या टीकाओं के द्वारा आज उनके मन्तव्यों का बोध होता है। आचार्य जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर अपने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया था। अतः परवर्ती वैष्णवाचार्यों को भी इस मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

संत कृपालु महाराज के साहित्य में उक्त समस्त दार्शनिकों के दर्शन का समन्वय बखूबी दृष्टिगोचर होता है।

(क) शंकराचार्य के अद्वैतवाद का समन्वय – आदि जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयी की टीका भाष्य में अद्वैतवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जीवात्मा ही परमात्मा स्वरूप है। इसी को प्रमाणित करने हेतु उन्होंने सूत्र किया – 'अह्म ब्रह्मास्मि' अर्थात मैं ही ब्रह्म हूँ। उन्होंने ज्ञान मार्ग की प्रतिस्थापना की तथा साथ में ज्ञान के अनुभूति पक्ष की बात कहकर भक्ति की अनिवार्यता को भी स्वीकार किया। आचार्य शंकर का यह स्पष्ट मत है कि जब तक ज्ञान का, अनुभव में अवसान नहीं होता, तब तक वह निस्सार है। ज्ञान मार्ग में अनुभूति की इस स्वीकृति के आलोक में निर्गुण भक्ति के स्वरूप पर विचार किया जाए तो उसका संतुलित विवेचन आसानी से हो सकता है। शंकराचार्य की इन्ही मान्यताओं का अद्भुत समन्वय संत कृपालु महाराज के साहित्य में मिलता है जैसे– 'राधा गोविन्द गीत' में शंकराचार्य के ज्ञान का समुचित समन्वय भक्ति से किया है।

शंकर कहे ज्ञान गोविंद राधे। हरि की कृपा ते ही होगा बता दे।(2561)

x x x x x x x x x x

हरि की कृपा ते युक्त गोविन्द राधे। ज्ञान ही ज्ञानी को मोक्ष दिला दे। (25621)

हरि ज्ञान ते हो भक्ति गोविंद राधे।भक्ति ते ब्रह्म ज्ञान आप हो बता दे। (2563)
भक्ति सहित ज्ञान गोविंद राधे। ब्रह्म ज्ञान अरु अपवर्ग दिला दे। (2564)

राधा गोविन्द गीत–01

इसी प्रकार शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म को एक माना था। इसी सिद्धान्त का समन्वय करते हुए संत कृपालु महाराज ने भी आत्मा परमात्मा का संबंध स्वीकार करते हुए समन्वय किया तथा उनमें भेद का कारण बताया–

गोविंद आनन्द गोविंद राधे। पर्यायवाची हैं वेद बता दे। (685)

x x x x x x x x x

जीव आनन्द मध्य गोविंद राधे। माया विजातीय बाधा बता दे।(706)

राधा गाविन्द गीत : भाग 01

अर्थात परमात्मा आनन्द का पर्यायवाची स्वरूप है तथा जीव इसी आनन्द स्वरूप परमात्मा का अंश है। परमात्मा की जो विशेषताएँ हैं वही जीव स्वरूप आत्मा की भी हैं किन्तु फिर भी दोनों में भेद है क्योंकि माया विजातीय तत्व है जो दोनों के बीच आ गई है।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' रचना में संत कृपालु महाराज ने शंकराचार्य के जीव ब्रह्म संबंध को स्पष्ट करते हुए उसका समन्वय अन्य सिद्धान्तों से किया है।

तुम भी चित हम भी चित कह ब्रज बामा। तुम विभुचित हम अणुचित श्यामा।(25)
तू है मायाधीश कह ब्रज बामा। मैं भी तेरा अंश किंतु मायाधीन श्यामा।(26)
तेरे मेरे पास माया, कह ब्रज बामा। माया तेरी दासी मैं हूँ माया दासी श्यामा।(27)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात भले ही जीव और ब्रह्म दोनों एक हैं किंतु दोनों में फिर भी अन्तर है। जीव मायाधीन है जबकि ब्रह्म मायाधीश है। इसी माया के परदे ने दोनों को अलग कर रखा है। इसी प्रकार 'भक्ति शतक' ग्रंथ के अनेक दोहों में संत कृपालु महाराज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का समन्वय करते हुए तत्व सिद्धान्त को निरुपित किया है।

जैसे– **आत्मा बिच परमात्मा, करत निवास सदाय।**

याते कहुँ कहुँ आत्मा, परमात्मा कहलाय। (43) *भक्ति शतक*

अर्थात आत्मा परमात्मा का अभेद अंश है जो सदा से ही परमात्मा के भीतर रहता है। इसीलिए ऐसा कह दिया जाता है कि आत्मा ही परमात्मा है। ऐसा इसलिए कह दिया गया है क्योंकि है कि यदि भगवान सबके भीतर नहीं रहेंगे तो जीव के प्रारब्ध एवं कर्म को संचित करने का काम कौन करेगा तथा कर्म करने की शक्ति भी तो भगवान ही देते हैं। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में भी उन्होंने आत्मा परमात्मा के संबंध को अद्वैत बताते हुए समन्वित किया है–

ब्रह्म श्याम है सूर्य सम, जीव किरन अनुहार।

दैवी माया गुण मयी, जानु रूप अँधियार। (73) *भक्ति शतक*

अर्थात जीव और ब्रह्म का संबंध सूर्य एवं सूर्य की किरण के समान है और ये माया तीन गुणों से आबद्ध अंधकार के समान है। इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ के अनेक छन्दों में भी संत कृपालु महाराज ने अद्वैतवाद का समन्वय अन्य सिद्धान्तों से किया है। जैसे–

तुम मम प्रियतम कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
हौं कान्हा अब लौं नहिँ जाना,
रहेउ विमुख तव कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
मैं हूँ आत्मा कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
आत्मा की आत्मा तू कान्हा,
यह भी अब मैं जाना, कान्हा, कान्हा कान्हा।
तत्व 'कृपालु' सार यह जाना,
छिन छिन भजु मन कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।(09)

युगल शतक

इसी प्रकार 'युगल रस' रचना के भी अनेक छन्दों में संत कृपालु महाराज ने इस दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय किया है।

तू मेरा मैं तेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ अंश सनातन तेरा,
तू है अंशी मेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ नित्य दास हरि तेरा,
तू ही स्वामी मेरा, तेरा तेरा तेरा।(07) *युगल रस*

अर्थात जीव और ब्रह्म का संबंध अद्वितीय है। जीव ब्रह्म में समाया है और ब्रह्म जीव में समाया हुआ है। दोनों में अंश, अंशी का संबंध होते हुए भी, स्वामी और दास का सनातन नाता है। इसी प्रकार एक अन्य छन्द में भी संत कृपालु महाराज ने अद्वैतावाद का समन्वय करते हुए लिखा है–

तू ही मेरा तू ही मेरा कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तू ही मम स्वामी सखा सुत पति कान्हा,
तेरी श्रुति कह तू ही मेरी गति कान्हा,
तोहिं तजि जाउँ कित कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तेरी श्रुति कह तू ही देही मम कान्हा,
देही देह दोउ इक कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
'अंशो नाना' अस कह कान्हा,
ब्रह्म सूत्र भी कान्हा,, कान्हा कान्हा कान्हा।
'स त आत्मा' अस कह श्रुतिकह कान्हा,
तू मम आत्मा कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तो सो ही तो है मम कान्हा,
सब ही नातो कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।(18) *युगल रस*

अर्थात जीव आत्म समर्पण करते हुए श्री कृष्ण से कहता है– हे श्री कृष्ण! मेरे तो सर्वस्व एक मात्र तुम ही हो, तुम ही मेरे स्वामी, सखा, पुत्र पति एवं माता–पिता हो। वेद कहता है– जीव की एक मात्र गति तुम ही हो। तुम्हें छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ। वेद कहता है– जीवात्मा की आत्मा तुम ही हो। जिस प्रकार शरीर में आत्मा रहती है उसी प्रकार आत्मा में तुम रहते हो। जीव तुम्हारे अंश हैं ऐसा ब्रह्मसूत्र कहता है। वेद

कहता है– तुम मेरी आत्मा हो। मेरे समस्त संबंध एक मात्र तुम से ही है। सभी संबंधों में जो तुम्हें अच्छा लगे मान लो। कृपालु कहते हैं– हे श्री कृष्ण मैं मन से हार गया। यह मेरी नहीं सुनता। तुम मेरी पुकार सुन लो।

इस प्रकार अपने लगभग प्रत्येक ग्रंथ एवं प्रवचन साहित्य में कृपालु महाराज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का समन्वय वेदाचार्यों के अन्य सिद्धान्तों से किया है।

(ख) श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का समन्वय –आचार्य रामानुज ने अवतारी राम को अपनी विष्णु भक्ति का उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की। उनके मत में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे पाँच रूप धारण करते हैं। इन्हीं में अर्चावतार राम की गणना होती है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। 'तत्वमसि' सूत्र का अर्थ भी उन्होंने सगुणोपासना के दास्य भाव के आधार पर तत–उनका त्वं–तू, असि–सेवक है, ऐसा किया है। उन्होंने जीव और ब्रह्म में शेष–शेषी संबंध स्थापित किया है। जीव शेष (दास) और ब्रह्म शेषी (स्वामी) है। भगवान की शरण में कैंकर्य–भाव से प्रस्तुत होकर ही जीवात्मा अपना कल्याण कर सकती है। दार्शनिक स्तर पर यह सिद्धान्त 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहलाता है और इसी सम्प्रदाय को 'श्री–सम्प्रदाय' कहते हैं। इस सम्प्रदाय का प्रबल प्रभाव रामानन्द स्वामी पर देखा जा सकता है। हिन्दी के वैष्णव कवियों में गोस्वामी तुलसीदास भी इससे अत्यधिक प्रभावित है।

संत कृपालु महाराज के साहित्य में इस दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों से किया मिलता है यथा– 'सुनहु साधक प्यारे' रचना की निम्न पंक्तियों को देखा जा सकता है–

सुनहु साधक सुनहु साधक सुनहु साधक प्यारे।
तुम चहत आनन्द शाश्वत, दिव्य चिन्मय प्यारे।
ब्रह्म या आनन्द दोनों, एक ही हैं प्यारे।
ब्रह्म या आनन्द के ही अंश हैं सब प्यारे।
चहत नित सब आनन्द याते, जीव सबहिं प्यारे।
अंश निज अंशी का सेवक, जगहुँ महँ रह प्यारे।

ब्रह्म या पर तत्व अंशी, श्याम सेवक प्यारे।
जग चराचर जीव याते, श्याम सेवक प्यारे।
धर्म सेवक है इहै बस, श्याम सेवा प्यारे।

सुनहु साधक प्यारे : पृ.सं.-1

अर्थात जीव का सनातन स्वभाव है, आनन्द की प्राप्ति और वह दिव्य आनन्द परम ब्रह्म का पर्यायवाची है। ब्रह्म कहो या आनन्द कहो दोनों का एक ही तात्पर्य है तथा जीव भी उसी दिव्य आनन्द का अंश है और जब उसे वह दिव्य आनन्द मिल जाएगा तब ही वह पूर्ण हो सकेगा। साथ ही कृपालु जी महाराज कहते हैं कि संसार में भी यही नियम है कि अंश, अंशी का सेवक होता है, इसी सिद्धान्त के तहत जीव भी ईश्वर का अंश है और ईश्वर के प्रति सेवा एवं सेवक का भाव, सनातन एवं स्वाभाविक है। अतः जीव चाहे चर हो या अचर हम सभी स्वभाव से ही शाश्वत रूप में ईश्वर के सेवक हैं। इस पद में संत कृपालु महाराज ने रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्त का ही निरुपण करते हुए समन्वय किया है।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ के अनेक छन्दों में भी संत कृपालु महाराज का विशिष्टाद्वैतवाद समन्वय दृष्टिगोचर होता है–

ब्रह्म रूप आनन्द कहाय। दोउ शब्द पर्याय बताय।
ब्रह्म शक्ति सब जीव कहाय। याते जीव अंश कहलाय।
अंश लक्ष्य अंशी बतलाय। जीव लक्ष्य आनन्दहिँ आय।
निराकार इक ब्रह्म कहाय। इक साकार ब्रह्म कहलाय।

ब्रज रस माधुरी : भाग-02, पद सं. 10

अर्थात ब्रह्म, आनन्द का पर्याय है और समस्त जीव उस आनन्द ब्रह्म के अंश हैं और अंश का स्वभाव अपने अंशी को पाना और उसकी सेवा करना है अतः समस्त जीव ईश्वर के सनातन सेवक हैं और ब्रह्म समस्त जीवों का स्वामी है।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' के अनेक दोहों में हमें उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

सेवक सेवा ही चहइ, सेव्य श्याम रुचि जान।

तिन सुख महँ रह सुखी, निज, उर न कामना आन।(46)*भक्ति शतक*

अर्थात ब्रह्म जीव का सेव्य है तथा जीव उस परम ब्रह्म का सनातन सेवक है सेवक का धर्म सदा अपने सेव्य की सेवा करना है। प्रिय की सेवा के सुख से ही स्वयं जीव सुख प्राप्त करता है तथा अपने हृदय में किसी और चीज की कामना नहीं आने देता। अर्थात सेव्य की सेवा से जीव आनन्द प्राप्त करता है।

इसी प्रकार इस ग्रंथ के एक अन्य दोहे में भी विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्त की झलक दृष्टिगोचर होती है–

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।

बढ़वहु सेवा-वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान। (74) *भक्ति शतक*

अर्थात समस्त सिद्धान्तों का सार यही है कि परम ब्रह्म श्री कृष्ण का ध्यान हो अर्थात भक्ति हो और निरन्तर अपने स्वामी की सेवा का भाव हो। यही कल्याण का मार्ग है और यही परम ज्ञान है।

इसी प्रकार 'युगल रस' रचना के पदों में भी हमें उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्त के समन्वित दर्शन होते हैं–

तजु मन मानी मन मेरे, मेरे मेरे मेरे।
सुत वित तिय पति नहिं कोउ तेरे,
सब स्वारथ के चेरे, मेरे मेरे मेरे।
तू है हरि का, हरि हैं तेरे,
उनहिं मान 'तू मेरे' मेरे मेरे मेरे।
वे हरि रहत सदा उर तेरे,
बनि जा उनहिंन चेरे, मेरे मेरे मेरे।
सार 'कृपालु' एक हरि तेरे,
वचन मानु मन मेरे, मेरे मेरे मेरे।

युगल रस : पद सं.–06

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मन! ये संसार के भौतिक पदार्थ और रिश्तेदार तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हारा सच्चा रिश्तेदार तो ईश्वर है और तुम उसके दास हो बस यही सेवक एवं सेव्य का नाता ही सनातन है और ईश्वर स्वयं तुम्हारे हृदय में निवास करता है तुम्हें कहीं उसे खोजने की आवश्यकता नहीं है। बस, हे मन! यह दृढ़ निश्चय कर ले कि केवल कृष्ण ही तुम्हारे हैं।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ में भी विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्त का समन्वय करते हुए संत कृपालु महाराज लिखते हैं–

चित को चुराया चित भाया सुख धामा। दास बना के सेवा देना आठु यामा। (111)
तू तो है अनन्त प्रेम सिंधु सुख धामा। एक बिंदु सिंधु ते पिला दे पूर्ण कामा। (112)
महल टहलिनी बना दो निज धामा। किंतु परन्तु लगाओ जनि श्यामा। (132)
महल की सेवा जो ना दे सके श्यामा। कुंज की ही सेवा दे दे वृन्दावन धामा। (133)
सेवा की लालसा बढ़ा दे मम श्यामा। मुक्ति नाहिं चाहूँ नाहिं वैकुण्ठ धामा। (134)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात भक्त अपने शरण्य से कहता है कि हे राधा–कृष्ण! आप मेरे स्वामी हैं और मैं सदा से आपका दास हूँ। अपने प्रेम सिंधु में से मुझे एक बूँद का पान करवा कर मेरा कल्याण कर दो। कृपा करके मुझे अपने महल में सेवक बना दो, यदि महल की सेवा नहीं देना चाहते हो तो कुँज की ही सेवा दे दो, क्योंकि सेवक का धर्म ही सेवा है यही उसका सनातन धर्म और स्वभाव है।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के निम्न पद में भी उक्त सिद्धान्त के समन्वयात्मक स्वरूप को देखा जा सकता है–

धन्य सोइ जोइ स्वारथ पहिचान।
स्व शब्दार्थ 'आत्मा' जानिय, अर्थ अर्थ सब जान।
परमात्मा को अंश आत्मा, वेद पुरान बखान।
आत्महिं अर्थ सिद्धि परमात्महिँ, इहै ज्ञान को ज्ञान।
परमात्मा रस रूप वेद कह, सोइ रस स्वारथ मान।
सोइ स्वारथ रत जोइ 'कृपालु' चरनन श्याम सुजान।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी पद 58

संत कृपालु जी महाराज कहते हैं कि संसार में वही भूरि-भाग्यशाली है जो स्वार्थ को पहिचान ले। 'स्व' शब्द का अर्थ है 'आत्मा' एवं 'अर्थ' शब्द का मतलब है 'लक्ष्य'। इस प्रकार 'स्वार्थ' शब्द का अर्थ हुआ आत्मा के लक्ष्य की प्राप्ति। 'आत्मा' वेद पुराणादि द्वारा प्रमाणित परमात्मा का अंश है। अतएव आत्मा की लक्ष्य प्राप्ति परमात्मा के द्वारा ही संभव है, बस यही जानने योग्य ज्ञान है। वेदादि के द्वारा यह निर्विवाद सिद्ध है कि परमात्मा 'रसस्वरूप' है। अतएव वही दिव्य रस रूपी लक्ष्य प्राप्ति ही सच्चा स्वार्थ है। 'कृपालु' कहते हैं कि मोटी अक्ल वाले इतना ही समझ लें कि वही सच्चा स्वार्थी है जो श्याम सुन्दर के चरण कमलों में निष्काम भाव से प्रेम करता है। शेष स्वार्थ दैहिक होने के कारण नश्वर हैं, अतएव उनसे आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति अथवा आत्यन्तिक सुख-प्राप्ति रूपी परम चरम लक्ष्य अनन्तकाल में भी नहीं प्राप्त हो सकता। उक्त पद में हमकों रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद के साथ शंकराचार्य के अद्वैतवाद दार्शनिक विचारधारा का समन्वय दृष्टिगोचर होता है-

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ के छन्दों में भी उक्त दार्शनिक समन्वय को देख सकते हैं-

तू ही मेरा इक श्याम, मैं भी इक तेरा श्याम,
तेरे अगनित जन श्याम, जय जयति जयति जय श्याम।
तू ही मम माता श्याम, है पिता एक तू श्याम,
हौं तो हूँ तव सुत श्याम, जय जयति जयति जय श्याम।
तू ही मम अंशी श्याम, तव अंश जीव मैं श्याम,
तू विभु मैं अणु हूँ श्याम, जय जयति जयति जय श्याम।
तू ही मम स्वामी श्याम, तव दास जीव मैं श्याम,
तू है मायापति श्याम, माया अधीन मैं श्याम।
तू कृपा सिंधु है श्याम, चह कृपा ' कृपालुहुँ' श्याम।

युगल शतक : कृष्ण माधुरी, पद-15

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे श्याम सुन्दर! मेरे तो एक मात्र तुम ही हो। तुम्हारे अगणित भक्त हैं उनमें से एक मुझे भी समझ लेना। तुम्हारी सदा ही जय हो। हे श्याम सुन्दर! मेरे माता एवं पिता एक मात्र तुम ही हो। मैं तुम्हारा पुत्र हूँ।

हे नाथ! तुम्हारी सदा ही जय हो। श्यामसुन्दर तुम मेरे अंशी हो, मैं तुम्हारा अंश जीव हूँ। हे प्रभु! तुम व्यापक हो मैं अणु हूँ। तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम तो माया के स्वामी हो, मैं माया के अधीन एक साधारण जीव! तुम्हारे समान तो एक तुम ही हो। हे कृपा के समुद्र! मैं तुम से कृपा की याचना करता हूँ।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमें उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय बखूबी दृष्टिगोचर होता है।

(ग) श्री मध्वाचार्य के द्वैतवाद दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय – संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमें आदि जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य के द्वैतवाद दार्शनिक सिद्धान्त का भी समन्वय दिखाई पड़ता है। आचार्य मध्व (1199) का जन्म दक्षिण भारत के बेलिग्राम नामक स्थान में हुआ था। संन्यास लेने पर इनका नाम आनन्दतीर्थ रखा गया। उत्तर भारत की यात्रा पर आने पर ये बदरिकाश्रम गये और वहाँ वेद व्यास से शालिग्राम की तीन मूर्तियाँ प्राप्त की। यहीं अपने शिष्यों की सुविधा के लिए इन्होंने आठ मन्दिरों का निर्माण किया और वैष्णव भक्ति के प्रचार में योग दिया। मध्वाचार्य ने अद्वैतवाद का घोर विरोध किया। इनका दार्शनिक मत द्वैतवाद है। इनके मत में भगवान विष्णु आठ गुणों से युक्त और सर्वोच्च तत्व हैं। जगत सत्य है। ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद वास्तविक है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। जीव स्वभावतः अल्प शक्ति और अल्पज्ञान से युक्त है। अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ विष्णु के अधीन रहकर ही कार्य करता है। जीवों में तारतम्य रहता है– संसार दशा में ही नहीं, मोक्ष दशा में भी यह तारतम्य विद्यमान रहता है। अपने वास्तविक सुख की अनुभूति ही मुक्ति है। मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन अमला भक्ति है। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। मध वाचार्य का सम्प्रदाय 'ब्रह्म सम्प्रदाय' के नाम से विख्यात है। द्वैतवादी दार्शनिक विचारधारा का समन्वय संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में किया है। 'युगल माधुरी' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है–

मेरे एक तुम, मेरे एक तुम, मेरे एक तुम माधव।
मैं भी तो तव, मैं भी तो तव, मैं भी तो तव माधव।
तुम भी चेतन हम भी चेतन, भेद नहिं है माधव।
मोमें तोमें भेद भी नहिं, भेद भी है माधव।
तुम हो विभु चित्त, हम हैं अणु चित्, भेद यह है माधव।

x x x x x x x

तुम हो निर्गुण हम गुणी हैं, भेद यह है माधव।
तुम हो सूरज किरण हैं हम, भेद यह है माधव।

युगल माधुरी : पद सं. 07

अर्थात संत कृपालु जी महाराज लिखते हैं कि भक्त अपने स्वामी से विनय करता है कि हे माधव! मेरे तो केवल तुम ही हो। और मैं भी केवल आपका ही हूँ। आगे भक्त जीव अपने शरण्य से कहता है कि मुझमें और तुम में किसी प्रकार का भेद नहीं है क्योंकि तुम भी चेतन हो और मैं भी चेतन हूँ किंतु देखा जाए तो अभेद होते हुए भी जीव और ब्रह्म में भेद भी है क्योंकि ईश्वर विभु चित् है और जीव अणुचित् है। ईश्वर शासक है, जीव शास्य है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है। ईश्वर प्रेरक है, जीव प्रेर्य है। ईश्वर मायाधीश है, जीव मायाधीन है, ईश्वर सदा कृपालु है जबकि जीव सदा स्वार्थी है। ईश्वर सदा स्वामी है, जीव सदा भृत्य है। ईश्वर सर्वव्यापक है, जीव व्याप्य है। ईश्वर सृष्टा है जबकि जीव सृव्य है। ब्रह्म निगुर्णी है जबकि जीव का स्वरूप गुणमय है। ईश्वर सूर्य सम है जीव सूर्य की किरण सम है। इस प्रकार जीव और ब्रह्म अंश अंशी होते हुए भी भेदमय है। जीव और ईश्वर की तुलना नहीं की जा सकती।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' ग्रंथ में भी अनेक दोहों में हमें श्री मध्वाचार्य के द्वैतवादी सिद्धान्त के दर्शन होते हैं।

शक्तिमान की शक्तियाँ, अगनित यदपि बखान।
तिन महँ 'माया' जीव अरु 'परा' त्रिशक्ति प्रधान।(03) *भक्ति शतक*

अर्थात शक्तिमान भगवान की यद्यपि अनन्त शक्तियाँ हैं। किन्तु उनमें तीन शक्तियाँ प्रमुख रूप से प्रधान हैं एक जीव, एक माया और तीसरी परा शक्ति। ये समस्त शक्तियाँ भगवान की अनुचर हैं। सर्वोच्च तत्व तो श्री कृष्ण ही हैं। कुछ शक्तियाँ जड़ हैं और कुछ शक्तियाँ चेतन हैं। इन शक्तियों का आधार महाचेतन शक्ति भगवान ही हैं। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में भी हमें इस सिद्धान्त का समन्वय मिलता है–

जीव तटस्था शक्ति पर, माया कर अधिकार।
वस्तु तस्तु यह दास है, स्वामी नन्द कुमार।(04) *भक्ति शतक*

अर्थात जीव शक्ति भगवान की तटस्थ शक्ति है किंतु उस पर अनादिकाल से गुणमयी जड़ माया का अधिकार है। जबकि जीव का वास्तविक स्वरूप अपने अंशी एवं शरण्य, श्यामसुन्दर की दासता ही है। क्योंकि यह जीव शक्ति, स्वरूप शक्ति एवं जड़माया शक्ति दोनों के ही अन्तर्भुक्त नहीं है। जीव तो जीव शक्ति विशिष्ट श्री कृष्ण का अंश है।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' रचना के अनेक छन्दों में भी हमें द्वैतवादी सिद्धान्त का समन्वय मिलता है–

प्राण धन नन्दनन्दन घनश्याम।
तुम ही हो मम आत्मा श्याम।
तुम ही हो मम अंशी श्याम।
तुम ही हो मम स्वामी श्याम।
तुम ही सखा हमारे श्याम।
तुम ही मेरे सब कुछ श्याम।
तो सों अगनित नाते श्याम।
मैं तो भूला तो कहँ श्याम।
तुम जनि भूलों मो कहँ श्याम।
हौं चह बस तेरा सुख श्याम।
दे दो प्रेम कृपालुहुँ श्याम।

ब्रज रस माधुरी : भाग–02, पद 29

अर्थात जीव भगवान से विनय करते हुए कहता है कि हे प्रभु! आप ही मेरे हैं। आप मेरे अंशी हैं, मैं आपका दास हूँ। मेरे माता–पिता, सखा, सुत, पति आदि समस्त नाते आपसे ही हैं किन्तु आपकी माया ने ये संबंध मुझे भुला दिया है। आप तो सर्व समर्थ हैं आपने मुझे क्यों भुला दिया है ? मेरी तो बस यही कामना है कि मेरा सुख आप ही के सुख में हो तथा मुझे आप अपना दिव्य प्रेम दे दीजिए।

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' में भी हमें जीव, ब्रह्म एवं माया के द्वैतवादी समन्वयात्मक सिद्धान्त के दर्शन होते हैं–

आनन्द सिंधु हरि गोविंद राधे। मध्य रहे मत्स्य जीव प्यासा बता दे। (659)
ऐसे ही प्राणी मात्र गोविन्द राधे। ज्ञान के हेतु भी हैं व्यग्र बता दे। (660)
x x x x x x x x x x
प्राणों के प्राण अरु गोविंद राधे। जीवों के जीवन कृष्ण हैं बता दे। (665)
जीव तो सदा ते ही गोविंद राधे। आनन्ददास था है रहेगा बता दे। (668)

राधा गोविन्द गीत : भाग 01

अर्थात जीव ब्रह्म के मध्य ही निवास करता है किन्तु फिर भी वह प्यासा है, क्योंकि ब्रह्म के आनन्द को पाने में माया शक्ति बाधक है। जिस प्रकार मछली सदा ही जल से प्रेम करती है उसी प्रकार जीव का स्वभाव भी आनन्द सिंधु हरि से प्रेम करना है। जीव सदा ही परम ब्रह्म का दास है, भगवान कृष्ण जीवों की आत्मा की आत्मा है। इस सनातन सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता।

इसी प्रकार 'युगल रस' रचना के निम्न छन्द में द्वैतवादी दार्शनिक सिद्धान्त के समन्वय को जाना जा सकता है–

तुमहि श्याम इक मेरे, मेरे मेरे मेरे।
इक ते इक बढ़ि अगनित तेरे,
हैं विशुद्ध चित चेरे, मेरे मेरे मेरे।
हौं नहिं बनि सक कबहूँ तेरे
हैं अनन्त अघ मेरे, मेरे मेरे मेरे।
यद्यपि कहत रसिक जन तेरे
बनहु श्याम के चेरे, मेरे मेरे मेरे।
मन प्रपन्न हो तब ही तेरे,
तू 'कृपालु' जब हेरे, मेरे मेरे मेरे।

युगल रस : पद 24

अर्थात भक्त अपना दैन्य भाव प्रकट करते हुए श्याम सुन्दर से कह रहा है, हे श्याम! मेरा कहीं भी कोई भी नहीं है। एक मात्र तुम ही मेरे हो। तुम्हारे लिए तो एक

से बढ़कर विशुद्ध दास हैं, किंतु मैं पापात्मा होने के कारण कभी तुम्हारा नहीं बन सकता। तुम्हारे भक्तगण कहते हैं कि सब को ही श्री कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए किंतु मैं विषयों का दास हूँ अतः मुझे संतों की वाणी नहीं सुहाती। हे प्रभु! मुझे विश्वास है कि अपने साधन बल से कोई भी जीव तुम्हारा नहीं बन सकता। 'कृपालु' के शब्दों में जब तुम अपनी कृपा दृष्टि किसी पर करते हो तभी किसी का मन तुम्हारे शरणागत होता है।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' में संत कृपालु महाराज ने द्वैतवाद दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय किया है यथा–

भजो मन! निशि दिन नंद कुमार।
सकल जगत महँ सोइ एक है, सांचो मीत तिहार।
जे जग मीत मान दम्पति सुत, तिन स्वारथ को प्यार।
लिय द्वै मूठि सुदामहिं तन्दुल, दिय द्वै लोक, विचार।
कूबरि को सुन्दरि करि लखु किय, कमला सों व्यवहार।
कह 'कृपालु' कत चूकत नर तनु, मिलत न बारम्बार।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद 69

अर्थात अरे मन! श्याम सुन्दर का निरन्तर भजन कर। अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड में तेरा सच्चा मित्र एक मात्र वही है। संसार के जिन स्त्री, पति, पुत्र, मित्रादि को तू अपना मित्र समझता है, उनकी मित्रता तो एक मात्र स्वार्थ पर ही आधारित है। उधर देखा सुदामा के दो मुठ्ठी चावल लेकर श्यामसुन्दर ने दो लोक दे दिए, फिर भी यह दुख बना ही रहा कि रुकमणी ने तीसरा लोक देने में मेरा हाथ क्यों रोक दिया और पुनः उधर देख! कुबरी सरीखी स्त्री को सुन्दरी बनाकर उससे अपनी श्रीमती लक्ष्मी सरीखा व्यवहार किया। 'कृपालु' कहते हैं– अरे मन! यह सब जानकर भी तू क्यों चूक रहा है। यह मानव देह बार–बार नहीं मिलेगा।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ का निम्न छन्द भी द्वैतवादी दार्शनिक सिद्धान्त को समन्वित करता है। प्रस्तुत छन्द में संत कृपालु महाराज जीव और ब्रह्म में भेद मानते हुए जीव और ब्रह्म के मिलन की कामना भक्ति के माध्यम से कर रहे हैं। ईश्वर

की कृपा को भक्ति का आधार मानते हैं।

मेरे नन्द नन्दन मेरे नन्द नन्दन।
अपना बना ले मोहिं मेरे नन्दनन्दन।
निज सेवा दे मोहिं मेरे नन्दनन्दन।
तू ही मेरा मैं भी तेरा मेरे नन्दनन्दन।
तू ही माता पिता भ्राता मेरे नन्दनन्दन।
स्वामी सखा सुत पिय मेरे नन्दनन्दन।
तो पै तन-मन वारुँ मेरे नन्दनन्दन।
करुँ कोटि वन्दन मेरे नन्दनन्दन।
तुझ सा 'कृपालु' नहिं मेरे नन्दनन्दन।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद 23

अर्थात जीव ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु! आप मुझे अपना लीजिए, क्योंकि आप ही मेरे हैं, मेरे सारे संबंध केवल आपसे ही हैं, मैं नित्य आपकी वन्दना करता हूँ, आप जैसा कृपालु और कोई हो नहीं सकता। उपर्युक्त पद में द्वैतवादी दार्शनिक सिद्धान्त समन्वित रूप में है।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में द्वैतवादी सिद्धान्त का समन्वय दृष्टिगोचर है।

(घ) **श्री निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैतवाद सिद्धान्त का समन्वय** – संत कृपालु महाराज के साहित्य में जगदगुरु श्री निम्बार्काचार्य द्वारा प्रतिपादित द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त का भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है। श्री निम्बार्काचार्य का समय अद्यावधि अनिर्णीत है। निम्बार्क सम्प्रदाय में इनको सृष्टि के आदि में उत्पन्न माना जाता है, किंतु डॉ. भण्डारकर ने इनका समय 1162 ई. के आस-पास स्थिर किया है। कुछ विद्वान इस सम्प्रदाय को वैष्णव भक्ति का प्राचीनतम सम्प्रदाय मानते हैं। श्री निम्बार्क का सम्प्रदाय सनकादि सम्प्रदाय के अन्तर्गत है। इस सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त 'भेदाभेदवाद' या 'द्वैताद्वैतवाद' है। जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है

तथा अभिन्न भी है। जीव ब्रह्म का अंश है ब्रह्म अंशी है। जीव अणु, अल्पज्ञ है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। विष्णु के अवतार रूप कृष्ण ही उपास्य हैं। राधा–कृष्ण की युगलोपासना का विधान इस सम्प्रदाय में है। ब्रजमण्डल में इसका प्रचार है और इसके अन्तर्गत श्री कृष्ण की अनेक लीलाओं के द्वारा भक्ति भाव की अभिव्यक्ति की जाती है। निम्बार्क सम्प्रदाय के अनेक कवियों ने ब्रजभाषा में सुन्दर पद रचना की है। स्वामी हरिदास का सखी सम्प्रदाय इसी की शाखा है।

संत कृपालु महाराज का सम्पूर्ण साहित्य श्री राधा–कृष्ण की युगलोपासना पर ही आधारित है तथा जीव एवं कृष्ण का संबंध अंश अंशी का संबंध मानते हुए दास्य एवं सेवक भाव से परिपूर्ण उनका साहित्य द्वैताद्वैत दर्शन को भी अपने में समन्वित करता है। यथा 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के अनेक पदों को देखा जा सकता है जिनमें राधा–कृष्ण की युगलोपासना का उपदेश निहित है तथा राधा–कृष्ण की युगल सरस लीलाओं की झाँकी प्रस्तुत की गई है। राधा–कृष्ण का सुन्दर रूप भक्तों का मन आकर्षित करता है।

देखु सखि, युगल नवल सरकार।
पीत वरन उत नागरि ता पर, नीलाम्बर बलिहार।
नील वरन इत नागर ता पर, पीताम्बर रिझवार।
उत अति सरल सुथायन मणेहिनि, मोहति नन्द कुमार।
इत अति चपल सुभायन मोहन, मोहत भानु दुलार।
लखि जोरी 'कृपालु' बरजोरी, शंभु समाधि बिसार।

प्रेम रस मदिरा, युगल माधुरी, पद 05

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि एक सखि दूसरी सखि से कहती है कि श्यामा–श्याम की मनोहर झाँकी देख। उधर तो पीले रंग की वृषभानुनन्दिनी के ऊपर नीले रंग का वस्त्र शोभित हो रहा है और इधर नीले रंग के श्यामसुन्दर के ऊपर पीले रंग का वस्त्र अपनी छटा दिखा रहा है। उधर तो श्री किशोरी जी अपने अत्यन्त सरल स्वभाव से श्याम सुन्दर को मोहित कर रही हैं और इधर श्यामसुन्दर अपने

अत्यन्त चंचल स्वभाव से श्री किशोरी जी को मोहित कर रहे हैं। 'कृपालु' कहते हैं कि इस मनोहर युगल जोड़ी को देखकर बरबस भगवान शंकर अपनी ब्रह्म समाधि भूल जाते हैं।

इसी प्रकार 'युगल रस' रचना के निम्न दोहे में भी हमें द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्तों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है–

मम ठाकुर नन्दकुमार, मम ठकुरानी सुकुमार।
मम दोऊ प्राणाधार, जय जयति युगल सरकार।
बस नन्दगाम रिझवार, बस बरसानो सुकुमार।
वृन्दावन करत विहार, जय जयति युगल सरकार।
नीलो तनु नन्दकुमार, पीलो तनु भानुदुलार।
दोउ लीला अपरम्पार, जय जयति युगल सरकार।
दोउ छवि पर छवि बलिहार, दोउ निज मन मोहनहार
दोउ तनु बह ब्रजरस धार, दोउ मम 'कृपालु' सरकार।

युगल रस : पद सं. 02

अर्थात भक्त कहता है– मेरे आराध्य नन्दनन्दन श्री कृष्ण हैं। मेरी आराध्या सुकुमारी राधा हैं। दोनों ही मेरे प्राणों के अवलम्ब हैं। युगल सरकार की सदा ही जय हो। श्री कृष्ण नन्द ग्राम में निवास करते हैं। श्री राधा ने बरसाना धाम को अपना वासस्थल बनाया है। वृन्दावन दोनों की विहार स्थली है। युगल सरकार सदा जय को प्राप्त हों। नन्दनन्दन का दिव्य वपु नील वर्ण का है। भानुनन्दिनी का चिन्मय तन पीत वर्ण का है। दोनों का ही शरीर चित् एवं सुखघन रूप है। दोनों के शरीर से ब्रज रस की धारा प्रवाहित होती रहती है। कृपालु कहते हैं– दोनों ही मेरे इष्ट हैं।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त के अनुसार राधा–कृष्ण की युगलोपासना का रूप दृष्टिगोचर होता है–

श्यामा बनी श्याम अरु श्याम बने श्यामा। श्यामा बनि श्याम रुठे हँसी ब्रज बामा।(527)
निकले सवारी जब संग श्याम श्यामा। बलिहारी बलिहारी कहें ब्रज बामा। (528)

गलबाहीं दै के जब चले श्याम श्यामा। जुग जुग जिए जोरी कहें ब्रजबामा। (529)
घनश्याम तुम घनश्याम कह श्यामा। घन विच दामिनि श्यामा कह बामा।(531)
श्यामा रूप प्यासे श्याम श्याम रूप श्यामा। वेद तो बतावे दोउ सदा पूर्णकामा।(534)
श्यामा मुख देखें श्याम श्याम मुख श्यामा। श्यामा श्याम मुख देखें सब ब्रज बामा।(536)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि राधा–कृष्ण एक दूसरे का ही अभिन्न रूप हैं। लीला के कारण दो रूप बन गए हैं। लीला करते हुए कृष्ण, राधा बन जाते हैं एवं राधा कृष्ण बन जाती हैं। जब राधा–कृष्ण दोनों की सवारी साथ–साथ चलती है तो सभी ब्रज बामाएँ जयघोष करती हुई बलिहार जाती हैं। राधा–कृष्ण की सुन्दर युगल जोरी को निहार कर ब्रजबामाएँ दोनों को युग–युग जीते रहने का आशीर्वाद देती हैं। राधा–कृष्ण का संबंध ठीक उसी प्रकार है जो संबंध बादल के बीच चमकने वाली दामिनी के मध्य है अर्थात एकत्व का। कृष्ण सदा राधा के सौन्दर्य के प्यासे रहते हैं तथा राधा सदा कृष्ण के माधुर्य की प्यासी रहती हैं। राधा सदा कृष्ण का मुख निहारती रहती है और श्री कृष्ण सदा राधा का रूप निहारते रहते हैं तथा ब्रज बामाएँ राधा–कृष्ण दोनों के रूप को निहारती रहती हैं।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ के निम्न छन्द को देखा जा सकता है जिसमें जीव एवं ईश्वर के संबंध को द्वैताद्वैत सिद्धान्तानुसार दर्शाया गया है–

तुम ही मम नन्दकुमार, तुम स्वामि सखा सुत यार।
तुम ही पतितन रखवार, हौं शरण शरण सरकार।
तुम मम गति नन्दकुमार, तुम ही मम मति रिझवार।
तुम ही अवलंब हमार, हौं शरण शरण सरकार।
तुम ही हो मम भरतार, तुम ही हो हितु हमार।
तुम ही हो प्राणाधार, हौं शरण शरण सरकार।
तुम सों विधि हरि हर हार, हौं शरण 'कृपालु' तिहार।

ब्रज रस माधुरी : भाग 02, पद सं. 22

अर्थात संत कृपालु महाराज लिखते हैं कि हे श्री कृष्ण! तुम ही मेरे सर्वस्व हो। मेरे समस्त नाते तुम्हारे साथ ही हैं। मेरी गति, मति, अवलम्ब एक मात्र तुम ही हो। मेरे जैसे पतित के शरण्य आप ही हैं। तुम मेरे प्राणाधार हो। मैं ही क्या विधि, हरि हर भी तुम्हारे दास हैं। हे श्री कृष्ण! मैं तुम्हारी शरण में हूँ।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' के अनेक दोहों में भी हमें द्वैताद्वैती दार्शनिक सिद्धान्त के मतों का समन्वय दिखलाई देता है–

अद्वितीय इक तत्व है, राधा तत्व प्रधान।
याको दूजो रूप है, स्वयं कृष्ण भगवान। (01) *भक्ति शतक*

इस समस्त ब्रह्माण्ड में एक राधा तत्व ही प्रधान है और इनका ही दूसरा रूप श्री कृष्ण है। अर्थात संत कृपालु महाराज, राधा शक्ति को सर्व प्रधान मानते हुए कृष्ण के साथ उनका ऐक्य करते हुए दोनों की युगलोपासना का संदेश देते हैं।

'जिवु', माया, दुइ शक्ति हैं, शक्तिमान भगवान।
शक्तिहिं भेदअभेद भी, शक्तिमान ते जान। (42) *भक्ति शतक*

अर्थात सर्वशक्तिमान तो स्वयं भगवान ही हैं और जीव शक्ति एवं माया शक्ति उनकी अंश है और इस जीव, ब्रह्म, माया शक्तियों में भेद भी है और अभेद भी है। अतः भगवान से जीव का भेदाभेद संबंध है।

संत कृपालु महाराज द्वारा रचित 'राधा गोविन्द गीत' में तो श्री निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैती दार्शनिक सिद्धान्त का पूर्ण समन्वय मिलता है–

कोई कहे दोनों दो हैं गोविंद राधे। कोइ कहे दोनों एक सच क्या बता दे। (6458)

x x x x x x x x x x

शक्तिमान श्री कृष्ण गोविंद राधे। पराशक्ति आश्रय बिनु रहे ना बता दे। (6476)

राधा गोविन्द गीत : भाग–02, श्री राधा–कृष्ण

उपर्युक्त पंक्तियों में संत कृपालु महाराज ने द्वैताद्वैती सिद्धान्तानुसार राधा–कृष्ण को एक माना है तथा इस भ्रम का निवारण किया है कि राधा–कृष्ण भिन्न हैं। वास्तव में दोनों में भेद दिखते हुए भी एकत्व है, अर्थात अभेद है। क्यों ? इसका

कारण बताते हुए वे लिखते हैं कि राधा परा शक्ति हैं और शक्तिमान कभी भी अपनी शक्ति से अलग नहीं रह सकता। अतः राधा एवं कृष्ण में भेद होते हुए भी अभेद है।

इसी प्रकार 'युगल माधुरी' ग्रंथ में भी संत कृपालु महाराज ने भेदाभेदी दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय किया है–

राधे गोविन्द गोविन्द राधे राधे राधे राधे, राधे गोविंद गोविंद राधे।
कृष्ण बिनु राधे आधे राधे बिनु कृष्ण आधे, राधे गोविंद गोविंद राधे।
x x x x x x x x x
कृष्ण प्राण सम, राधे राधे प्राण सम कृष्ण,राधे गोविन्द गोविन्द राधे।
दोउ लखें दोउ इकटक भूलें सुधि दोउ, राधे गोविन्द गोविन्द राधे।

युगल माधुरी : पद सं. 50

उक्त पद में संत कृपालु जी महाराज लिखते हैं कि कृष्ण राधा के बिना अधूरे हैं और राधा कृष्ण के बिना अधूरी हैं। कृष्ण का ही रूप राधा हैं और राधा का ही रूप कृष्ण हैं। कृष्ण राधा का भजन करते हैं और राधा निरन्तर कृष्ण का भजन करती हैं। जो कृष्ण है वही राधा है और जो राधा है वही कृष्ण हैं। दोनों एक दूसरे को एकटक निहारते हैं और दोनों एक दूसरे के प्रेम में बेसुध हो जाते हैं। अर्थात दोनों में द्वैत होते हुए भी अद्वैत है।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ में तो प्रारम्भ में ही संत कृपालु महाराज ने राधा एवं कृष्ण के अभेदी संबंध को स्पष्ट किया–

गौर गागरिहिँ श्याम रस, श्याम गागरिहिँ गौर।
गागरिहूँ रस की बनी, अस दोउ रस सिर मौर।
श्री गुरु चरण शरण गहु, भजु श्री युगल किशोर।
तव कृपालु हरि कृपा ते, मिलइ प्रेम चित चोर।

युगल शतक : प्राक्कथन

अर्थात गौरवर्णीय राधा की गागर में श्याम रस है और श्यामवर्णीय कृष्ण की गागर में गौर रस है। दोनों, राधा–कृष्ण रस के सागर हैं। जब जीव गुरु की शरण

में जाकर दोनों की युगल उपासना करता है तब कृपालु महाराज कहते हैं कि हरि की कृपा से जीव अपने इष्ट से मिलता है। इस ग्रंथ का उद्देश्य ही राधा एवं कृष्ण का समन्वय करते हुए दोनों के एकत्व को सिद्ध करना है। इस ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने 50 पद श्री कृष्ण एवं 50 पद श्री राधा जी की उपासना हेतु रचे हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के समस्त प्रवचन साहित्य में हमको उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्त का समन्वय मिलता है। उन्होंने द्वैताद्वैती सिद्धान्त को सुन्दर रूप में समझाते हुए उसका समन्वय अन्य सिद्धान्तों से किया है।

(घ) **श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का समन्वय –** संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमको श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत दार्शनिक सिद्धान्त का भी समन्वय मिलता है। श्री वल्लभाचार्य (1449) का जन्म रायपुर जिले के चम्पारन नामक स्थान में हुआ। इनके माता–पिता तैलंग ब्राह्मण थे। वल्लभाचार्य का समस्त जीवन उत्तर भारत (काशी, प्रयाग और ब्रजमण्डल) में व्यतीत हुआ। ये अपने समय के तेजस्वी, प्रतिभा सम्पन्न महात्मा थे। सम्राट अकबर भी इनकी प्रतिभा से अभिभूत थे। वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय आज स्वतंत्र सम्प्रदाय के रूप में विख्यात है, किन्तु मूलतः इसका संबंध 'विष्णु स्वामी' सम्प्रदाय से ही स्थिर किया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। ब्रह्म माया से सर्वथा अलिप्त अर्थात शुद्ध है। जिस प्रकार स्वर्ण अनेक रूपों में परिवर्तित होने पर भी शुद्ध स्वर्ण रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी शुद्ध ही है। ब्रह्म अपनी संघिनी शक्ति द्वारा सत् का संवित् शक्ति द्वारा चित् का और ह्लादिनी शक्ति द्वारा आनन्द का आविर्भाव करता है। जीव सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव अणु है। यह तीन प्रकार का है– शुद्ध जीव, संसारी जीव और मुक्त जीव। जड़ जगत न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट, वरन इसका आविर्भाव और तिरोभाव–मात्र होता है। भगवत्प्राप्ति का साधन भक्ति है। भगवान के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति का सम्बल मानना चाहिए। इसलिए इनके मत को 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है। भक्ति का विवेचन करते हुए वल्लभाचार्य ने मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति का विधान किया। साधन सापेक्ष

भक्ति को मर्यादा भक्ति के अन्तर्गत रखते हुए निम्न स्थान दिया और भगवान के अनुग्रह मात्र पर निर्भर भक्ति को साधन निरपेक्ष पुष्टि भक्ति कहकर श्रेष्ठ बताया। इस पुष्टि भक्ति को मानने वाले भक्त 'पुष्टि मार्गी' कहलाते हैं।

शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार भगवान को जब रमण करने की इच्छा होती है तब वह अपने आनन्द आदि गुणों के अंशों को तिरोहित कर स्वयं जीव रूप ग्रहण करता है। इस व्यापार में केवल भगवान की इच्छा ही कारण है। माया का इसमें किसी प्रकार का संबंध नहीं है। आविर्भूत जीव नित्य होता है। सच्चिदानन्द भगवान के अविकृत सत् अंश से जड़ का निर्गमन होता है तथा विकृत चित् अंश से जीव का आविर्भाव होता है। अविकृत परिणामवाद को मानने के कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अविकृत भाव से जगत रूप में परिणत हो जाता है। वल्लभाचार्य ने जगत और संसार में भी भेद निरुपण किया है।

संत कृपालु महाराज का साहित्य श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैती सिद्धान्त को भी समन्वित करता है। शुद्धाद्वैत के दार्शनिक सिद्धान्त को उनके 'भक्तिशतक' ग्रंथ के अनेक दोहों में देख सकते हैं–

प्रथम साधना भक्ति करु, तव मन निर्मल होय।
मिलइ विशुद्धा भक्ति तव, गुरु अनुकंपा तोय।(9) *भक्ति शतक*

उपर्युक्त दोहे में संत कृपालु महाराज मन को निर्मल करने के लिए पहले साधना भक्ति की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हैं क्योंकि साधना भक्ति से मन निर्मल होता है तत्पश्चात विशुद्धभक्ति प्राप्त होती है, जब गुरु की कृपा हो जाती है। यही विशुद्धभक्ति दिव्य आनन्द का अनुभव करवाती है। इस दोहे में शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का समन्वय है। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में भी श्री वल्लभाचार्य के पुष्टीमार्गी शुद्धाद्वैत सिद्धान्त की झलक मिलती है।

सर्वशक्ति सम्पन्न हो, शक्ति विकास न होय।
सत चित आनन्द रूप जो, ब्रह्म कहावे सोय। (22)

कृष्ण कृपा बिनु जाय नहिं, माया अति बलवान।

शरणागत पर हो कृपा, यह गीता को ज्ञान।(29) *भक्ति शतक*

उपर्युक्त दोहों में संत कृपालु महाराज स्पष्ट करते हैं कि सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान सच्चिदानन्द स्वरूप हैं किन्तु जब वह सत्ता स्थापना को छोड़कर किसी और शक्ति का विकास न करे तब वह अद्वैतियों का ब्रह्म बन जाता है और इस जीव के ऊपर जड़ माया शक्ति का आधिपत्य हो गया है जब यह जीव अनन्य निष्काम भाव से कृष्ण भगवान के शरणागत हो जाता है तब कृष्ण कृपा से विशुद्ध भक्ति मिलती है तथा माया के आधिपत्य से जीव मुक्त होता है।

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' रचना में भी हमें शुद्धाद्वैती सिद्धान्त के समन्वित दर्शन होते हैं–

गोविन्द आनन्द गोविंद राधे। पर्यायवाची हैं वेद बता दे।(685)

x x x x x x x x x

जीव का चित्त यदि गोविंद राधे। भक्ति ते विमल हो तो बाधा हटा दे। (707)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है और जीव भी उसी दिव्य आनन्द का अंश है। तथा आनन्द स्वरूप ब्रह्म के मध्य ही जीव का निवास है किन्तु माया विजातीय तत्व है तथा उसने जीव तो मायिक जड़ अंधकार से घेर रखा है। यदि जीव अपना अन्तःकरण शुद्ध कर ले तब माया के हटते ही जीव विशुद्ध रूप से अपने विशुद्ध अंशी में मिल जाएगा तथा उसे सदा-सदा को दिव्य आनन्द, प्रेम, शांति की प्राप्ति हो जाएगी, जो उसका परम चरम लक्ष्य है। इसी प्रकार 'सुनहु साधक प्यारे' पद में भी हमें शुद्धाद्वैत दार्शनिक सिद्धान्त, के दर्शन होते हैं–

पूर्ण हो जब शुद्ध कारण तुम्हारे प्यारे।
हरि कृपा ते होय तब मन दिव्य चिन्मय प्यारे।
तब मिलेगी श्याम सेवा, लक्ष्य अन्तिम प्यारे।
बेर जनि करु देह नश्वर, जाने कब छिन जाय प्यारे।
दो कृपालुहिँ प्रेम भिक्षा, प्रेम अम्बुधि प्यारे।

युगल माधुरी : पद सं. 62

जब जीव पर हरि की कृपा हो तब उसका मन दिव्य हो जाता है और फिर उसे अपने स्वामी श्यामसुन्दर की सेवा मिलेगी जो कि उसका अन्तिम लक्ष्य है। अतः कृपालु कहते हैं कि हे जीव! तुम तनिक भी देर मत लगाओ क्योंकि ये मानव देह नश्वर है जाने कब ये देह छिन्न जाए और फिर न जाने कब ये सुअवसर प्राप्त हो। अतः भगवान से अनुनय विनय करते रहो कि वे अपना दिव्य प्रेम दे दें। उनकी कृपा के बिना वो दिव्य प्रेम मिल भी नहीं सकता।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी दैन्य भाव से संत कृपालु महाराज ने ईश्वरीय अनुग्रह की कामना की है। क्योंकि इसके बिना दिव्य आनन्द की प्राप्ति हो नहीं सकती। ईश्वर का अनुग्रह ही भक्ति का आधार है। भक्त राधा–रानी से अपने अज्ञान का बखान करते हुए उनके अनुग्रह की भीख माँगता है तथा अपने दासत्व धर्म को स्वीकार करने की बुद्धि प्रदान करने की याचना करता है तथा विशुद्ध अमला भक्ति की कामना करता है–

'तू भी मेरी' ऐसी भक्ति किया आठु यामा।'तू ही मेरी' ऐसी भक्ति नाहिं किया श्यामा। (187)
जगत की आसक्ति है अनादि श्यामा। वर्तमान में भी यह बढ़े आठु यामा। (189)
शास्त्र वेद पढ़ा सुना गुना नाहिं श्यामा। जानि जानि अपराध करुँ आठु यामा। (193)
कृपा करो कृपा करो कृपा करो श्यामा। बनूँ दासी दासी दासी दासी दासी बामा।(210)
जानना न चाहूँ वेद शास्त्र ज्ञान श्यामा। तू ही मेरी यह ज्ञान रहे आठु यामा।(215)

श्यामा श्याम गी

अर्थात भक्त अपनी शरण्या श्री राधा रानी से कृपा की याचना कर रहा है। क्योंकि बिना ईश्वरीय कृपा के जीव पर से जड़ माया का विकार जाएगा नहीं और जब तक जीव, हरि अनुग्रह से स्वयं के मन को विमल नहीं बना लेता तब तक उसे दिव्य प्रेम की प्राप्ति भी नहीं हो सकती।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के भी अनेक पदों में संत कृपालु महाराज ने हरि अनुग्रह को ही कल्याण का मार्ग सिद्ध किया है। यही हरि अनुग्रह शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रधान लक्षण है–

हमें तो, एक तिहारी आस।

काहू के काहू को बल हरि, हमहिँ तुमहिँ विश्वास।

कोउ कर योग, यज्ञ दानादिक, कोउ कर जप उपवास।

कोउ कर चारिधाम तीरथ अरु, कोउ कर काशीवास।

कोउ कर आस स्वर्ग अपवर्गहिँ, कोउ बैकुण्ठ विलास।

हम 'कृपालु' गोपाल! तिहारिहिँ, करत आस बनि दास।

प्रेम रस मदिरा : दैन्य माधुरी , पद–102

अर्थात भक्त अपने स्वामी से विनय करता है कि हे श्याम सुन्दर! हमें तो एक मात्र, तुम्हारी ही आशा है। किसी को किसी के बल पर विश्वास है। कोई योग, यज्ञ, दानादिक करता है, कोई जप उपवास आदि करता है कोई चारों धाम की यात्रा करता है, कोई काशी में वास करता है, कोई स्वर्ग एवं मोक्ष की आशा करता है, कोई बैकुण्ठ के ऐश्वर्य की आशा करता है किन्तु कृपालु कहते हैं कि हम तो केवल तुम्हारे ही दास बनकर तुम्हारी ही आशा करते हैं।

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रन्थ के भी निम्न पद में उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्त की झलक देख सकते हैं–

तू ही मेरा तू ही मेरा कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

तू ही मम स्वामी सखा सुत पति कान्हा,

तू ही मम माता पिता कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

तेरी श्रुति कह तू ही मेरी गति कान्हा,

तोहि तजि जाऊँ कित कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

तो सों ही तो है मम कान्हा,

सब ही नातो कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

सुनत 'कृपालु' न मम मन कान्हा,

तुमहि सुनहु मम कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

युगल रस, पद सं.–18

अर्थात भक्त श्री कृष्ण को ही अपना मानता है, भक्त श्री कृष्ण से कहता है कि मेरे समस्त नाते आपसे ही हैं किंतु यह सब जानते हुए भी मन नहीं सुनता, मन संसार की ओर भागता है। अतः कृपालु महाराज कहते हैं कि हे श्यामसुन्दर!, कन्हैया मेरा मन तो नहीं सुनता किन्तु आप तो सुन सकते हैं। ऐसी कृपा कीजिए की मेरा मन आपकी ओर सदा उन्मुख हो जाए।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर है। उनकी इसी समन्वयकारी विशेषता एवं योग्यता के आधार पर ही उन्हें काशी विद्‌वत्परिषत् द्वारा समन्वाचार्य की उपाधि से विभूषित किया गया। उनके समन्वयात्मक दृष्टिकोण को उन्होंने 'राधा गोविन्द गीत' के निम्न दोहों में स्पष्ट किया है–

माध्वाचार्य लक्ष्मी भक्त गोविंद राधे। माघवेन्द्रपुरी राधा भक्त बता दे। (6447)
निम्बार्क की राधा गोविंद राधे। शक्ति ह्लादिनी हैं भेदाभेद बता दे।(6448)
वल्लभ की राधा गोविंद राधे। शक्ति ब्रह्म याते अभेद बता दे। (6449)
चैतन्य की राधा गोविंद राधे। कृष्ण ते पूर्ण भेदाभेद बता दे। (6450)
मेरी तो राधा ऐसी गोविन्द राधे। ब्रह्म सेव्या ब्रह्म सेविका भी बता दे।(6451)
भाव यह राधा कृष्ण गोविंद राधे। दोनों हैं सेव्य दोनों सेवक बता दे।(6452)

राधा गोविन्द गीत

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वय है।

अध्यात्म एवं भौतिक विचारधाराओं का समन्वय–

संत कृपालु महाराज के अद्‌भुत समन्वयात्मक साहित्य सिंधु में हमें अध्यात्म एवं भौतिक विरोधाभासी विचारधारा रूपी लहरों का भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने गद्य–पद्य साहित्य एवं प्रवचन साहित्य में अनेक स्थलों पर जीव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अध्यात्म एवं भौतिक विचारधारा का समन्वय प्रस्तुत किया है। इसी सम्प्रत्यय पर आधारित उनकी प्रवचन शृंखला 'मैं कौन मेरा कौन'

अध्यात्म एवं भौतिक विचारधारों को समन्वित करते हुए जीव के अन्तिम लक्ष्य, आनन्द प्राप्ति को स्पष्ट करती है। उक्त प्रवचन श्रृंखला टेलीविजन के कई चैनलों पर प्रसारित की जा रही है।

संत कृपालु महाराज के मूल सैद्धान्तिक ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' में उन्होंने आत्म स्वरूप अध्याय में जीव के स्वरूप को दो रूपों में स्पष्ट किया है कि प्रत्येक जीव अपने आप में दो तत्वों का समन्वय है। एक शरीर एवं एक आत्मा। शरीर पंच भौतिक तत्वों से निर्मित है तथा जड़ माया, जड़ प्रकृति से संबंद्ध है। संसार के समस्त भौतिक सुख शरीर के सुख एवं उपयोग के लिए हैं किन्तु प्रत्येक जीव का वास्तविक मूल स्वरूप आत्मा है जो कि सच्चिदानन्द परम ब्रह्म का सनातन अंश है। आत्मा को दैहिक सुखों से आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। किन्तु शरीर संचालन के लिए भौतिक पदार्थों की आवश्यकता भी परमावश्यक है। अतः आत्मा के सुख के लिए अध्यात्म एवं शरीर के सुख के लिए भौतिक जगत अनिवार्य है जैसा कि उन्होंने 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में लिखा है एवं स्पष्ट किया है कि वास्तव में जीव का स्वरूप क्या है ?–

"कुछ भोले प्रत्यक्षवादी कहते हैं कि इन्द्रियादि की भाँति आत्मा भी देह का परिणाम है। पृथ्वी, जल, तेज वायु बस इन्हीं चार तत्वों से देह एवं मैं बना है। अर्थ एवं काम दो पुरुषार्थ हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण ही प्रमाण है। इन प्रत्यक्षवादियों में भी कोई देह को कोई चक्षुरादि को, कोई प्राण को आत्मा मानते हैं। सांसारिक विषय सुख को ही स्वर्ग एवं वियोगादि दुःख को ही नरकादि मानते हैं। उनका सिद्धान्त है कि–

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। – *चार्वाक*

अर्थात जब तक जियें, सुख से जियें, कर्जा करके घी पीयें।

'भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। – *चार्वाक*

मरने के बाद शरीर के साथ 'मैं' समाप्त हो जाएगा।

सावधान होकर सुनिए। मैं स्थूल हूँ। मैं कृश हूँ, आदि व्यवहार ज्ञान से देखकर यह कहना कि मैं देह हूँ भोलापन है क्योंकि बाल्यादि अवस्था के परिवर्तन होने पर भी मैं वही हूँ, यह ज्ञान सदा रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। यदि मैं बालक हूँ तो युवावस्था में यह ज्ञान रहना चाहिए कि जो मैं बालक था, वही मैं युवा हूँ इत्यादि।

तात्पर्य यह कि 'मैं' प्राकृत पदार्थ नहीं। शेष अन्तःकरण एवं इन्द्रियादि, सब प्राकृत हैं। 'मैं' आप्त वाक्यों के अनुसार–

चिन्मात्रं श्री हरे रंशं सूक्ष्म मक्षरमच्ययम्।
कृष्णा धीनामिति प्राहुर्जीवं ज्ञानगुणाश्रयम्। (वेद)

अर्थात मैं ईश्वर का अंश हूँ, जिसे गीता ने भी कहा है–

"ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः।
ईश्वर अंश जीव अविनाशी। (रामायण)

अब यह सिद्ध हो गया कि मैं इन्द्रिय, मन आदि नहीं अपितु ईश्वरीय अनादिकालीन नित्य अंश हूँ। अतएव हमारा सुख ईश्वरीय होगा।"

प्रेम रस सिद्धान्त : आत्मा का स्वरूप, पृ.सं.–49–52

अर्थात जीव का वास्तविक स्वरूप तो दिव्य आत्मिक रूप है अतः उसका सुख तो अध्यात्म से ही होगा तथा देह जड़ मायिक जगत का अंश है अतः उसका संचालन भौतिक पदार्थों से होगा।

उक्त दोनों विचारधारों के समन्वय को उन्होंने अपनी कई रचनाओं में व्यक्त किया है 'राधा गोविन्द गीत' में उन्होंने जीव एवं आत्मा के अध्यात्म एवं भौतिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

हम हैं दो कौन गोविंद राधे। कौन दो हमारे हैं यह भी बता दे। (793)
'हम' एक जीव भी हैं गोविन्द राधे। 'हम' एक देह भी हैं तत्व बता दे। (794)
x x x x x x x x x x
ज्ञान इन्द्रिय विषय गोविन्द राधे। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध बता दे। (817)
जीव दास हरि का गोविन्द राधे। देह दास जीव का है तत्व बता दे।(821)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज प्रत्येक जीव को दो तत्वों का मिश्रण मानते हैं तथा प्रत्येक का इष्ट पदार्थ भिन्न मानते हैं। जीव अंश, परमात्मा का चिन्मय सनातन अंश है अतः उसका लक्ष्य अपने अंशी से मिलना है तथा देह तत्व मायिक और भौतिक है उसका उपजीव्य लक्ष्य समस्त भौतिक संसार है।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के अनेक पदों में संत कृपालु महाराज ने भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्वों का समन्वय प्रस्तुत किया है।

सुनो मन एक काम की बात।
कोउ कह 'श्याम भजन बिनु कैसे हुँ, सेहुँ, काम न कबहूँ जात।
कोउ कह काम तजे बिनु कैसे हुँ, श्याम न पाइ सकात।
इन दोउन भोरेन बतियन सुनि, मोहिँ अचरज दरसात।
हौं कह करु यह काम समर्पित, श्याम चरण जलजात।
तब 'कृपालु' इक काम इहै रह, कब मिलिहहिँ बलभ्रात।।(118)

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी

अर्थात अरे मन! एक काम की बात सुन। कोई कहता है कि श्यामसुन्दर के भजन के बिना इच्छाएँ नहीं जा सकती। कोई कहता है इच्छाओं को छोड़े बिना श्यामसुन्दर का भजन नहीं हो सकता। हमारे दृष्टिकोंण से ये दोनों ही भोले हैं। तथ्य यह है कि अपनी इच्छाओं को श्याम सुन्दर के चरणों में समर्पित कर दो। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि तब वही इच्छा इस रूप में बदलती जायेगी कि श्याम सुन्दर कब मिलेंगे। इस प्रकार इच्छाओं का नाश एवं श्याम सुन्दर का भजन साथ-साथ होता जायेगा। सांसारिक भौतिक जगत को छोड़ने से अध्यात्म का लक्ष्य नहीं मिलेगा अपितु अध्यात्म के लक्ष्य में भौतिक इच्छाओं को जोड़ देने से दोनों लक्ष्य प्राप्त हो जाएंगे। इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने अपने प्रवचन साहित्य में भी अध्यात्म और भौतिक तत्वों का समन्वय किया है। उनके मत में भौतिक जगत में रहते हुए भी तथा भौतिक पदार्थों का उपयोग करते हुए भी आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। मन से की हुई भक्ति उस सनातन तत्व की प्राप्ति करवा सकती है। शरीर के पालन पोषण हेतु भौतिक जगत की नितान्त आवश्यकता है व आत्मा के पोषण एवं संवर्धन के लिए भक्ति आवश्यक है जो मन से होती है। अतः अध्यात्म एवं भौतिकता विरोधाभासी नहीं अपितु समन्वयात्मक तत्व हैं।

निष्कर्ष –

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का प्रस्तुत प्रयोजन निश्चित रूप से काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार सामाजिकी के पक्ष में है। प्रस्तुत प्रयोजन बुद्धि के

विकास एवं ज्ञान के प्रकाश के संदर्भ में लोकहित पर ही आधारित सिद्ध होता है। पाठक वर्ग उक्त साहित्य के अध्ययन से विभिन्न विरोधाभासी तत्वों में समन्वय को जान पाएगा एवं समष्टि में व्यष्टि एवं व्यष्टि में समष्टि का ज्ञान प्राप्त कर स्वयं का विकास कर सकेगा।

5.1.2 विशुद्ध भक्ति तत्व का निरुपण

संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन की प्रयोजन शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है– विशुद्ध भक्ति तत्व का प्रचार करना। यह पूर्व में उल्लेखित है कि संत कृपालु महाराज को काशी विद्वत्परिषत् द्वारा सन् 1957 में मूल जगद्गुरूत्तम की उपाधि के साथ भक्तियोग रसावतार की उपाधि से विभूषित किया गया है। संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य भक्ति की पीयूष धारा से अभिसिंचित है। जैसा कि पूर्व में उल्लेखित है कि उन्होंने भगवत्प्राप्ति के मार्ग निरुपण में भक्ति मार्ग को सबसे सरलतम मार्ग घोषित किया है। काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार उनके साहित्य लेखन का प्रस्तुत प्रयोजन धर्म, यश, कीर्ति, बौद्धिक विकास, उपदेश प्रवृत्ति के साथ मुख्य रूप से आनन्द प्राप्ति एवं लोक मंगल के उद्देश्य पर आधारित है। जैसा कि संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा के आदि आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में–

'धमर्स्यं यशस्य मामुष्यं बुद्धि विवर्धनम्।
लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद् भविष्यति। *नाट्यशास्त्र : 1.113–15*

कहकर धर्म, यश एवं बुद्धि की प्राप्ति के साथ लोक में उपदेश प्रवृत्ति को साहित्य का प्रयोजन सिद्ध किया है। इसी प्रकार आचार्य वामन ने 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' ग्रंथ में–

'काव्य सद्दृष्टा दृष्टार्थ प्रीति कीर्ति हेतु त्वात्' *का.सू. ग्रंथ : 1/3*

कहकर स्वनिष्ठ एवं सहृदयनिष्ठ आनन्द प्राप्ति के प्रयोजन को प्रत्यक्ष एवं मृत्यु उपरान्त काव्य के द्वारा लोक में अमर कीर्ति को अप्रत्यक्ष प्रयोजन माना है। इसी प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन ने 'धवन्यालोक' में–

'तेन ब्रूनः सहृदय मनः प्रीतये तत्सव्रूपम्'। *ध्वन्यालोक : 1–16*

कहकर विगलित वेद्यान्तर आनन्द को सकल प्रयोजनों में श्रेष्ठ माना है। इसी प्रकार आधुनिककालीन राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' रचना में

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए। *भारत भारती*

कहकर मनोरंजन के साथ–साथ मर्म प्रदान उपदेश प्रवृत्ति को काव्य का प्रयोजन माना है।

इसी प्रकार छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने श्रेय एवं प्रेय के सामंजस्य को काव्य का प्रयोजन माना है।

उपर्युक्त सभी आचार्यों के काव्यशास्त्र मतानुसार संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का प्रस्तुत प्रयोजन विशुद्ध भक्ति तत्व का निरुपण कर सहृदय पाठकों को भक्ति रस से सराबोर करते हुए भक्ति के वास्तविक स्वरुप, भक्ति की विशेषताओं एवं लक्षणों, भक्ति के प्राप्तव्य एवं भक्ति की सनातन अक्षय परम्परा से परिचित करवाना है।

हिन्दी साहित्य का समस्त भक्तिकालीन काव्य लेखन इन्हीं प्रयोजनों पर आधारित हैं विशेष रूप से सगुण भक्ति काव्य धारा की कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में संत कृपालु महाराज का प्रस्तुत भक्ति साहित्य विशेष रूप से लोक मंगल एवं आनन्द प्राप्ति के प्रयोजन से ही प्रणीत है। उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना के प्रारम्भ में ही तत्संबंधी रचना के प्रयोजन को स्पष्ट कर दिया है। जैसे उदाहरण स्वरूप 'युगल माधुरी' ग्रंथ के प्राक्कथन को देख सकते हैं। "कलि युग में भगवन्नाम, गुण, लीला आदि संकीर्तन ही भगवत्प्राप्ति का एक मात्र मार्ग है। 'युगल माधुरी' दिव्य युगल श्री राधा–कृष्ण के नाम, गुणादि से संबंधित संकीर्तनों का संग्रह है...उसी लक्ष्य को लेकर ये सभी संकीर्तन बनाए गए हैं।" लोक मंगल परक उपदेशात्मक प्रवृत्ति एवं आनन्दानुभूति के उद्देश्य से वेदों शास्त्रों में तथा आदि भक्त आचार्यों ने विशुद्ध भक्ति तत्व के जो लक्षण बताए हैं उन सभी का सामंजस्य करते हुए संत कृपालु महाराज ने भक्ति के शुद्ध, सनातन, वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित किया है तथा जगत में उस विशुद्ध

भक्ति स्वरूप के प्रचार का प्रयास अपने संगीतमय साहित्य के माध्यम से किया है। संत कृपालु महाराज के पद्य साहित्य का एक-एक छन्द भक्ति के सुवास से सुवासित एवं शोभित है। उन्होंने भक्ति के विशुद्ध स्वरूप को समझाने के लिए अपने अनेक प्रवचनों एवं लिखित साहित्य के साथ-साथ नारद भक्ति सूत्र की व्याख्या द्वारा भी भक्ति के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भक्ति तत्व का निरूपण किया। उन्होंने भक्ति के दो स्वरूप बताए हैं एक साधन भक्ति और दूसरी सिद्धा भक्ति जो गुरु द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के बाद शिष्य को दी जाती है। साधक जीव के द्वारा जो भक्ति की जाती है उसे साधना भक्ति कहते हैं। उस भक्ति का अन्तिम परिणाम या फल अन्तःकरण की शुद्धि है और अन्तःकरण की शुद्धि होने पर जो वास्तविक भक्ति है अर्थात दिव्य भक्ति वह तो गुरु के द्वारा साधक को मिलती है जिससे वह सिद्ध अवस्था पर पहुँच जाता है। इसी भक्ति के बारे में उन्होंने विस्तारपूर्वक अपने सिद्धान्त ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' में लिखा है-

"आप यह सुनकर हैरान हो जाएंगे कि जिस भक्ति को पाकर परमहंस लोग विभोर हो जाते हैं, वह भक्ति की नहीं जाती एवं अपने आप हो भी नहीं जाती वरन् वह तो एक परम-अन्तरंग ईश्वरीय-शक्ति का नाम है। अतएव वह भक्ति रूपी शक्ति एक मात्र ईश्वर के ही पास है। किसी मूल्य पर अमूल्य वस्तु नहीं मिला करती है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.-214

इसी प्रकार नारद भक्ति सूत्र की व्याख्या के प्रारम्भ में भी उन्होंने भक्ति के दो प्रकारों का उल्लेख किया है- "एक साधन भक्ति होती है, जो आप लोग कर रहे हैं और एक गुरु के द्वारा मिलती है अन्तःकरण की शुद्धि के बाद।"

नारद भक्ति सूत्र : पु.सं.-04

अतएव वास्तविक भक्ति जिसे कहा जाए वह तो ईश्वरीय तत्व है। भक्ति के ईश्वरीय स्वरूप को उन्होंने समझाते हुए 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में स्पष्ट किया है कि भक्ति तत्व ईश्वर की अन्तरंग शक्ति का गूढ़ अंश है जैसा कि उन्होंने लिखा है-

"ईश्वर की समस्त शक्तियों में प्रधान तीन शक्तियाँ हैं- स्वरूप शक्ति, जीव शक्ति तथा माया शक्ति। उनमें भी प्रधानतम स्वरूप शक्ति में सत्, चित्, और

आनन्द तीन शक्तियाँ हैं, जिनमें आनन्द शक्ति प्रधान है। अब उस परम प्रधानतम आनन्द शक्ति के भी सार ह्लादिनीशक्ति के सार का नाम 'प्रेम' है, उसी को 'भक्ति' भी कहते हैं।" *प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.–116*

अर्थात् भक्ति, ईश्वरीय दिव्य आनन्द एवं प्रेम शक्ति का ही दूसरा नाम है और इसी प्रेम को अर्थात भक्ति को प्राप्त करने के लिए साधक को पहले साधना भक्ति करनी होगी। साधना भक्ति करते–करते जब मन शुद्ध हो जाएगा तब वह दिव्य निर्मल भक्ति हरि गुरु की कृपा से जीव को प्राप्त होगी। जैसा कि भक्ति शतक के निम्न दोहे में उन्होंने स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है–

प्रथम साधना भक्ति करु, तव मन निर्मल होय।
मिलइ विशुद्धा भक्ति तब, गुरु अनुकंपा तोय।।(9) *भक्ति शतक*

इसी साधन एवं साध्य भक्ति के प्रेम स्वरूप को उन्होंने 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ के निम्न छन्द में स्पष्ट किया है–

कृष्ण भक्ति ही वेद बताय। भक्तिहिं भेद अनेक बताय।
वामें द्वै ही प्रमुख बताय। इक तो साधन भक्ति कहाय।
इक तो सिद्धा भक्ति बताय। सोई प्रेमा भक्ति कहाय।
साधन भक्ति साध्य दिलवाए। नवधा साधन भक्ति बताय।
यह ही साधन भक्ति कहाय। यही भक्ति मन शुद्ध कराय।
कृष्ण स्वरूप शक्ति इक आय। सोई शक्ति मन दिव्य बनाय।
तब मन प्रेम पात्र बनि जाय। तब हरि दिव्य प्रेम दिलवाए।
ह्लादिनि सार प्रेम कहलाय। गुरु की कृपा प्रेम सोइ याय।
जीव साध्य यह रसिक बताय।याके वश 'कृपालु' बल भाय।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद–08

अर्थात् साधन भक्ति के बाद सिद्धा भक्ति की प्राप्ति होती है जो कि ईश्वर की ह्लादिनी शक्ति के प्रेम रूप का ही नाम है। यही दिव्य भक्ति है और भगवान सदा इसी प्रेम अर्थात् भक्ति के आधीन रहते हैं। इसी प्रेमा भक्ति के अधीन भगवान का निवास होता है जैसा कि उन्होंने 'प्रेम रस मदिरा' के निम्न पद में उक्त प्रसंग को शब्दबद्ध किया है–

सखी सुनु इक कौतुक की बात।
जाकी माया ते विधि हरि हर, नाचत नित दिन रात।
सोइ ब्रज नारिन की तारिन पै, नाचत बलि बलि जात।
जाके भय भयभीत होत भय, सन्मुख ह्वै न सकात
सोइ स्वामिनिहिं मनावन सन्मुख, जात न अति डरपात।
नहिं 'कृपालु' कछु कौतुक प्रियतम, प्रेम विवश विख्यात। (110)

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि एक आश्चर्य की बात सुनो। जिसकी माया से ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि भी दिन रात नाचा करते हैं, वही ब्रजांगनाओं की तालियों पर नाचता हुआ भूरि-भूरि बलिहार जाता है। जिसके भय से साक्षात् यमराज भी डरता है, सहसा सामने नहीं खड़ा हो सकता, वही ब्रह्म किशोरी जी को मनाने के लिए उनके सम्मुख जाने में भी अत्यन्त भयभीत होता है। संत 'कृपालु' महाराज कहते हैं कि इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि प्रियतम श्यामसुन्दर प्रेम के अधीन हैं यह विश्वविदित ही है।

वास्तव में भगवान से नित्य असीम प्रेम की स्थिति ही भक्ति है। ईश्वरीय नित्य, सनातन, निष्काम व अनन्य प्रेम ही दिव्य आनन्द की अनुभूति देता है। ईश्वरीय प्रेम में साधन भक्ति एवं सिद्धा भक्ति दोनों ही समाहित हैं। जैसा कि 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के निम्न पद में संत कृपालु महाराज ने स्पष्ट किया है-

हमें तो मिल्यो रतन अनमोल।
कोटि कुबेर सिहात मोहिं लखि, पियत प्रेम रस घोल।
पायो रतन अमोलक मैंने, राधे राधे बोल।
रसिकन दीन बताय कृपा करि, बैकुण्ठहुँ की पोल।
कर्म धर्म सब ढ़ोल पोल हैं, देख्यों सबइ टटोल।
साधन सिद्धि 'कृपालु' प्रेम दोउ, सुन लो कानहिँ खोल।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद-137

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि मुझे तो अनमोल रत्न मिल गया है। मुझे सदा प्रेम रस की सुधा पीते देखकर करोड़ों कुबेर सिहाते रहते हैं। इस अमूल्य रत्न को मैंने 'राधे राधे' बोलकर ही प्राप्त कर लिया। मुझे रसिकों ने ऐश्वर्य युक्त वैकुण्ठ

की पोल पट्टी भी बता दी है कि यहाँ माधुर्य नहीं है। कर्मधर्म सभी का फल क्षणभंगुर है, मैंने सब टटोल कर देख लिया है। 'कृपालु' कहते हैं कि कान खोलकर सब लोग सुन लो कि प्रेम, साधना एवं सिद्धि दोनों ही है।

इस प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी उन्होंने ईश्वरीय प्रेम को सर्वोच्च बताया तथा इसी सर्वोच्च प्रेम का ही दूसरा नाम भक्ति है–

प्रेम के अधीन श्याम नाम ते न कामा।
लाला लाला कहें नित यशुमति भामा। (11) *श्यामा श्याम गीत*

इस प्रकार संत कृपालु महाराज भक्ति को ईश्वर की सारभूत शक्ति ह्लादिनी शक्ति के प्रेम रूप का पर्याय मानते हैं। किन्तु यह दिव्य प्रेम रूपी भक्ति तो अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ही प्राप्त होती है और इस सिद्धा भक्ति को प्राप्त करने के लिए जीव को साधना भक्ति करनी होगी। साधना भक्ति के वास्तविक स्वरूप को संत कृपालु महाराज ने अपने समस्त साहित्य में यत्र–तत्र विशेष रूप से स्पष्ट किया है। जीव को साधना भक्ति का आश्रय लेकर ही सिद्धा भक्ति प्राप्त होगी। साधना भक्ति के कुछ लक्षण और विशेषताओं को उन्होंने निम्न रूप से स्पष्ट किया है–

भक्ति में निष्कामता –

साधना भक्ति का प्रथम लक्षण कामना रहित प्रेम अर्थात निष्कामता है। भगवान से बिना किसी कामना के निष्काम प्रेम करना साधना भक्ति को तीव्र बनाता है। उनके मत में ईश्वर से यदि कामना रखकर भक्ति की जाएगी तो उस जीव का मार्ग में ही पतन होने का खतरा है। क्योंकि कभी कामना पूरी होगी तो लोभ आएगा और यदि कामना पूरी नहीं होगी तो क्रोध आएगा और जीव साधना पथ पर कभी आगे नहीं बढ़ पाएगा। संत कृपालु महाराज ने कामनाओं को भी स्पष्ट किया कि ईश्वरीय प्रेम, सेवा और दर्शन को छोड़कर समस्त प्रकार की कामनाओं का त्याग ही निष्काम साधना भक्ति है। अर्थात समस्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात समस्त मुक्ति–भुक्ति की कामना से मुक्त साधक ही साधना मार्ग में द्रुत गति से आगे बढ़ता है। भुक्ति एवं मुक्ति की कामना के त्याग के विषय में 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में उन्होंने स्पष्ट किया–

"आप कहेंगे, मुक्ति अर्थात ब्रह्मलोक पर्यन्त के भोगों की कामना का परित्याग तो समझ में आता है, किन्तु भुक्ति की कामना भी त्याज्य है, यही बड़ी विलक्षण सी बात है। किन्तु रसिकों की दृष्टि से –

भक्ति मुक्स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।

तावत् भक्तिसुखभ्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्।" *रूप गोस्वामी*

अर्थात भुक्ति एवं मुक्ति जब तक इन दोनों पिशाचनियों का निवास जीव के अन्तःकरण में रहेगा तब तक भक्ति महादेवी का प्राकट्य नहीं हो सकता। एक प्रमुख बात मेरी राय में यह है कि भुक्ति एवं मुक्ति इन दोनों डाकनियों में भुक्ति रूपी डाकिनी खतरनाक नहीं है क्योंकि वह तो जिसको लगी है, उसको उससे छुटकारा मिल सकता है। यदि कोई रसिक सन्त किसी भाग्यशाली भुक्ति वाले को मिल गया एवं उसने उस संत को पहिचान लिया एवं शरणागत होकर साधना की तो भक्ति रस को पी सकता है किन्तु यदि मुक्ति रूपी डाकिनी किसी को लगी अर्थात यदि कोई मुक्त होकर ईश्वर में ऐक्य को प्राप्त हो गया तो कथमपि भक्ति रस के पाने की संभावना नहीं हो सकती क्योंकि मुक्ति तो सदा के लिए हो जाती है पुनः द्वैत में वह आ ही नहीं सकता।" *प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.–219*

इसी भुक्ति मुक्ति की कामना से रहित भक्ति के विषय को उन्होंने अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार स्पष्ट किया है। जैसे 4 जरवरी से 11 जनवरी 2007 तक नवद्वीप (प. बंगाल) में निम्न दोहे की व्याख्या स्वरूप भगवत्प्राप्ति विषय पर विशेष प्रकाश डाला– **"हरि अनुराग हो या गोविन्द राधे। जग विराग हो मन से बता दे।"**

"यानी सुनो कन्क्लूजन मन से संसारी कामना हटाना होगा ब्रह्मलोक तक की कामना बल्कि इसके आगे एक और है खतरनाक चीज उसको कहते हैं मोक्ष। मुक्ति वो और खतरनाक है।...........अगर भक्ति महादेवी का प्राकट्य चाहते हैं आप अन्तःकरण में तो भुक्ति माने ब्रह्मलोक तक के सुख और मुक्ति माने भगवान में मिल जाना। ये दो पिशाचिनी हैं, चुड़ैल हैं इनको पहले आउट करो, हृदय से निकाल बाहर करो। *भगवद् भक्ति : प्रवचन–05, पृ.सं.–32*

भक्ति का प्रधान लक्षण है सर्वथा निष्काम भक्ति। इसी निष्काम भक्ति को संत कृपालु महाराज ने 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ के दोहों में भी स्पष्ट किया है–

भुक्ति मुक्ति सुख सुख बैकुण्ठ धामा।

तजु काम एक नाम रटु श्याम श्यामा। (04) *श्यामा श्याम गीत*

अर्थात ईश्वरीय भक्ति सदा सर्वथा काम रहित हो। भुक्ति अर्थात समस्त भौतिक सुखों एवं मोक्ष पर्यन्त तक के सुखों के साथ–साथ ईश्वर के दिव्य धाम, बैकुण्ठ धाम के सुख की भी लेश मात्र कामना को त्यागना होगा और सदा निष्काम भाव से श्यामा श्याम को अपना सर्वस्व मानते हुए उनसे प्रेम की याचना करना एवं उनके शरणागत होना ही भक्ति है। राधा–कृष्ण से अथाह प्रेम ही भक्ति है। इसी साधन प्रेम भक्ति से सिद्धा प्रेम भक्ति मिलेगी। इसी कामना रहित प्रेम को भक्ति का प्रधान लक्षण बताते हुए आगे उन्होंने लिखा–

प्रेम ही है सब साधन परिणामा। प्रेम में भी भान रहे सदा निष्कामा। (09)

रिद्धि मिले सिद्धि मिले मिले मोक्ष धामा। सब है अज्ञान ज्ञान प्रेम श्याम श्यामा। (10)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात् संत कृपालु महाराज ईश्वर प्राप्ति हेतु किए गए समस्त साधनों का सुन्दर परिणाम ईश्वर प्रेम को ही मानते हैं और वह प्रेम भी निष्काम हो। जिस प्रेम में कुछ कामना का भाव हो वह प्रेम नहीं वह तो स्वार्थ है। वास्तव में कामना रहित प्रेम ही शुद्ध प्रेम है। जिस साधना से रिद्धि मिले या समस्त सिद्धियाँ मिलें या फिर मोक्ष ही क्यों न मिलें। ये सभी अज्ञान है। जो साधक वास्तव में ज्ञानी है वह तो राधा–कृष्ण से केवल प्रेम ही करता है तथा सदा निष्काम प्रेम की ही याचना करता है।

इसी प्रकार 'सुनहु साधक प्यारे' पद में भी उन्होंने समस्त भक्ति साधना की प्रक्रिया में निष्कामता को अनिवार्य तत्व बताया तथा स्वामी के सुख और सेवा की कामना से युक्त एवं मोक्ष की कामना से रहित भक्ति की व्याख्या की है–

सुनहु साधक सुनहु साधक सुनहु साधक प्यारे।

उनके सुख को मानु निज सुख लक्ष्य यह रखु प्यारे।

भुक्ति मुक्तिन मानि डाकिनी मुँह लगा जनि प्यारे।

सुनहु साधक प्यारे : पृ.सं.–1–2

उपर्युक्त पद की व्याख्या में उन्होंने कामना रहित भक्ति को उजागर किया है– "अपने सुख के लिए कुछ न माँगो। ये बहुत बड़ी शर्त है। वह प्रेम जो माँग रहे हो वह भी उनकी सेवा के लिए। अपने सुख की कामना बन्द करो। ये अपने सुख की कामना ने हमको 84 लाख में घुमाया है–

खूब तरसाया है तेरी ख्वाहिशों ने ही तुझे।
तू भी अब इन ख्वाहिशों को कुछ तरसती छोड़ दे।

अब ये ख्वाहिशें तरसें कि अब हमको नहीं चाहता ये। इसको कौनसे गुरु ने पाठ पढ़ाया है। ये तो अनादिकाल से हमारा ही गुलाम था ये कामना करो, ये कामना करो, ये कामना करो। तो इसलिए भगवान श्री कृष्ण के सुख में ही सुखी मानों अपने आपको, अपना सुख मत चाहो। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रेम माँगो।

स्मरण युक्त नित रो के माँगो, प्रेम हरि का प्यारे।
उनके सुख को मानु निज सुख लक्ष्य यह रखु प्यारे।।

सुनहु साधक प्यार : प्रवचन 4, पृ.सं.–60

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' रचना के भक्ति अध्याय में संत कृपालु महाराज ने भक्ति के सम्पूर्ण तत्व को निरुपित किया है। इस ग्रंथ में भी उन्होंने शुद्ध भक्ति में कामना को बाधक बताकर, निष्काम भक्ति को प्रतिपादित किया है।

सबसे बड़ी बाधा गोविंद राधे। भक्ति में एकत्व मुक्ति बता दे। (4020)
भक्ति में दूजी बाधा गोविंद राधे। ब्रह्म लोक पर्यन्त भुक्ति बता दे। (4021)
दिव्य प्रेम तेरा लक्ष्य गोविन्द राधे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष धोखा बता दे। (4022)
प्रेम ते जो प्रेम मिले गोविंद राधे। वही प्रेम प्रेमी को सेवा दिला दे। (4023)

राधा गोविन्द गीत : भक्ति

अर्थात् शुद्ध भक्ति में सबसे बड़ी बाधा एकत्व मुक्ति, ब्रह्मलोक पर्यन्त भुक्ति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चार पदार्थों की कामना है। शुद्ध भक्ति तो निष्काम एवं प्रेम से परिपूर्ण होती है। वही निष्काम प्रेम स्वामी की सेवा दिलाता है और स्वामी की सेवा करके जो सुख साधक को मिलता है, वही सुख जीव का वास्तविक सुख है। क्योंकि जीवात्मा सदा से ही परमात्मा रूपी ब्रह्म की दास है और अपने स्वामी की

दासता एवं सेवा ही जीवात्मा का धर्म एवं सुख है। इसी भाव को उन्होंने 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में व्यक्त किया है।

साँचो दास न कबहुँ चह, पाँचहुँ मुक्ति बलाय।
चहइ युगल सेवा सदा, तिन सुख सुखी सदाय। (15)
जो स्वामी सों चहइ कछु, सो नहिं दास कहाय।
सोउ स्वामी न कहाय जो, दासहिँ आस लगाय। (16) *भक्ति शतक*

अर्थात् संत कृपालु महाराज सच्चे दास के लक्षण बता रहे हैं कि सच्चा दास वही है जो कभी भी ईश्वर से कुछ न माँगे। यहाँ तक कि पाँचो मुक्ति तक की वह आशा या कामना न करे। यदि ईश्वर से कभी भी कुछ माँगे तो केवल राधा-कृष्ण की युगल सेवा की कामना रखें और उनके सुख में ही सदा सुखी रहें और दूसरे दोहे में वे कहते हैं कि जो दास स्वामी से कुछ पाने की आशा करता है, वह सच्चा दास नहीं है और साथ में सच्चे स्वामी का भी लक्षण उन्होंने बताया कि सच्चा स्वामी भी वही है जो कभी अपने दास से किसी प्रकार के लाभ की आशा न रखे।

संत कृपालु महाराज ने निष्काम भक्ति के विज्ञान को अपने 'ग्रंथ प्रेम रस सिद्धान्त' में स्पष्ट किया है कि जीव को संसार की भुक्ति एवं मुक्ति की कामना से रहित भक्ति क्यों करनी चाहिए ?

"संस्कारों के अनुसार ही जब जीव को सांसारिक वस्तुएँ मिलती जाएंगी, तब वह भगवान की कृपा का नारा लगायेगा एवं जब संस्कारों के अनुसार ही सांसारिक वस्तुएँ न मिलेंगी, तब भगवान के कोप का भी स्पष्ट नारा लगाएगा तथा संसार की वस्तुओं की प्राप्ति की अवस्था में आस्तिक एवं अप्राप्ति की अवस्था में नास्तिक बना करेगा। अतएव सांसारिक वस्तुओं की कामना का ही पूर्णतया परित्याग कर देना साधक के लिए हितकारी होगा। चौथी बात यह है कि जब जीव शास्त्रों द्वारा यह समझता है कि भगवान तो सर्वान्तर्यामी है, वे जो कुछ भी हमारे लिए ठीक समझेंगे, करेंगे ही, तब उसे अपनी टाँग अड़ाने की आवश्यकता ही क्या है ? क्योंकि अल्पज्ञ जीव तो यह भी नहीं जानता कि मेरा वास्तविक हित किसमें है। अतएव यदि भगवान को सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ समझकर यह सब उन्हीं पर छोड़ दिया जाए तो माँगने की बीमारी ही उत्पन्न न हो। पाँचवी बात यह है कि शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक जीव कर्मबंधन

में है। प्रारब्धानुसार जितना भी सांसारिक सुख (जिसका वास्तविक स्वरूप दुख है) जिसके भाग्य में लिखा है मिलेगा ही।”

प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.-221-22

इसी प्रकार ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त भौतिक सुख एवं मुक्ति की कामना से रहित विशुद्ध निष्काम भक्ति को उन्होंने ‘प्रेम रस मदिरा’ के पदों में भी निरूपित किया है-

छाँड़ू मन! जग मृग जल की आस।
मृग जल पियत अमित युग बीते, तऊ बुझी नहिं प्यास।
संतन चरण शरण नहिं आयो, जहँ सुरसरि को वास।
इन्द्रिन विष्ठा-विषय नरक महँ, कियो वास बनि दास।
दीनभाव निष्काम श्याम भजु, करु सद्गुरु विश्वास।
तेहि बिनु मन! ‘कृपालु’ गहि बूँदन, चाहत चढ़न अकास।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद-05

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अरे मन! सांसारिक विषय रस-रूपी मृग-जल को पीते हुए तुझे अनन्त युग बीत गये फिर भी तेरी प्यास बुझ नहीं सकी, अतएव अब इस सांसारिक विषय रस रूपी मृग-जल की आशा छोड़ दे। अरे मन! इन्द्रियों के पाँचों विषय रूपी विष्टा के नरक में तूने अनादि काल से आज तक निरन्तर निवास किया। किन्तु जहाँ साक्षात् भगवती भागीरथी गंगा बहती रहती है, उन महापुरुषों के चरणों की शरण नहीं गया। सद्गुरु पर पूर्ण विश्वास रखते हुए निष्काम भाव से दीनता पूर्वक निरन्तर श्यामसुन्दर का भजन कर। ‘कृपालु’ कहते हैं कि उपर्युक्त बातों को न मानकर यदि तू अपनी प्यास और प्रकार से बुझाना चाहता है तो तू वैसा ही मूर्ख है जैसे कोई बरसते हुए बादलों की बूँदों को पकड़कर आकाश को चढ़ना चाहे, जो तीनों काल में असम्भव है।

इसी प्रकार ‘युगल शतक’ ग्रंथ के निम्न छंद में भी संत कृपालु महाराज राधा-कृष्ण से विनय करते हुए निष्काम प्रेम की याचना कर रहे हैं-

राधे राधे गोविंद राधे, राधे राधे राधे।
भुक्ति मुक्ति बैकुण्ठ नहिं माँगू राधे,

ब्रज रस बूँद पिला दे, राधे राधे राधे।
यह वर माँगूँ वरदायिनी राधे,
माँगूँ नहिं कभु कछु राधे, राधे राधे राधे।
तेरा सुख बनि जाए मेरा सुख राधे,
ऐसी मेरी सुमति बना दे, राधे राधे राधे।

–युगल शतक : पद–78

अर्थात संत कृपालु महाराज राधा–कृष्ण से याचना कर रहे हैं कि हे राधे–कृष्ण! मैं आपसे भुक्ति, मुक्ति, बैकुण्ठ आदि की कामना नहीं करता और आपसे ऐसा वर चाहता हूँ कि मैं कभी आपसे कछु न माँगू। मैं तो केवल आपके सुख को देखकर सुखी होता रहूँ। आप कृपा करके ऐसी मेरी बुद्धि बना दीजिए तथा मुझे अपना दिव्य प्रेम रस प्रदान कीजिए।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ के अनेक छंदों में भी कामना रहित ईश्वरीय प्रेम के भाव को अभिव्यक्त किया है–

मेरी राधे मेरी राधे मेरी प्यारी राधे,
भुक्ति मुक्ति बैकुण्ठ सुख आदि ना दे।
तेरा सुख मेरा सुख बनि जाये राधे,
निज सुख काम मेरे मन ते मिटा दे।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद –62

अर्थात संत कृपालु महाराज राधा रानी से निवेदन कर रहे हैं कि मैं आपसे कुछ नहीं चाहता न तो समस्त भौतिक सुख न तो मोक्ष और न ही आपके दिव्य बैकुण्ठ का वास ही चाहता हूँ। मेरी कामना तो बस इतनी ही है कि मैं आपके सुख में ही स्वयं का सुख मानू, आपकी प्रसन्नता मेरी प्रसन्नता बन जाए। निज सुख कामना मेरे मन से लुप्त हो जाए बस ऐसी कृपा कर दीजिए। अर्थात वे सर्वथा निष्काम भाव की याचना राधा रानी से कर रहे हैं कि हे राधा रानी! आप मुझे निष्काम बना दीजिए।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने भक्ति पथ के प्रथम लक्षण निष्कामता को विभिन्न प्रकार से सिद्ध किया है कि कामना और प्रेम आपस में विरोधी तत्व हैं। जहाँ

प्रेम है वहाँ काम नहीं और जहाँ कामना है वहाँ प्रेम नहीं। जैसा कि 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में उन्होंने स्पष्ट किया है–

"कामना प्रेम का विरोधी तत्व है। लेने–लेने का नाम कामना है, एवं देने–देने का नाम प्रेम है, तथा लेने–देने का नाम व्यापार है। जिसमें प्रेमास्पद से कुछ याचना की भावना हो, वह प्रेम नहीं है। जिसमें सबकुछ देने पर भी तृप्ति न हो, वही प्रेम है।. ......एक चातक को देखिए, वह कितना सुन्दर निष्काम प्रेम करता है। वह बारह मास अपने प्रियतम से प्यार करता है, जबकि हम लोग जब कोई सांसारिक आपत्ति आयी तब मंदिरों या महात्माओं के पास दौड़ते हैं एवं जैसे ही सांसारिक कामना पूर्ति हो गयी फिर कभी जाने का नाम नहीं लेते। यदि कोई पूछता है कि तुम आजकल मन्दिरों या सत्संग में नहीं जाते तो कह देता है कि मुझे तो अपने अन्दर ही सब कुछ मिल जाता है, दिखावा करने से क्या लाभ इत्यादि। सच तो यह है कि वह सांसारिक कामनाओं का ही उपासक है, उसने ईश्वर तत्व को अभी समझा ही नहीं है। अतएव, चातक से है में शिक्षा लेनी चाहिए। जैसे वह बारहमास उपासना करता हुआ भी स्वाति से ही जल पीता है, उसी प्रकार हम भी प्रेमास्पद की इच्छा में इच्छा रखें एवं निरन्तर प्रेम करें।"
प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.–224–25

इसी प्रेम एवं कामना के विरोध को उन्होंने 'युगल माधुरी' ग्रंथ के निम्न पद में भी स्पष्ट किया है–

प्रेम अनिर्वचनीय कहाय।
प्रेम दिव्य मन बुधि न समाय।
प्रेम कामना–हीन कहाय।
भुक्ति मुक्ति द्वै काम कहाय।
प्रेम गुणों ते रहित कहाय।
प्रेम श्याम सुख हित बतलाय।
देना देना प्रेम कहाय।
लेना लेना काम कहाय।
ले दे सो व्यापार कहाय।
प्रेम दिव्य जनु सूर्य बताय।
प्रेम 'कृपालु' कृपा ते हि पाय।

युगल माधुरी : पद सं.–05

इस प्रकार भक्ति का प्रधान लक्षण निष्काम एवं कामना रहित ईश्वरीय प्रेम है जो भक्त की साधना को सिद्धि में परिवर्तित करता है।

मन की स्मरण भक्ति –

भक्ति का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण उन्होंने विशेष रूप से उल्लेखित किया है कि भक्ति 'मन' को करनी है। आमतौर पर संसार में बाह्य इन्द्रियों की भक्ति को ही भक्ति मानते हैं जैसे हाथों से मन्दिर में पूजा करना, व्रत, उपवास करना, जप करना, तप करना, तीर्थाटन करना, यज्ञ करना आदि। किंतु संत कृपालु महाराज ने अपने समस्त लिखित एवं प्रवचन साहित्य में इस बात पर विशेष ध्यान दिलाया कि भक्ति केवल मन को करनी है। यदि मन के साथ–साथ इन्द्रियाँ भी लगी हों तो अच्छी बात है और यदि हम इन्द्रियों से रहित केवल मन का स्मरण करें तब भी वह सही भक्ति है। अगर हमारा मन कहीं और स्थान पर है और मुँह से करोड़ों बार भगवान का नाम लें तो उसका कोई ईश्वरीय फल नहीं मिलेगा और यदि हम मुँह से एक बार भी भगवान का नाम न लें तब भी मन से केवल हरि स्मरण करने पर हमें वास्तविक ईश्वरीय लाभ मिलेगा। उन्होंने कई स्थानों पर भक्ति के प्रकारों का उल्लेख किया है जिसमें नवधा भक्ति को विशेष प्रकार से उल्लेखित किया है। किन्तु उनके मत में नवधा में से भी तीन भक्ति प्रमुख है श्रवण, कीर्तन, स्मरण। इन तीन में से भी स्मरण भक्ति प्रमुख बताई है और साथ में स्पष्ट किया कि स्मरण करने का कार्य कौन करता है?–मन। मन की इस स्मरण भक्ति को उन्होंने अपने सिद्धान्त ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' में स्पष्ट किया है–

"वास्तव में रहस्य यह है कि भक्ति या उपासना मन को ही करनी है क्योंकि मैंने पूर्व में ही बताया था कि मन ही बंधन एवं मोक्ष का कारण है, और यदि मन में सांसारिक या पारलौकिक कामनाएँ रहेंगी तो उपासना किस मन से हो सकेगी। एक ही मन तो है, उसमें चाहे भौतिक कामना भर लीजिए, चाहे ईश्वर–प्राप्ति की इच्छा भर लीजिए। आप एक मन में दोनों कामनाएँ भरना चाहें तो यह त्रिकाल में असंभव है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग

इस प्रकार संत कृपालु महाराज मन के स्मरण को ही भक्ति मानते हैं। मन की इस स्मरण भक्ति को उन्होंने 'भक्ति शतक' ग्रंथ के अनेक दोहों में निरुपित किया है।

हरि अनुराग विराग जग, आपुहिँ आपु न हो।
मन ते भजन किए बिना, भक्ति न पावे कोय। (14)
जिमि हो शीत निवृत्त तिन, जिन ढ़िग अगिनि सिधार।
तिमि हो कृपा तिनहिं जिन, मन जाये हरि द्वार। (30)

भक्ति शतक

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि जग से वैराग्य या हरि से अनुराग बिना मन की भक्ति के नहीं हो सकता। जब मन वास्तव में हरि भजन में लग जाएगा तब ईश्वर की वास्तविक कृपा होगी तथा जिस प्रकार अग्नि के निकट जाने से शीत का प्रभाव कम होने लगता है उसी प्रकार मन जैसे-जैसे भगवद् भक्ति से लिप्त होगा माया के विकार दूर होते जाएंगे। आगे इसी रचना के अन्य दोहों में भी उन्होंने मन की स्मरण भक्ति को ही हरि कृपा और दिव्य ज्ञान का आधार बताया है।

मन मनमोहन भजन कर, सहज सनेही मान।
बिनुहिँ बुलाये आहहैं, जग विराग अरु ज्ञान। (75)
प्राकृत मन ते होत है, ज्ञानिन प्राकृत ध्यान।
भक्तन मन हरि कृपा ते, होत दिव्य सच मान। (76) *भक्ति शतक*

अर्थात संत कृपालु महाराज मन को संबोधित करते हुए मन से हरि भजन की बात कर रहे हैं कि हे मन! कृष्ण को अपना स्नेही मानते हुए भजन कर जैसे-जैसे मन में भगवान का वास होगा वैसे-वैसे जग वैराग्य और ज्ञान अपने आप आता जाएगा। मन से हरि स्मरण ही अशुद्ध अन्तःकरण की शुद्धि करता है। मन की इसी स्मरण भक्ति को उन्होंने 'ब्रज रस माधुरी' गंथ के अनेक पदों में भी स्पष्ट किया है-

तजु मनमानी भजु नन्दनन्दन। सब जीवन जीवन नन्दनन्दन।
मन ते करु चिंतन नन्दनन्दन। मन ते लखु सब महँ नन्दनन्दन।
मन ते करु सेवा नन्दनन्दन। मन ते करु पूजा नन्दनन्दन।
मन ते परसहुँ तन नन्दनन्दन। मन ते रिझवहु नित नन्दनन्दन।

मन ते सिंगार करु नन्दनन्दन। मन ते बनु प्यारी नन्दनन्दन।
मन ते मनाउ नित नन्दनन्दन। मन ते पग चापहु नन्दनन्दन।
मन ते लगाउ उर नन्दनन्दन। मन ते माँगहु रति नन्दनन्दन।
मन ते माँगहु सुख नन्दनन्दन। मन तव 'कृपालु' गति नन्दनन्दन।

ब्रज रस माधुरी : 10, पद–20

अर्थात् संत कृपालु महाराज मन से ही प्रभु के चिन्तन, मनन, प्रेम एवं सेवा को ही भक्ति मानते हैं। मन से श्री कृष्ण की पूजा अर्चना हो, मन से सदा सर्वत्र कृष्ण भावना हो, मन से ही श्रीकृष्ण की अष्टयामी सेवा हो, यही भक्ति कृष्ण की प्राप्ति करवाती है।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के सिद्धान्त माधुरी अध्याय के अनेक पदों में भी उन्होंने मन की स्मरण भक्ति का उपदेश दिया है–

अरे मन! अस तृष्णा बलवान।
बड़े बड़े भूपति भये भूतल, उदय अस्त लौं भान।
तिनहुँन की सोइ दशा रही जो, एक भिखारिहिँ जान।
यह तृष्णा नहिँ छोड़ति इन्द्रहुँ, जेहि सुरपति सब मान।
जब लौं नहिं सुमिरहु मन निशिदिन, सुंदर श्याम सुजान।
तब लौं सुख 'कृपालु' नहिँ पै हौ, वेद पुरान प्रमान। (08)

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अरे मन! यह तृष्णा इतनी बलवती है कि इस पृथ्वी पर बड़े–बड़े राजा हुए जिनका सम्पूर्ण धरातल पर राज्य था किन्तु उनकी दशा भी ठीक एक भिखारी के ही समान थी। कहाँ तक कहें यह तृष्णा देवराज इन्द्र को भी नहीं छोड़ती जिसे सब देवताओं का स्वामी मानते हैं। हे मन! वेद पुराण चिल्ला–चिल्ला कर कह रहे हैं कि जब तक तू श्याम–सुन्दर का निरन्तर स्मरण नहीं करेगा 'कृपालु' कहते हैं कि तब तक सुख न पा सकेगा। कहने का तात्पर्य यह कि उन्होंने मन की स्मरण भक्ति को ही दिव्य आनन्द प्राप्ति का स्त्रोत बताया है। 'युगल शतक' ग्रंथ के अनेक पदों में भी उन्होंने इसी मन की स्मरण भक्ति को उजागर किया है–

भजु मन राधा राधा राधा, राधा राधा राधा।
रसना नित रस पिवु बिनु बाधा,

अगनित गुन गन राधा, राधा राधा राधा।
त्वचा सुमिरु नित चरनन राधा,
मन धरु ध्यान रैन दिन राधा,
जेहि छवि सम छवि राधा राधा राधा राधा।
चहहु 'कृपालु' कृपा जो राधा,
कृष्णहुँ भजु संग राधा, राधा राधा राधा। (53)

युगल शतक : श्री राधा माधुरी

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मन! यदि श्री राधा के दिव्य नाम रस का पान करना चाहता है तो मन से राधा का स्मरण कर। अरे मन! निरन्तर श्री राधा का ही सेवन कर। जिह्वा से अनवरत राधा नामामृत का पान कर। नाम स्मरण करने में भला क्या विघ्न उपस्थित हो सकता है ? श्री राधा अनन्त दिव्य गणों से विभूषित हैं, अतः कानों से निरन्तर उनकी लीला का श्रवण कर उनके गुणानुवाद सुन। कोमल स्पर्श की कामना जब उत्पन्न हो तो श्री राधा के कमलोपम चरणों का स्मरण कर। श्री कृष्ण भी इन चरणों की आराधना करते हैं। नेत्रों से श्री राधा की पल-पल, दिव्य मूर्ति का ध्यान कर दसों दिशाओं में उनका ही दर्शन कर। कृपालु महाराज कहते हैं कि- यदि श्री राधा की कृपा प्राप्त करनी है तो उनके प्रियतम कृष्ण की भी भक्ति करनी होगी।

संत कृपालु महाराज ने अपने 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ में विस्तार से मन की स्मरण भक्ति को निरुपित किया है। इस ग्रंथ में उन्होंने भक्ति के शास्त्रीय प्रकारों का निरुपण किया है तथा निष्कर्ष में मन के स्मरण को ही अन्तःकरण शुद्धि का साधन बताया तथा मानसी सेवा, जप, तप, प्रेम को ही उचित ठहराया।

भक्ति ते मिले भक्ति गोविंद राधे। याते साधना भक्ति मन ते करा दे। (4064)

x x x x x x x x x x

भक्ति है अनेक विधि गोविंद राधे। सबते प्रमुख है स्मरण बता दे। (4084)

राधा गोविन्द गीत

स्मरण भक्ति के स्तरों को स्पष्ट करते हुए आगे उन्होंने मायिक मन से दिव्य भगवान के स्मरण के तर्क और विज्ञान को भी स्पष्ट किया कि यद्यपि इन्द्रिय, मन,

बुद्धि मायिक है और इस मायिक मन से दिव्य भगवान का चिन्तन नहीं हो सकता किन्तु भगवान की अपार कृपा ईश्वर की स्वरूप शक्ति, इन्द्रिय मन बुद्धि को दिव्य बना देती है–

इन्द्रिय मन बुद्धि गोविंद राधे। परे हैं यद्यपि कृष्ण बता दे। (4088)
किन्तु स्वरूप शक्ति गोविंद राधे। जीव की इन्द्रियादि दिव्य बना दे। (4089)
स्वरूप शक्ति ते हो गोविंद राधे। मन दिव्य दिव्य रूप ध्यान करा दे। (4090)
इन्द्रिय मन दिव्य गोविंद राधे। दिव्य हरि का रस ग्रहण करा दे। (4091)
'अपि संराधने' गोविंद राधे। सूत्र कह हरि भक्ति ग्राह्य है बता दे। (409)
मन जब शुद्ध हो तो गोविंद राधे। श्री कृष्ण मन में स्वरूप शक्ति ला दे। (4094)
मन जब दिव्य बने गोविंद राधे। तब करे दिव्य प्रेम धारण बता दे। (4095)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार साधना भक्ति के समय मन भले ही मायिक है किन्तु जब इस मायिक मन के द्वारा निरन्तर हरि स्मरण भक्ति से अन्तःकरण शुद्ध हो जाएगा तब यही मायिक मन दिव्य प्रेम से युक्त हो जाएगा तथा मन में सिद्धा भक्ति का प्रवेश होगा। यह भगवान की अपार करुणा है कि वे साधनावस्था के मायिक रूप ध्यान को भी स्वीकार कर लेते हैं और आगे हरि गुरु कृपा से दिव्य प्रेम की प्राप्ति होती है। जैसा कि इसी ग्रंथ में उन्होंने निम्न शब्दों में निरुपित किया है–

प्रेम बिनु माँगे मिले गोविंद राधे। प्रथम शुद्ध मन रूपी पात्र बना दे। (4096)
जननी तो साधन भक्ति गोविंद राधे। सुता भाव भक्ति सिद्ध भक्ति ना बता दे। (4097)
साधन भक्ति जीव करे गोविंद राधे। सिद्धा भक्ति हरि गुरु द्वारा दिला दे। (4098)
कृष्ण भक्ति चित्त को गोविंद राधे। स्वरूप शक्ति तादात्म्य करा दे। (4099)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार इस ग्रंथ में उन्होंने मन की स्मरण भक्ति को ही सबसे उपयुक्त बताया है। उन्होंने मानसिक सेवा को ही वास्तविक सेवा बताया है क्योंकि यदि किसी सेवा या प्रेम में मन का संयोग न हो, केवल इन्द्रियों का ही संयोग हो तो वह निरर्थक है और केवल स्मरण भक्ति ही सेवा के लक्ष्य को प्राप्त करवाती है। इसी विषय को उन्होंने निम्न शब्दों में निरुपित किया है

मन ते स्मरण नित्य गोविंद राधे। यह है मानसी सेवा बता दे। (4054)
मन की सेवा प्रमुख गोविंद राधे। साथ में तन धन को भी लगा दे। (4056)
जग ते हटा के मन गोविंद राधे। बार बार हरि अरु गुरू में लगा दे। (4061)
यत्र तत्र सर्वत्र गोविंद राधे। हरि गुरु सुमिरन मन ते करा दे। (4063)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि मन से की गई सेवा ही सर्वश्रेष्ठ है तथा मन की साधना अत्यन्त सरल भी है। यत्र-तत्र सर्वत्र जहाँ भी रहो निरन्तर हरि गुरु का स्मरण मन से हो। इस भक्ति में किसी प्रकार की क्लिष्टता या कोई नियम भी नहीं है। केवल इतना ही करना है कि बार-बार संसार से मन को हटा के भगवान में लगाना है। चूँकि मन को अनादिकाल से मायिक संसार का चिन्तन करने की आदत है और स्वभाववश वह बार-बार संसार की ओर भागेगा। ऐसी स्थिति में साधक को क्रोध या निराशा नहीं लानी अपितु अभ्यास करते हुए जहाँ मन जाए वहाँ हरि गुरु को मन से ले जाना है। इस प्रकार अभ्यास करने से एक ऐसा समय आएगा जब स्वतः ही भगवान का हर समय चिन्तन होने लगेगा।

इस प्रकार मन के चिन्तन के महत्त्व को उन्होंने अपने प्रवचन साहित्य में भी अनेक बार उद्‌घोषित किया है कि अध्यात्म के पथ पर मन की साधना ही प्रमुख है। जैसा कि 'जीव का लक्ष्य' विषय पर दिए गए प्रवचन में उन्होंने कहा-

"सारे शास्त्र वेद एक स्वर से कहते हैं भई ये मन ही है प्रमुख। संसार में सुख है- ऐसा मान ले मन, उसमें अटैचमेण्ट हो जाए। मान ले बस। मान ले। देखो! एक लड़की 18,20,25 साल की जब तक मायके में रहती है, ब्याह नहीं हुआ रहता, तो अपने बाप के हर एक सामान को अपना सामान समझती है। अपनी सहेली से कहती है- देखो हमारा ये है, हमारा ये है और जैसे ही सात चक्कर लगाया किसी अनजान लड़के से और उसके घर गई 'ये हमारा है'। अब सहेली कहती है, अब तुम्हारा क्या है ? अरे वो तो गया। ये है। तो तूने अभ्यास किया था क्या इसके लिए कुछ ? नहीं नहीं ये तो मोटी अकल की बात है। इससे हमारा स्वार्थ सिद्ध होगा इसलिए इसमें अटैचमेण्ट हो गया। जहाँ स्वार्थ सिद्ध हुआ वहाँ अटैचमेण्ट हुआ।"

जीव का लक्ष्य : 11-17 मार्च-2003

इसी प्रकार 'युगल माधुरी' ग्रंथ के निम्न पद में भी उन्होंने मन की स्मरण साधना को ही महत्त्व दिया है।

साधना करु साधना करु साधना करु प्यारे।
साधन ते ही मिले तोहिं साध्य हरि रति प्यारे।
साधना में है प्रमुख मन, इन्द्रियाँ नहिं प्यारे।
मोक्ष अरु बंधन का कारण, एक मन ही प्यारे।
प्रथम करु हरि ध्यान मन ते, जैसी रुचि हो प्यारे।
ध्यान ही है साधना का प्राण जीवन प्यारे।
ध्यान बिनु सब साधना है, प्राण बिनु तनु प्यारे।

युगल माधुरी : पद-62

इस पद की व्याख्या करते हुए अपने प्रवचन शृंखला में उन्होंने कहा- "मन ही बंधन और मोक्ष का रीज़न है। अगर मन से आप स्मरण नहीं करेंगे और भगवान के नाम का कीर्तन करेंगे तो मन क्या करेगा ? मन संसार का स्मरण करेगा। तो जिसका स्मरण मन करता है तो उसी की भक्ति मानी जाती है और उसी का फल मिलता है। मुँह से आप मान लो राधे-राधे कर रहे हैं और राधे आपकी बीवी है या मम्मी है या बिटिया है और ध्यान उसका कर रहे हैं तो राधे नाम काम नहीं देगा। जिसका नाम ले रहे हैं उसका स्मरण होना चाहिए। ये प्रमुख बात है, सबसे प्रमुख, सबसे प्रमुख। रट लो भगवत्प्राप्ति तक ये वाक्य भूले न कि मन को भक्ति करना है। इसलिए भगवान के स्मरण के अलावा कोई भी भक्ति 0/100 (जीरो बटे सौ)।"

सुनहु साधक प्यारे : व्याख्या प्रवचन 15-11-2002

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ के निम्न पद में उन्होंने मन की स्मरण भक्ति पर ही बल दिया है।

करु सुमिरन मन राधे, राधे राधे राधे।
इन्द्रिन भजन न मानतिं राधे,।
भजन मान मन राधे, राधे राधे राधे।
गावु नाम लीला गुन राधे,
किन्तु ध्यान करु राधे, राधे राधे राधे।।

युगल रस : पद-67

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मेरे मन! तू श्री राधा का स्मरण कर। इन्द्रियों की क्रिया (बिना मन के अनुराग के पूजा, वन्दन आदि) का विशेष महत्व नहीं है। ईश्वर के यहाँ मन के स्मरण का ही महत्व है। रसना से श्री राधा के नाम, लीला गुणदि का गायन करो किन्तु मन से श्री राधा के अलौकिक रूप का ध्यान करना परमावश्यक है। कहने का तात्पर्य यही है कि संत कृपालु महाराज मन के स्मरण से युक्त समस्त ईश्वरीय आराधना एवं प्रयासों को ही उपयुक्त मानते हैं। जिस साधन भजन में मन का अनुराग एवं स्मरण नहीं है वे सभी साधन मृतक देह के समान है तथा मन का स्मरण आत्मा के समान है। इसी भाव को उन्होंने 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ के निम्न दोहों में व्यक्त किया है– यथा–

देह सम कीर्तन नाम गुन धामा। प्रान समान रूप–ध्यान श्याम श्यामा। (07)
जो मन बुद्धि दै के भजे आठु यामा। ताकी सँभार करें शिशु जनु श्यामा। (18)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात जो भक्त अपने मन बुद्धि को ईश्वर के शरणागत कर लेता है उसकी सुरक्षा भगवान ठीक वैसे करते हैं जिस प्रकार एक नवजात शिक्षु की संभाल उसकी माँ करती है।

भक्ति में अनन्यता –

संत कृपालु महाराज ने भक्ति का एक और प्रधान लक्षण, 'अनन्यता' बताया है। 'अनन्यता' से तात्पर्य न–अन्य अर्थात हृदय में प्रेमास्पद के अलावा और किसी के प्रति रंच मात्र भी भाव न हो। अर्थात सदा एक का ही ध्यान, एक से ही प्रीति। इस अनन्यता को उन्होंने एक पौराणिक उदाहरण से स्पष्ट किया है–

"जब द्रोपदी दुःशासन के द्वारा सभा में लायी गयी, तब द्रोपदी के समक्ष एक भयानक परिस्थिति थी। भरी सभा में एक भारत की प्रमुख नारी इस प्रकार अपमानित हो, यह अनुभवी की अन्तरात्मा ही समझ सकती है। अस्तु, द्रोपदी ने प्रथम यह सोचा कि मेरे पाँच–पाँच पति हैं (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव) ये हमारी रक्षा करेंगे, अब क्या डर है ? किन्तु जब पाँचों पति जुए में हार जाने के कारण चुपचाप बैठे रहे तो द्रोपदी के अन्तःकरण से पतियों का बल निकल गया। अब द्रोपदी ने सोचा कि भीष्मपितामह, द्रोणाचार्यादि बड़े–बड़े धर्माचार्य रक्षा करेंगे। जब वे भी चुप रहे, तब

उनका भी बल निकल गया। अब द्रोपदी के अन्तःकरण से समस्त विश्व का बल निकल गया, किन्तु अपना बल रह गया अर्थात मैं स्वयं अपनी रक्षा करूँगी। भला एक अबला का बल ही क्या है जो 10 हजार हाथी के बल वाले दुःशासन का मुकाबला कर सके। द्रोपदी ने दाँत से साड़ी दबाई। उस समय भगवान द्वारिका में भोजन कर रहे थे। एक ग्रास मुँह में था, उसे न निगल सके, न उगल सके, एक हाथ मुँह की ओर जा रहा था, उसे न मुँह में डाल सके न पात्र में तथा आँखे निर्मिमेष खुली रह गयी। ऐसी विलक्षण स्थिति देखकर रुक्मिणी ने पूछा, क्या बात है ? भगवान ने कहा, बड़ी गंभीर बात है, एक भक्त पर कष्ट आ पड़ा है। रुक्मिणी ने कहा, तो फिर जाकर बचाओ। भगवान ने कहा, मैंने हजार बार कहा है कि–

अनन्याश्चिन्यन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यह्म।।

अर्थात मैं उसी का योगक्षेम वहन करता हूँ जो अनन्य शरणागत हो, किन्तु वह भक्त अभी अपने बल का विश्वास कर रहा है। अस्तु, दुःशासन ने जैसे ही साड़ी का झटका दिया, वैसे ही द्रोपदी के हाथ से साड़ी खिसक गयी। अब द्रोपदी ने अपने बल का परित्याग कर दिया। अब केवल श्याम सुन्दर के ही बल पर निर्भर हो गयी। बस, अनन्य हो गयी। अंबरावतार हो गया अर्थात चीर बढ़ाने के लिये भगवान तत्क्षण पहुँच गए। भावार्थ यह है कि उपासना में अनन्यता प्रमुख वस्तु है, जिस पर लोगों का विशेष दृष्टिकोंण नहीं रहता।” *प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.–237*

संत कृपालु महाराज ने उक्त पौराणिक कथा के माध्यम से भक्ति में अनन्यता के लक्षण को स्पष्ट किया है। जब तक भक्त संसार के समस्त बलों, साधनों, सहारों से विमुख होकर केवल एक मात्र अपने इष्ट के प्रति सर्व समर्पित भाव से एक निष्ठ रहता है और जिस क्षण भक्त अनन्यतापूर्वक ईश्वर के प्रति समर्पित होता है उसी क्षण भगवान भक्त के सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। अनन्यता, भक्त के भगवद् प्रेम को पोषित, पल्लवित करती है। अनन्यता के लक्षणों को और आगे स्पष्ट करते हुए ‘प्रेम रस सिद्धान्त’ ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने लिखा है– “कुछ लोग भगवान से भी प्रेम करते हैं किंतु साथ ही अन्य देवताओं या संसारियों से भी प्रेम करते हैं, अतएव भगवत्प्राप्ति नहीं हो पाती। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि एक मन है, उसमें एक

श्याम सुन्दर संबंधी ही विषय रहे, अन्य मायिक तत्व, रज, तम संबंधी तत्व न आने पाये। आजकल प्रायः उपासक लोग अनेक देवी देवताओं की उपासना साथ–साथ करते रहते हैं। भगवान की भी करते हैं और यदि अवसर देखा तो कब्रिस्तान की भी कर लेते हैं। यह सब धोखा है। जब समस्त मायिक एवं अमायिक शक्तियों का मूल अधिष्ठान भगवान ही हैं तो पृथक–पृथक उपासना क्यों की जाय ? यह सिद्धान्त समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण शक्तियों की उपासना करने पर भी भगवान की उपासना नहीं मानी जाएगी, किन्तु एक भगवान की उपासना कर लेने पर सम्पूर्ण शक्तियों की उपासना मान ली जायेगी।..........अर्थात जैसे वृक्ष के मूल में जल देने से वृक्ष की शाखा, उपशाखा एवं उसके पत्र, फूल, फल सब को जल पहुँच जाता है। पृथक–पृथक जल देने की आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही समस्त शक्तियों के आधारभूत भगवान की उपासना कर लेने पर समस्त शक्तियों की उपासना स्वयमेव हो जाती है।" *प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.–238*

अर्थात किसी भी सात्विक, राजस, तामस शक्ति का आधार लिए बिना एक मात्र अपने इष्ट के प्रति निष्ठा रखना अनन्यता है। भगवान में ही समस्त देवताओं की उपस्थिति मानते हुए नमस्कार तो सभी को करना किन्तु प्रेम एवं स्नेह भाव एक अपने इष्ट के प्रति रखना ही अनन्यता है।

अनन्यता के विषय में उन्होंने अपने अनेक ग्रंथों में प्रकाश डाला है। 'युगल माधुरी' ग्रंथ के निम्न पद में प्रेम पथ के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए अनन्यता का भाव रखने की ओर प्रेरित किया है–

सुनहु साधक, सुनहु साधक, सुनहु साधक प्यारे।
हरि में गुरु में भक्ति में रह रति अनन्यहिं प्यारे।
क्षणहिं क्षण व्याकुल बनो नित हरि मिलन हित प्यारे।

युगल माधुरी : पद सं.–63

संत कृपालु महाराज अपने इष्ट, गुरु एवं भक्ति मार्ग के प्रति अनन्यता की बात करते हुए कहते हैं कि अनन्य भाव रखते हुए हरि मिलन की व्याकुलता बढ़ाइये। इसी प्रकार इसी रचना का एक अन्य पद भी देख सकते हैं जिसमें भक्त अपने इष्ट के प्रति अनन्य भाव व्यक्त करता है–

मेरे एक तुम, मेरे एक तुम, मेरे एक तुम माधव।
मैं भी तो तव, मैं भी तो तव, मैं भी तो तव माधव।
तुम हि स्वामी, तुम सखा हो, तुम हि सुत पति माधव।
तुमहि माता, तुम पिता हो, तुम हि भ्राता माधव।

युगल माधुरी : पद सं. 33

अर्थात संसार के समस्त संबंध अपने इष्ट से ही मानते हुए भक्ति की जाए। संत कृपालु महाराज अपने समस्त संबंध श्री कृष्ण से मानते हैं क्योंकि यदि मन में किसी संबंध की लालसा रहेगी तो मन संसार में भटकेगा इसलिए वे समस्त नाते भगवान से जोड़ने को कह रहे हैं ताकि मन किसी भी रूप में संसार में न भटके। इसी भाव को उन्होंने 'युगल रस' ग्रंथ के निम्न पद में स्पष्ट किया है–

तू मेरा मैं तेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ अंश सनातन तेरा,
तू है अंशी मेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ नित्य दास हरि तेरा,
तू ही स्वामी मेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ नित्य सखा हरि तेरा,
सखा सदा तू मेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ मात पिता हरि तेरा,
तू भी है सुत मेरा, तेरा तेरा तेरा।
मैं हूँ प्रिया, पिया तू मेरा,
मेरा सब कुछ तेरा, तेरा तेरा तेरा।
मेरा प्राण देह है तेरा,
तू देही है मेरा, तेरा तेरा तेरा।

युगल रस : पद–14

संत कृपालु महाराज भक्ति पथ में अनन्यता को विशेष महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार इस अनन्यता के अभाव ने ही हमारा काम बिगाड़ रखा है। हमारे संसार में हर व्यक्ति ईश्वर की भक्ति करता है किन्तु उनकी भक्ति में अनन्यता नहीं है। हम भगवान को भी अपना मानते हैं और संसार को भी । जब तक इस 'भी' को हटाकर 'ही' न लगाएंगे अर्थात भगवान ही मेरे हैं यह भाव दृढ़ न करेंगे तब तक काम नहीं बनेगा। इसी 'ही' अर्थात एक निष्ठ भाव को उन्होंने 'युगल शतक' के निम्न पद में व्यक्त किया है–

कान्हा तू ही मेरा अब जाना, जाना जाना जाना।
श्रुति कह तु ही तो है अंशी मेरा कान्हा,
मैं हूँ अंश तेरा यह जाना, जाना जाना जाना।
श्रुति कह तु ही माता, पिता, भ्राता कान्हा,
सब नाता तो सों यह जाना, जाना जाना जाना।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद-02

इसी अनन्य भाव को उन्होंने 'श्याम श्याम गीत' ग्रंथ के अनेक दोहों में भी स्पष्ट किया है-

सब तजि जोइ भज श्याम अरु श्यामा। श्यामा श्याम भी भजे वाको आठु यामा। (20)
और द्वार जाओ न अनन्य बनो नामा। त्रिगुण त्रिताप, त्रिकर्म, काटें श्यामा। (47)
डेरा डारे नाते दार बैठे उर धामा। उनको निकालो तो मैं आऊँ कह श्यामा। (57)
उर में बिठाना चाहो जग संग श्यामा। अंधकार रवि कभु रहे एक ठामा। (58)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज ने भक्ति के अनन्यता के लक्षण को ही स्पष्ट किया है। जो अन्य समस्त का त्याग कर एक इष्ट की ही साधना करता है तो उसकी साधना स्वयं श्री कृष्ण-राधा करते हैं। उसके त्रिगुण, त्रिताप, त्रिकर्म आदि सब दोष, भगवान स्वयं नष्ट कर देते हैं। भगवान की यही शर्त है कि हृदय में बैठे हुए समस्त संबंधियों एवं मोह के सूत्रों को बाहर निकालो तब ही भगवान का हृदय में प्रवेश होगा। यदि संसार और भगवान दोनों की एक साथ उपस्थिति चाहोगे तो ये वैसा ही होगा कि सूर्य एवं अंधकार कभी साथ नहीं रह सकते ऐसे ही संसार एवं भगवान कभी एक साथ नहीं रह सकते।

भक्ति पथ की इसी अनन्यता को अत्यन्त सुन्दर रूप में, संत कृपालु महाराज ने 'प्रेम रस मदिरा' के निम्न पद में व्यक्त किया है-

नाथ! मम तुम ही सों सब नात।
सुत दम्पति पितु मातु नात कहँ, अब लौं रह पतियात।
अब जान्यों यह नात तबहिं लौं, जब लौं रह या गात।
हौं नहिं गात गात है हमारो, यह जड़ मतिहुँ सुनात।
पुनि मम गात-नात भल कैसे, ह्वै मम नात सकात?

मायिक गात-विषयक मायिक जग, सब अनुभवहिँ लखात।
हौं हौं अंश सनातन हरि को, वेद विदित विख्यात।
जान्यों अब 'कृपालु' बस हमरो, सबरो इक बल भ्रात।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद-60

अर्थात हे श्याम सुन्दर! मेरा नाता एक मात्र तुम ही से है। स्त्री, पति, पिता, माता, पुत्र आदि नातेदारों पर अब तक विश्वास करते थे, अब यह जान गया हूँ कि यह सब नाते तो तभी तक के हैं जब तक यह पंच महाभूत का शरीर है। 'मैं शरीर नहीं हूँ।' यह मेरा शरीर है यह घोर मूर्ख भी बोलता है। फिर मेरे शरीर का नाता, मेरा नाता कैसे हो सकता है। माया से उत्पन्न शरीर का विषय मायिक संसार के पदार्थ हैं। यह सबके अनुभव से सिद्ध है। मैं तो ईश्वर का सनातन अंश हूँ ऐसा वेदादिकों ने निरुपित किया है। 'कृपालु' कहतें हैं- बस, अब हमने जान लिया कि हमारे सर्वस्व एक मात्र श्याम सुन्दर ही हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने भक्ति मार्ग में अनन्यता को आवश्यक लक्षण बताया। अपने इष्ट, गुरु एवं भक्ति मार्ग के प्रति अनन्य रहें। इसी अनन्यता के विषय पर उन्होंने अनेक प्रवचन श्रृंखलाओं में प्रकाश डाला है जैसे- 'सुनहु साधक प्यारे' पद की व्याख्या श्रृंखला में कहा-

"तीन चीज प्रमुख है- हरि, गुरु और हरि गुरु की मिलन वाली पॉवर, भक्ति। इन तीनों में अनन्य रहो।..............तो हरि गुरु और साधना इन तीनों में अनन्यता रखो। अनन्यता माने इनसे बाहर मत जाओ। वह तो ठीक है। किसी के लिए वह भी ठीक होगा। हमारा लक्ष्य एक जगह रहे तो हम आगे बढ़ते जाएंगे। तो........**हरि में गुरु में भक्ति में रह, रति अन्नयहिं प्यारे।"** *सुनहु साधक प्यारे : प्रवचन*

हरि, गुरु एवं मार्ग की अनन्यता को उन्होंने 'राधा गोविंद गीत' के निम्न दोहों में भी निरुपित किया है-

अपने इष्ट में ही गोविंद राधे। हो अनन्यता यह ज्ञान करा दे। (4280)
अपने साधन में गोविंद राधे। हो अनन्यता यह ज्ञान करा दे। (4281)

अपने आचार्य में गोविंद राधे। हो अनन्यता यह ज्ञान करा दे। (4282)
उपर्युक्त अतिरिक्त गोविंद राधे। यदि कहीं मन हो सक्त बता दे। (4283)

राधा गोविन्द गीत : भाग 01, भक्ति

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने अनन्यता को भक्ति का प्रधान लक्षण बताया है।

भक्ति में रूप ध्यान –

संत कृपालु महाराज ने भक्ति में रूपध्यान की साधना को परमावश्यक माना है। उनके मत में चूँकि किसी भी कर्म का कर्ता मन है तथा भक्ति करने का काम भी मन को ही करना है, साधना पथ का अनुगामी भी मन ही है तो उस अस्थिर मन को स्थिर करने हेतु उन्होंने 'रूप ध्यान' का नया मंत्र दिया। अर्थात संत कृपालु महाराज ने मन को भगवान में स्थिर करने का तरीका, मन से भगवान के रूप ध्यान करने को बताया। अर्थात मन से जैसा भी रूप पसंद हो, अपने इष्ट का वैसा रूप बिम्ब अपने मस्तिष्क में बनाना तथा भगवान की लीला आदि का चिन्तन करना। ऐसा करने से मन ईश्वर के ध्यान में संलग्न होने लगेगा। वैसे भी मन को ध्यान एवं चिंतन का अभ्यास है संसार में भी। कई जिज्ञासु ये प्रश्न कर सकते हैं कि हमने भगवान को देखा नहीं हो तो उनका ध्यान कैसे कर सकते हैं ? इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने उत्तर दिया कि इस मायिक संसार एवं मायिक इन्द्रियों से भगवान के दर्शन नहीं हो सकते। जब अन्तःकरण शुद्ध होने पर ईश्वर प्राप्ति होती है तब ही भगवान का साक्षात्कार होगा। इससे पूर्व भगवान की यह कृपा है कि उन्होंने इतनी रियायत दी है कि भक्त साधना के दौरान जैसा मेरा रूप बनाएगा वैसा मैं मान लूँगा। ये ईश्वर की कृपा है कि हम अपनी बुद्धि की सीमा से जो भी भगवान का ध्यान करेंगे वे स्वीकार कर लेंगे और जब ईश्वर प्राप्ति हो जाएगी तब भगवान स्वयं अपने मूल सौन्दर्य से दर्शन देंगे। उन्होंने 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में 'रूप ध्यान' विषय पर विस्तार से स्पष्ट किया कि भले ही भक्त मायिक मन से मायिक ध्यान ही बना सकता है किन्तु उसे फल ईश्वरीय ही मिलेगा क्योंकि भगवान सर्व व्यापक, सर्व अन्तर्यामी एवं अत्यन्त कृपा निधान है। इस प्रकार हर तरीके से ईश्वर का प्रतिक्षण रूप ध्यान करते हुए भक्ति करने से जीव का लक्ष्य सहज ही प्राप्त हो जाता है। जैसा कि 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में उन्होंने

लिखा है- "हमें भक्ति करते समय भगवान का रूप ध्यान अवश्य करना है। रूप ध्यान में प्रकृति से परे का दिव्य भाव मानना एवं वह रूप ध्यान सदा करने का अभ्यास करना है अर्थात रूप ध्यान द्वारा यह सदा महसूस करना है कि हमारे सर्वस्व सदा सर्वत्र हमारे साथ हैं, हमारे हैं तथा हमारे रक्षक हैं।

प्रायः ऐसा होता है कि जो रूप ध्यान करते भी हैं, वे साधना करते समय तो कुछ काल यह महसूस करते हैं कि भगवान मेरे सामने या मेरे अन्तःकरण में विद्यमान हैं, किन्तु पश्चात् बिल्कुल भूल जाते हैं और उनका अनुभव ही नहीं करते। यह साधना ठीक नहीं, क्योकि यदि हमने 10 रूपया कमा भी लिया तो कोई लाभ नहीं जब उसे हमने दस मिनट बाद ही गंवा भी दिया। हम अपने इष्टदेव को सदा सर्वदा अपनी भाँति ही अपने साथ महसूस करें।" *प्रेम रस सिद्धान्त : भक्ति योग, पृ.सं.-242*

इसी रूप ध्यान युक्त भक्ति को उन्होंने अपने समस्त साहित्य में अनेक बार पुष्ट किया है जैसे 'राधा गोविन्द गीत' के निम्न दोहे देख सकते हैं।

मन की है भक्ति भक्ति गोविंद राधे। तैलधारावत मन को लगा दे। (4254)
देशकाल नियम नहिं गोविंद राधे। श्रद्धा भक्ति युक्त होके मन को लगा दे। (4255)
सोइ जन्म सोइ कर्म गोविंद राधे। सोइ मन है धन्य धन्य बता दे। (4257)
जो तैलधारावत गोविंद राधे। श्री कृष्ण का करे स्मरण बता दे। (4258)

राधा गोविन्द गीत : भक्ति

केवल इन्द्रियों से की गई भक्ति को वे भक्ति ही नहीं मानते। वास्तविक भक्ति तो मन की है क्योंकि मन ही समस्त कर्मों का कर्ता है। जिस प्रकार शरीर में आत्मा का महत्व है उसी प्रकार इन्द्रिय भक्ति देह के समान है जबकि मन का रूप ध्यान प्राण सम प्रमुख है जैसा कि 'श्यामा श्याम गीत' के निम्न दोहों में उन्होंने लिखा है-

देह सम कीर्तन नाम गुन धामा।प्रान समान रूप-ध्यान श्याम श्यामा। (07)
अभ्यास ते ही मन लगे कह नामा। बार बार रूप ध्यान करो आठु यामा। (68)
राधा नाम-रूप-गुण-लीला-जन-धामा। याही में लगाओ मन भाव निष्कामा। (73)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात केवल मुख से नाम-गुण गान करना तो मृतक देह के समान है। वास्तविक भक्ति तो रूपध्यान पूर्वक हरि का रूप, नाम, लीला, गुण, धाम का गान है। और इस रूप ध्यान हेतु निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। अभ्यास करते-करते

हरि की रूप ध्यान साधना भक्ति परिपक्व होने लगती है। इसी भाव को उन्होंने 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में व्यक्त किया है–

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा-वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान। (74) *भक्ति शतक*

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि समस्त साधनाओं, तपस्याओं, मार्गों, अर्चनाओं का सार यही है कि प्रेमपूर्वक हरि का रूप ध्यान करना तथा ईश्वर की सेवा वासना, भावना को निरन्तर बढ़ाना यही ज्ञान है, यही, प्रेम है, यही भक्ति है। इसी ग्रंथ में उन्होंने प्राकृत मन से किए गए रूप ध्यान को भी दिव्य बताया तथा इसका वैज्ञानिक कारण भी स्पष्ट किया कि भले ही मन, बुद्धि, देह, प्रकृति से मायिक हैं किन्तु भक्त जब इस मायिक मन से भगवान का रूप ध्यान करता है तो भक्त की भक्ति से स्वरूप शक्ति द्वारा दिव्यता प्राप्त हो जाती है।

प्राकृत मन ते होत है, ज्ञानिन प्राकृत ध्यान।
भक्तन मन हरि कृपा ते, होत दिव्य सच मान। (76) *भक्ति शतक*

इसी रूप ध्यान के सम्प्रत्यय पर उन्होंने अनेक बार अपने प्रवचन साहित्य में भी प्रकाश डाला है। यथा निम्न प्रवचनांश देख सकते हैं–

"तुम किसका नाम ले रहे हो ? भगवान का। तो भगवान का नाम ले रहे हो, लेकिन जब तुम अपनी माँ को पुकारते हो, बेटे को पुकारते हो, नौकर को पुकारते हो तो पुकारने के पहले उसका ध्यान करते हो। ऐ रमेश। तो पहले रमेश दिमाग में आ गया फिर मुँह से निकला रमेश। ऐसे ही पहले भगवान खोपड़ी में आ जाएँ फिर राम कहो। तब माना जायेगा कि तुम कौन से राम को पुकार रहे हो, कौन से श्याम को पुकार रहे हो।

जग में भी काहु जो गोविंद राधे।
पूर्व रूप ध्यान पछि नाम ले बता दे।

अगर उनको खोपड़ी में नहीं लाओगे तो तुम पुकार कहाँ रहे हो ?....... भगवान का रूप ध्यान करते हुए, पुकारने की भावना से रोकर आँसू बहाते हुए जो

नाम संकीर्तन होगा वही असली नाम संकीर्तन है। लेकिन जब तक ये अवस्था नहीं आती तब तक चेष्टा करो, रूप ध्यान बनाने की। अभ्यास करो।"

नाम महिमा : प्रवचन, पृ.सं.-85

भक्ति में इसी रूप ध्यान साधना को 'युगल माधुरी' ग्रंथ में भी देख सकते हैं।

राधे राधे गोविंद गोविंद राधे,
भूलो जनि दोहन पल छिन आधे।
तव सोइ साँचो पिय मन को बता दे,
जग सुख भ्रम लखि मन को हटा दे,
हरि गुरु चरनन मन को लगा दे,
हरि गुरु रूप ध्यान मन ते करा दे।

युगल माधुरी : पद सं.-58

संत कृपालु महाराज कहते हैं कि राधा-कृष्ण ही केवल हमारे हैं। एक पल भी उनको न भुलाना ही जीवात्मा का परम धर्म है। चूँकि मन मायिक है और वह मायिक संसार की ओर ही भागेगा तो उस समय अपनी बुद्धि से मन को बार-बार समझाना होगा कि संसार नहीं अपितु राधा-कृष्ण ही हमारे हैं और मन को हरि गुरु के चरणों में आसक्त करना हो इस हेतु मन से हरि गुरु का रूप ध्यान बनाने का अभ्यास करना होगा। अभ्यास करते-करते ईश्वर से अनुरक्ति होने लगेगी तथा मन संसार से स्वतः दूर होगा। इसी प्रकार 'युगल रस' रचना का निम्न पद भी प्रस्तुत है-

गावो सब हिलिमिलि राधे, राधे राधे राधे।
थकहु नाम गाते जब राधे,
श्वास श्वास जपु राधे, राधे राधे राधे।
जब थकि जाहु तबहुँ तो राधे,
सुमिरिय नित छवि राधे, राधे राधे राधे।
करहु कीर्तन था जप राधे,
ध्यान सहित करु राधे, राधे, राधे राधे।
सब महँ रह 'कृपालु' तव राधे,
इहै भाव रखु राधे, राधे राधे राधे।।

युगल रस : पद सं.-69

इस पद में संत कृपालु महाराज ने साधना का अत्यन्त सुन्दर रूप दर्शाया है। उनके अनुसार सभी भक्तों को साथ मिलकर प्रसन्नता से राधे नाम का गान करना चाहिए। जब नाम गान करते–करते जिह्वा थक जाए तो श्वास–श्वास से राधे नाम का जप करना चाहिए और जब इससे भी थक जाए तो केवल मन से राधा का ध्यान करना तथा ये भाव बनाना की वे सामने खड़ी हैं तथा अब वे मुझसे मिलने ही वाली हैं। इस प्रकार संसार से उदासीन रहते हुए अनन्य भाव से राधा से प्रेम बढ़ाना ही साधना है। भक्ति में रूप ध्यान के महत्व को संत कृपालु महाराज ने 'प्रेम रस मदिरा' के निम्न पद में सुन्दर रूप से निरुपित किया है–

सुनो मन! श्रुति सिद्धान्त विचार।
'यस्यामतं तस्य यतमिति' श्रुति, भाव इहै उर धार।
जानि न सकै ब्रह्म को बुधिबल, विधि हरि हर गये हार।
ताते तजि कुतर्क संशय सब, शरण जाहु हरि द्वार।
रूप ध्यान करि कांत भाव सों, भजु नित नन्द कुमार।
तब 'कृपालु' हो कृपा जासु फल, पाउ प्रेम रस सार।।

प्रेम रस मदिर : सिद्धान्त माधुरी, पद–123

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अरे मन! वेदों का वास्तविक सिद्धान्त सुन। 'यस्यामतं' इस वेद वाणी का यही भाव है कि भगवान को बुद्धि के बल से कोई भी नहीं जान सकता। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तक हार चुके इसलिए सभी कुतर्क एवं शंकाओं को छोड़कर भगवान की शरण जाओ। रूप ध्यान करते हुए कांत भाव से भगवान का निरन्तर भजन कर। 'कृपालु' कहते हैं कि तब उनकी कृपा होगी जिसके परिणामस्वरूप विशुद्ध प्रेम प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार रूप ध्यान युक्त साधना को ही संत कृपालु महाराज ने भक्ति माना है।

भक्ति में निरन्तरता –

भक्ति का एक प्रमुख लक्षण है निरन्तरता। संत कृपालु महाराज ने भक्ति में निरन्तरता को अनिवार्य तत्व बताया। निष्काम, अनन्य, प्रेम के साथ–साथ निरन्तरता भक्ति का प्रधान लक्षण है। उनके अनुसार भगवत्प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निरन्तर हरि में मन का जुड़ाव अनिवार्य है। यदि हम दिन में 23 घण्टे भी भक्ति

करें तब भी काम नहीं बनेगा क्योंकि बाकि का एक घण्टा अवश्य ही संसार में गया होगा। क्योंकि मन यदि भगवान में न होगा तो संसार में अवश्य होगा। मन चुप नहीं बैठ सकता। और यदि अन्तःकरण की शुद्धि करनी है तो निरन्तर हरि भक्ति अनिवार्य है। यदि हमने कुछ देर भी भगवान को भुलाया तो मन पुनः संसार में जाकर मलिन हो जाएगा और इस प्रकार से कभी भी काम नहीं बनेगा। प्रश्न उठता है कि निरन्तर हरि सुमिरन करेंगे तो संसार के कार्य कैसे होंगे ? क्योंकि शरीर संचालन हेतु सांसारिक कार्य भी आवश्यक हैं ? तो इसका समाधान उन्होंने कर्म योग भक्ति से किया। अर्थात संसार के कार्य करते हुए भगवान का स्मरण करना तथा संसार के प्रत्येक कर्म को भगवान को समर्पित करके हम भक्ति में निरन्तरता को बनाए रख सकते हैं। साथ ही हर क्षण ईश्वर को अपने साथ तथा अपने हृदय के भीतर महसूस करते हुए संसार का प्रत्येक कार्य करते हुए भक्ति की निरन्तरता को बनाए रख सकते हैं और उन्होंने वेदों से ईश्वर के हृदय में निवास को प्रमाणित किया कि ऐसा चिन्तन कोरी कल्पना नहीं अपितु वास्तविकता को महसूस करना है। भक्ति की नित्यता को उन्होंने अपने साहित्य में सर्वत्र उद्घोषित किया है। 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहों में भक्ति के नित्य एवं निरन्तरता के लक्षण को देख सकते हैं–

राधे राधे बोल नित, करु राधे को ध्यान।
ऐहैं निज गोलोज तजि, भाजत श्याम सुजान। (80)
मन हरि में तन जगत में, कर्म योग तेहि जान।
तन हरि में मन जगत में, यह महान अज्ञान। (84)
कोउ कह तजु, सब काम कोउ, कह भजु सुन्दर श्याम।
हौं कह दोउ इक संग करु, तब हो पूरन काम।। (37)

भक्ति शतक

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मन! निरन्तर राधे नाम का उच्चारण एवं उनके रूप का ध्यान कर। ऐसा करने से स्वयं कृष्ण भगवान अपना गोलोक धाम त्याग करके तुम्हारे पास आ जाएंगे। और दूसरे दोहे में संत कृपालु महाराज ने भक्ति की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए कर्मयोग भक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए लिखा है कि संसार के कार्य करते हुए मन को निरन्तर हरि में लगाए रखना ही कर्मयोग भक्ति है और यदि शरीर हरि कार्य में लगा रहे किन्तु मन संसार

में रहे तो इससे बड़ा अज्ञान नहीं हो सकता। संसार के कार्यों को छोड़कर भक्ति करने का उपदेश उन्होंने नहीं दिया अपितु संसार के कार्य करते हुए भगवान का भजन करना ही भक्ति है। इससे भक्ति में निरन्तरता भी बनी रहेगी।

भगवत्प्राप्ति के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीवात्मा को भगवान का निरन्तर स्मरण करना होगा जैसा कि 'श्यामा श्याम गीत' के निम्न दोहे में निरुपित किया है–

जो मन बुद्धि दै के भजे आठु यामा। वाकी सँभार करें शिशु जनु श्यामा।। (18)
सब तजि जोइ भज श्याम अरु श्यामा। श्यामा श्याम भी भजें वाको आठु यामा।। (20)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात जो जीव मन एवं बुद्धि को भगवान के चरणों में समर्पित कर निरन्तर उनकी भक्ति करता है, उस भक्त की सुरक्षा, स्वयं राधा रानी उसी प्रकार करती हैं जिस प्रकार एक माँ अपने नवजात शिशु का ध्यान रखती है और जो भक्त निरन्तर आठों याम भगवान का भजन करता है उस भक्त का स्वयं राधा–कृष्ण भी आठों याम भजन करते हैं अर्थात निरन्तर उस जीव का ध्यान करते हैं।

संत कृपालु महाराज ने भक्ति में निरन्तरता लक्षण को 'राधा गोविंद गीत' के दोहों में भी सुन्दर रूप से स्पष्ट किया है–

छहों शास्त्र सार यह गोविंद राधे। आठों याम मन हरि गुरु में लगा दे।। (3679)
मन ते स्मरण नित्य गोविंद राधे। यह है मानसी सेवा बता दे।। (4054)
यत्र तत्र सर्वत्र गोविंद राधे। हरि गुरु सुमिरन मन ते करा दे।। (4063)

राधा गोविन्द गीत

छहों शास्त्रों का सार यही है कि मन को भगवान और गुरु के चरणों में आठों याम, निरन्तर लगाए रखना है। निरन्तर मन से स्मरण करते हुए भगवान की सेवा करना ही मानसी सेवा है तथा साथ ही सर्वत्र संसार में भी भगवान का चिंतन बनाए रखना ही भक्ति की निरन्तरता है। भक्ति की निरन्तरता को संत कृपालु महाराज ने 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के निम्न पद में भी स्पष्ट किया है–

अरे मन! स्वारथ को संसार।
विकसित कुसुम सुवास लेत जिमि, मधुकर करि गुंजार।

बिनु स्वारथ कोउ बात करत नहिं, करु गंभीर विचार।
ताते भजु 'कृपालु' अब निशिदिन, नागर नंद कुमार।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–26

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अरे मन! यह सारा संसार स्वार्थी है। जैसे खिले हुए फूल के ऊपर भंवरा गुंजार करता हुआ सुगंध लेता है किंतु जैसे ही फूल झड़कर गिर जाता है भंवरा उसकी ओर भूलकर भी नहीं देखता। बिना स्वार्थ के संसार में कोई बात तक नहीं करता, इस पर आप गंभीर विचार कीजिए। इसी कारण यही उपयुक्त है कि प्रत्येक समय दिन रात नंद कुमार कृष्ण का ही भजन करें। क्योंकि जीव का परम आनन्द कृष्ण के स्मरण में ही है।

भक्ति की इसी निरन्तरता को 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ के अनेक छन्दों में भी स्पष्ट किया है जैसे–

राधे तोहिं भूलूँ नहिं कभू पल आधे।
भुक्ति मुक्ति माँगूँ नहिं प्रेम सुधा दे।
तोहिं दीन प्रिय मोहिं दीन बना दे।
अपने 'कृपालु' को भी प्रेम दिला दे।

ब्रज रस माधुरी : भाग–3

संत कृपालु महाराज राधा रानी से विनय कर रहे हैं कि हे राधा रानी! ऐसी कृपा कर दो की मैं आपको एक पल भी न भूलूँ। मेरी आपके प्रति जो भक्ति है वह निरन्तर बनी रहे। मैं संसार के भौतिक सुख या मोक्ष की कामना नहीं अपितु आपके प्रेम की ही कामना करता हूँ। मुझे अपना समझ कर अपना प्रेम रस दिला दीजिए।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने भक्ति में निरन्तरता के तत्व को अनिवार्य माना है क्योंकि भक्ति में कुछ देर का अन्तराल मन को पुनः संसार की ओर ले जाएगा तथा जो अन्तःकरण हरि स्मरण से जितना शुद्ध हुआ था वह पुनः अशुद्ध हो जाएगा अतः मन की शुद्धि हेतु निरन्तर हरि स्मरण भक्ति परमावश्यक है।

भक्ति में सर्व सुलभता, सर्वपात्रता, सर्वश्रेष्ठता एवं सरलता –

संत कृपालु महाराज ने भक्ति तत्व के निरूपण में भक्ति पथ की सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध किया है कि ईश्वर प्राप्ति के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्ति मार्ग सबसे सरल है। इसका कारण उन्होंने सिद्ध किया कि भक्ति सर्व सुलभ है, भक्ति के सभी लोग अधिकारी हैं, भक्ति करना सरल है तथा भक्ति सभी स्थानों पर संभव है। भक्ति के इस लक्षण को उन्होंने अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार स्पष्ट किया है। भगवद् भक्ति विषय पर दिए गए प्रवचन में उन्होंने स्पष्ट किया–

"तो संसार से मन हटाने का नाम है वैराग्य और भगवान में मन लगाने का नाम है भक्ति, अनुराग, उपासना, प्रेम। भगवान की भक्ति या अनुराग कैसा होता है ? उसका कौन अधिकारी है ? ये भी समझ लीजिए।............भगवान से प्यार करने में, भक्ति करने में सब अधिकारी हैं। कुत्ते, बिल्ली, गधे, मनुष्य, मनुष्यों में भी सब मनुष्य, यहाँ तक कि इतना बड़ा पापात्मा वाल्मीकि जो राम न कह सके, वो भी अधिकारी है। वो भी महापुरुष हो गया।" *भगवद् भक्ति : प्रवचन, पृ.सं.–49–50*

अर्थात कर्म, योग, ज्ञान मार्ग आदि में तो अधिकारी पात्र के लिए अनेक नियम हैं किन्तु भक्ति एक ऐसा मार्ग है जिसमें नियमों का सर्वथा अभाव है। कोई भी व्यक्ति, कहीं भी, किसी भी भाव से ईश्वर की भक्ति का अधिकारी है। इस सम्प्रत्यय को संत कृपालु महाराज ने अनेक स्थानों पर अपने साहित्य में स्पष्ट किया है जैसे– 'जीव का लक्ष्य' विषय पर दिए गए प्रवचन में उन्होंने कहा– "समस्त जीवों का आमतौर से मनुष्यों का ये धर्म है कि 'अधेक्षजे भक्ति'। भगवान में भक्ति। क्योंकि भक्ति में कोई कठिनाई नहीं, कोई कायदा–कानून नहीं। कर्म में तमाम सारे नियम। ज्ञान में और कड़े कड़े नियम। और भक्ति में कुछ नहीं। कोई नियम नहीं– **न देशनियमस्तस्मिन न कालनियममस्तथा।"**

किस जगह बैठकर भक्ति करें ? अरे किस जगह क्या, आप पाखाने में बैठकर करो। किस समय करें भक्ति ? सवेरे चार बजे ब्रह्म मुहूर्त ? नहीं 24 घण्टे। अपनी माँ से प्यार करते हो ? अपने बाप से करते हो ? बीवी से करते हो ? हाँ। तो क्या उसके लिए कोई खास जगह है और खास समय है ? हर जगह वह माँ अपने बेटे से प्यार कर रही है। बेटा बीमार है, माँ नहा रही है, लेकिन ध्यान उसी तरफ है। खाना खा रही

है, लेकिन ध्यान उसी तरफ है। ऐसे ही भगवान से प्यार करना है। कोई नियम कायदा कुछ नहीं। उसका नाम कौनसा लें। कुछ नहीं। चाहे जो ले लो। क ख ग घ, कुत्ता, बिल्ली, गधा जो चाहे सो मुँह से बोलो। इतनी रियायत दिया है भगवान ने। तो उनकी भक्ति करना बस यही एक मार्ग है और सबसे बड़ी चीज मिले। (ध्यान दो) कोई नियम नहीं, कायदा कानून नहीं और मिले सबसे बड़ी चीज माया निवृत्ति, भगवद् प्राप्ति।"

जीव का लक्ष्य : प्रवचन, पृ.सं.-132

भक्ति की सरलता को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे कहा- "तो भक्ति ही एक मात्र ऐसा मार्ग है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो, जिसके बिना लक्ष्य न प्राप्त हो, जो सबके लिए हो और जो सदा के लिए हो (ध्यान दीजिए) अन्तिम पाँचवा प्वाइन्ट। कर्म स्वर्ग देकर मर जाता है, खतम। ज्ञान अज्ञान को समाप्त किया, खतम और भक्ति आपने शुरु की साधन भक्ति फिर आप पहुँचेंगे भाव-भक्ति पर। फिर भगवद् प्राप्ति हो जाएगी प्रेमा-भक्ति पर, फिर स्नेह भक्ति, मान भक्ति, प्रणय भक्ति, राग भक्ति, अनुराग भक्ति, भावावेश भक्ति, महाभाव भक्ति तक आप चले जाएंगे और सदा अनन्तकाल तक भक्ति आपके साथ रहेगी। वह कभी भी आपका साथ नहीं छोड़ेगी।"

जीव का लक्ष्य : पृ.सं.-136-37

भक्ति तत्व की इस सर्व सुलभता, सर्वपात्रता के गुण को संत कृपालु महाराज ने 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में व्यक्त किया है-

ब्रह्म-प्राप्ति-पथ ज्ञान है, परमात्मा-पथ योग।
कृष्ण-प्राप्ति-पथ भक्ति है, अधिकारी सब लोग।। (25)
लखत रहत नित भक्ति मुख, कर्म, योग अरु ज्ञान।
अति स्वतंत्र है भक्ति पथ, वेद पुरान बखान।। (44) *भक्ति शतक*

संत कृपालु महाराज कृष्ण प्राप्ति का ही साधन बताते हैं, वह है भक्ति। क्योंकि ज्ञान मार्ग का अन्तिम गंतव्य स्थल ब्रह्म की प्राप्ति और योग मार्ग का अन्तिम फल परमात्मा की प्राप्ति किन्तु यदि कृष्ण की प्राप्ति करनी है तो केवल भक्ति ही एक मात्र मार्ग है और भक्ति मार्ग ऐसा मार्ग है जिसकी पात्रता सर्व सुलभ है। सभी प्रकार के मनुष्य भक्ति पथ के अधिकारी हैं। क्योंकि भक्ति मार्ग ऐसा मार्ग है जिसमें ज्ञान एवं कर्म के संयोग की आवश्यकता नहीं है जबकि ज्ञान एवं कर्म मार्ग भक्ति पर निर्भर

हैं। भक्ति मार्ग सर्वथा स्वतंत्र मार्ग है। भक्ति मार्ग निरपेक्ष है तथा सर्व समर्थ है। ऐसा वेदों पुराणों में कहा गया है।

भक्ति पथ की इस सर्वश्रेष्ठता, सरलता, सर्वसुलभता एवं सर्वपात्रता के गुण को 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ में सुन्दर प्रकार से निरुपित किया है।

कर्म, योग, ज्ञान, सत्य गोविंद राधे। किंतु ऐसा कोई नहिं हरि ते मिला दे। (3682)
जीव का कृष्ण ते जो गोविंद राधे। मिलन करा दे सोइ भक्ति बता दे। (3683)
कर्म ते श्रेष्ठ ज्ञान गोविंद राधे। ज्ञान ते श्रेष्ठ है भक्ति बता दे। (3684)
ज्ञानी अरु योगी ते गोविंद राधे। श्रेष्ठ है भक्त सद्ग्रंथ बता दे। (3692)

राधा गोविन्द गीत

संत कृपालु महाराज वेदों से उदाहरण देते हुए भगवत्प्राप्ति के कर्म, योग, ज्ञान मार्ग को हालाकि सत्य बताते हैं लेकिन इन मार्गों की असमर्थता तथा अयोग्यता को सिद्ध करते हुए कृष्ण प्राप्ति का एक मात्र साधन भक्ति को ही सिद्ध करते हैं। उनके अनुसार कर्म से ज्ञान मार्ग श्रेष्ठ है, ज्ञान से भक्ति मार्ग श्रेष्ठ है। ऐसा सभी सद्ग्रंथों में कहा गया है। इसी ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने भगवत्प्राप्ति के मार्ग की योग्यता को सिद्ध करने के पाँच पैमाने बताते हुए भक्ति पथ की सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध किया है।

केवल भक्ति ही ते गोविंद राधे। हरि सेवा लक्ष्य प्राप्त होगा बता दे। (3743)

x x x x x x x x x x

उपर्युक्त सब बातें गोविंद राधे। केवल भक्तिमार्ग में हैं बता दे।। (3752)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज केवल भक्ति मार्ग को ही हरि प्राप्ति का एक मात्र साधन बताते हैं। किसी भी साधन मार्ग की सर्व श्रेष्ठता के पाँच आधार बताए गए हैं– अन्वय, व्यतिरेक, अपेक्षा, सार्वत्रकिता, सदातनत्व। संत कृपालु महाराज ने भगवत्प्राप्ति के मार्ग की पहली कसौटी अन्वयता को बताया है अर्थात जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो, दूसरी कसौटी है व्यतिरेक अर्थात जिसके बिना लक्ष्य की प्राप्ति न हो, तीसरी कसौटी अपेक्षा है अर्थात जो मार्ग किसी दूसरे की अपेक्षा न रखे तथा चौथी कसौटी है सार्वत्रकिता अर्थात जिस साधन को हर स्थान पर अपनाया जा सके अर्थात जिसमें स्थान बाधक न बने तथा पाँचवीं कसौटी है सदातनत्व अर्थात जिसका अवलंब सदा

लिया जा सके। भक्ति अर्थात हरि प्रेम की सर्वश्रेष्ठता को उन्होंने 'युगल माधुरी' ग्रंथ के निम्न छन्द में भी स्पष्ट किया है–

प्रेम अनिर्वचनीय कहाय।
प्रेम कर्म ते रहित बताय।
प्रेम योग ते रहित बताय।
प्रेम ज्ञान ते रहित बताय।
प्रेम सदैव स्वतंत्र बताय।
प्रेम क्षणहिं क्षण बाढ़त जाय।
यही प्रेम अंतिम कहलाय।
यही जीव का लक्ष्य बताय।
प्रेम 'कृपालु' कृपा ते हि पाय।

युगल माधुरी : पद–05

अर्थात प्रेम मार्ग ही एक मात्र ऐसा मार्ग है जिसमें कर्म, ज्ञान, योग की अपेक्षा नहीं है। ये प्रेम मार्ग सर्वथा स्वतंत्र है तथा ये निरन्तर वर्धमान होने वाला मार्ग है और यही प्रेम मार्ग अन्तिम लक्ष्य प्रदाता है। ये प्रेम अर्थात भक्ति ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती है। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी भक्ति अर्थात प्रेम मार्ग की सर्वश्रेष्ठता का कारण प्रेम की वर्धमान प्रवृत्ति को बताया है।

चन्द्र कला जिमि बाढ़े प्रेम आठु यामा।किंतु यामे पूर्णिमा न कहें ब्रज बामा। (226)
प्रेम के अधीन रहे श्याम अरु श्यामा वेद कहें परम स्वतंत्र पूर्ण कामा। (234)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात भक्ति रूपी प्रेम चन्द्र कला के समान निरन्तर बढ़ता ही जाता है किन्तु इसमें पूर्णिमा नहीं आती क्योंकि पूर्णिमा पर आकर चन्द्रकला की वर्धमानता अवरुद्ध हो जाती है तथा पूर्णिमा के बाद चन्द्रकला घटती जाती है किन्तु भक्ति रूपी प्रेम कभी घटता नहीं अपितु बढ़ता ही जाता है। इसी भक्ति प्रेम के सम्मुख परम स्वतंत्र ब्रह्म भी अधीन हो जाता है। भक्ति ही एक मात्र वह साधन है जिसमें किसी प्रकार की औपचारिकता, नियम, कानून या पात्रता की बाधा नहीं है। भक्ति सर्व सुलभ एवं सरल साधन है जैसा कि 'भक्ति शतक' ग्रंथ में उन्होंने निम्न दोहे में स्पष्ट किया है–

देशकाल नहिं नियम कछु, नहिं कछु शिष्टाचार।
सरल हृदय नहिं छल कपट, प्रेम पंथ बलिहार। (41) *भक्ति शतक*

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' के निम्न दोहों में भी भक्ति की सर्व पात्रता को निरुपित किया है–

भक्ति के अधिकारी गोविंद राधे। पतितों ते ब्रह्म तक सब हैं बता दे। (3805)

x x x x x x x x x x

साधक हो या सिद्ध गोविंद राधे। दोनों अधिकारी भक्ति पथ के बता दे।(3814)

योगी हो भोगी हो गोविंद राधे। दोनों अधिकारी भक्तिपथ के बता दे। (3815)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार भक्ति में सर्वपात्रता, सर्वसुलभता एवं सरलता का गुण विद्यमान है।

भक्ति से ज्ञान, वैराग्य, हरि अनुराग की उत्पत्ति –

भक्ति तत्व के निरुपण में संत कृपालु महाराज ने इस समस्या प्रश्न का भी निराकरण किया है कि भक्ति में जग से वैराग्य पहले हो या ईश्वर से प्रेम पहले हो। कई साधक इसी उलझन में उलझे रहते हैं कि पहले सांसारिक वैराग्य की उत्पत्ति हो या पहले हरि अनुराग का अंकुर फूटे। इसी उलझन को उन्होंने सुलझाया कि भक्ति मार्ग ऐसा साधन है जिसमें पैर रखते ही ज्ञान, वैराग्य, हरि अनुराग अपने आप विकसित होते जाएंगे अर्थात जैसे–जैसे भक्त अपनी भक्ति को आगे बढ़ाता है वैसे–वैसे संसार से वैराग्य, ज्ञान तथा हरि प्रेम वर्धमान होने लगता है। जितना–जितना मन भगवान की ओर जाता है उतना–उतना मन संसार से उठने लगता है। हमारा हरि प्रेम 50 प्रतिशत तो जग से वैराग्य 50 प्रतिशत होता है। जैसे–जैसे भक्ति का ये प्रतिशत बढ़ता जाएगा संसार से वैराग्य तथा ज्ञान प्राप्ति का प्रतिशत भी बढ़ता जाएगा। भक्त को इस बात की फिक्र नहीं करना है कि पहले हरि प्रेम करें या पहले वैराग्य का अभ्यास या ज्ञान प्राप्ति का प्रयास। भक्त केवल मन भगवान में लगाए बाकि सब अपने आप होता चला जाएगा। जैसे कि भूख लगने पर व्यक्ति केवल भूख मिटाने हेतु भोजन करता है वह यह नहीं सोचता कि इस भोजन के खाने के बाद क्या–क्या होगा ? भोजन से शक्ति, तृप्ति, वृद्धि, विकास आदि सभी कुछ मिलने लगेगा। इसी प्रकार भक्ति करते जाइए बाकि सब अपने आप होता जाएगा जैसा कि 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहों में भक्ति के उक्त गुण को निरुपित किया है–

मन मन मोहन भजन कर, सजन सनेही मान।
बिनुहिं बुलाये आहहैं, जग विराग अरु ज्ञान। (75)
कर्म, ज्ञान अरु योग को जो भी फल श्रुति गाय।
अनायास बिनु मांगे, भगत सकल फल पाय। (64)
हरि अनुराग विराग जग, आपुहिँ आपु न होय।
मन ते भजन किए बिना, भक्ति न पावे कोय। (14)
जिमि हो शीत निवृत तिन, जिन ढ़िग अगिनि सिधार।
तिमि हो कृपा तिनहिँ जिन, मन जाये हरि द्वार। (30)

भक्ति शतक

अर्थात संत कृपालु महाराज स्पष्ट करते हैं कि हे मन! तुम केवल निरन्तर मनमोहन अर्थात कृष्ण का भजन, भक्ति करो, जग वैराग्य और ज्ञान अपने आप बिना बुलाए ही आ जाएंगे।

भक्ति करने से भक्त बिना माँगे ही कर्म ज्ञान और योग मार्ग के फल परिणाम को भी प्राप्त कर लेता है। मन से ईश्वरीय प्रेम एवं जग वैराग्य ये सभी भक्ति के ही परिणाम है। जिस प्रकार अग्नि के जितने समीप जाएंगे उतनी ही ठण्ड कम होती जाएगी उसी प्रकार जैसे-जैसे भक्ति करते जाएंगे वैसे-वैसे हरि के निकट तथा संसार के आकर्षण से विरक्त होते जाएंगे। भक्ति के उक्त गुण को 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ के अनेक दोहों में निरुपित किया है कि भक्ति रूपी वृक्ष की जड़ है हरि प्रेम। ईश्वर से निष्काम प्रेम युक्त भक्ति करने पर बाकि का ज्ञान, भाव का विकास, अज्ञान की निवृत्ति, संसार से वैराग्य अपने आप होने लगेगा। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने पर फूल, फल, पत्ती, शाखा, उपशाखा में पानी अपने आप पहुँच जाता है। वैसे ही हरि भक्ति ही भगवत्प्राप्ति रूपी वृक्ष की जड़ है।

वृक्ष मूल जल डारो गोविंद राधे। शाखा उपशाखा हो पुष्ट बता दे। (5077)
प्राण हित खाद्य जो गोविंद राधे। देह इन्द्रियाँ सब पुष्ट हो बता दे। (5078)
x x x x x x x x x x
कृष्ण प्रेम आपु ही गोविंद राधे। प्रेमी का उर निग्रन्थ बना दे। (5117)
कृष्ण प्रेम आपु ही गोविंद राधे। संचित पाप पुण्य भस्म करा दे। (5118)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज ने उपर्युक्त दोहों में भक्ति के 'पुष्टि वर्धनम्' गुण का निरुपण किया है कि भक्ति रूपी जड़ में पानी डालने पर समस्त ईश्वरीय भावों का विकास अपने आप होता है। जिस प्रकार भूख लगने पर खाना खाते ही सारा शरीर अपने आप पुष्ट होने लगता है उसी प्रकार भक्ति करने पर ज्ञान, वैराग्य, प्रेम का विकास अपने आप होने लगता है। कृष्ण भक्ति करने पर समस्त चराचर जगत तृप्त होने लगता है। भक्त को जग से स्वमेव वैराग्य होने लगता है साथ ही जितने भी दैवी गुण हैं– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, निग्रह आदि। ये सभी अपने आप भक्त की अन्तर्आत्मा में प्रवष्ठि होने लगते हैं। ईश्वर से प्रेम भक्ति स्वयं भगवान के दिव्य ज्ञान तथा जगत वैराग्य को पुष्ट करती है। भक्ति में आगे बढ़ते–बढ़ते पंचकोश भी जलने लगते हैं। भक्ति करने पर जीवात्मा के समस्त संचित पाप–पुण्य का अंबार भस्म होने लगता है। भक्ति करते ही ईश्वर की जड़ शक्ति माया का भी अत्यन्ताभाव होने लगता है।

भक्ति के उपर्युक्त गुण को 'ब्रज रस माधुरी' के निम्न छन्द में बखूबी निरुपित किया है कि भक्ति अपने आप में कल्पतरु के समान है। भक्ति एक ऐसा साधन है जो सभी साधनों के फल के साथ–साथ भुक्ति मुक्ति, चाहो तो वह भी प्राप्त करवाएगी और यदि दिव्य साधन चाहिए तो दिव्य ज्ञान, दिव्य प्रेम, दिव्य दर्शन भी करवाएगी। भक्ति भक्त के समस्त मायिक दुःखों, पंचक्लेश, पंचकोश, पंच प्रपंच, त्रिदोष, त्रिकर्म, त्रिगुण का नाश कर देती है। भक्ति अविद्या माया, अज्ञान का नाशकर दिव्य ज्ञान का संचार करती है।

भक्ति कल्प तरु सम श्रुति गाय।
भक्ति सबहिं सब फल दिलवाय।
जो चह जग सुख भक्ति दिलाय।
सात स्वर्ग सुख भक्ति दिलाय।
सिद्धि आठहूँ भक्ति दिलाय।
पाँच मुक्तिहूँ भक्ति दिलाय।
पंचक्लेशहूँ भक्ति नसाय।
पंचकोशहूँ भक्ति नसाय।
पंच प्रपंचहूँ भक्ति मिटाय।
तीनिहूँ कर्मन भक्ति नसाय।

तीनि देह ते भक्ति छुड़ाय।
राग द्वेष को भक्ति मिटाय।
विद्या माया भक्ति भगाय।
प्रबल अविद्या भक्ति नसाय।
कर्म धर्म फल भक्ति दिलाय।
ज्ञान योग फल भक्ति दिलाय।
भक्ति पुत्र ही ज्ञान कहाय।
भक्ति पुत्र वैराग्य बताय।
बिनु माँ के सुत ह्वै न सकाय।
सब साधन फल भक्ति बताय।
बिनु हरि भक्ति न माया जाय।
बिनु हरि भक्ति न कोउ सुख पाय।
करहु 'कृपालु' भक्ति बल भाय।

ब्रज रस माधुरी : 03 पद – 12

अर्थात् ज्ञान और जग वैराग्य तो भक्ति महादेवी के ही पुत्र हैं। बिना भक्ति का आश्रय लिए ज्ञान एवं वैराग्य की आशा नहीं की जा सकती। बिना भक्ति के माया निवृत्ति भी नहीं हो सकती। भक्ति की शरण लेते ही दिव्य आनन्द की प्राप्ति भी हो जाती है। भक्ति के उपर्युक्त लक्षण गुण को संत कृपालु महाराज ने 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ के अनेक दोहों में भी निरुपित किया है–

सब तजि जोइ भज श्याम अरु श्यामा।श्यामा श्याम भी भजें वाको आठु यामा। (20)
मायाधीन जीव है अनादि कह बामा। माया ते मुक्ति दिलावें श्याम श्यामा। (21)
माया है मिथ्या ऐसा बको आठु यामा। किंतु माया जाय जब कृपा करें श्यामा। (23)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि जो सब साधनों को छोड़ केवल निष्काम भाव से राधा–कृष्ण की भक्ति करते हैं, उनकी भक्ति तो स्वयं राधा–कृष्ण करते हैं अर्थात स्वयं भगवान भक्त की भक्ति करते हैं। मायाधीन जीव को माया से मुक्ति भी भक्ति से ही मिलती है क्योंकि माया मिथ्या शक्ति नहीं अपितु भगवान की जड़ शक्ति है और भगवान की यह जड़ शक्ति बिना भगवान की कृपा के जीव पर से जा नहीं सकती और भगवान की कृपा केवल भक्तों पर ही होती है। अतः भक्ति का अवलंब ही माया से मुक्ति एवं हरि की प्राप्ति करवा सकता है।

भक्ति के इस अद्भुत गुण को संत कृपालु महाराज ने अपने समस्त साहित्य में सर्वत्र निरुपित किया है यहाँ तक कि अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार भक्ति तत्व को स्पष्ट करते हुए ज्ञान वैराग्य हरि प्रेम की चर्चा की है। जैसे भगवद् भक्ति विषय पर दिए गए प्रवचन में उन्होंने कहा है–

"देखो! आप लोग खाना खाते हो। हाँ 'तुष्टिः पुष्टिः क्षुद्पायोऽनुधासम्' एक गस्सा खाया तीन दिन के भूखे थे। आँख खुल गई। दूसरा गस्सा खाया। ताकत भी आने लगी, तीसरा गस्सा खाया हाँ हाँ। ज्यों–ज्यों आप खाना खाते हैं, त्यों त्यों शक्ति भी आती जाती है, ताकत भी और तृप्ति भी होती जाती है और भूख भी कम होती जाती है और जब फुल हो जाता है पूरा पेट भर जाता है तो आप कहते हैं बस बस बस। आप लोग खाना खाते हैं ? हाँ। उसके बाद क्या होता है खाने का ? मुझे क्या मालूम क्या होता है अरे होगा, मालूम है। डॉक्टरों से पूछ लेना। तुम जो खाना खाते हो उसका तीन भाग होता है। एक भाग से रस बनता है।.............. ऐसे ही आप भगवान की भक्ति कीजिए, ये ज्ञान वैराग्य सब अपने आप होता जाएगा, होता जाएगा, करना नहीं पड़ेगा।...........जैसे खाना खाने के बाद अपने आप हजम हो जाता है। ऐसे ही भगवान के वियोग में जो ज्वाला उठती है, दर्द, उसमें पंचकोश भस्म हो जाता है। इसकी चिन्ता आप न करें।............यानी सारी समस्या आपकी हल हो जाएगी, आप तो केवल भक्ति करते जाओ, बस। केवल भगवान और महापुरुष दो ही की भक्ति हो, ये शर्त है।" *भगवद् भक्ति : प्रवचन, पृ.सं.–57–59*

इस प्रकार संत कृपालु महाराज भक्ति में ज्ञान एवं वैराग्य को अन्तर्निहित मानते हैं। जैसे–जैसे भक्त का हरि अनुराग बढ़ाता जाता है वैसे–वैसे वह दिव्य ज्ञान, दिव्य शक्तियों के समीप जाता चला जाता है तथा उतना ही संसार से वैराग्य भी होने लगता है। अतः भक्त को यह चिन्ता नहीं करनी है कि पहले भक्ति करूँ कि जग से वैराग्य करूँ। भक्ति में सभी कुछ अन्तर्निहित है।

भक्ति में मन बुद्धि की शरणागति –

संत कृपालु महाराज ने भक्ति में मन एवं बुद्धि की शरणागति को ही भक्ति माना है। भक्त जब न केवल मन का अपितु बुद्धि का समर्पण भी भगवान एवं गुरु के श्री चरणों में कर देता है तब ही भक्ति का वास्तविक स्वरूप साकार होता है। अपने

मस्तिष्क को हरि गुरु के सम्मुख झुका देना, शरीर से दण्डवत् प्रणाम करना ही भक्ति या शरणागति नहीं है बल्कि अपनी शुद्ध बुद्धि, तर्क, वितर्क, कुतर्क वाले ज्ञान का समर्पण ही शरणागति है। बिल्कुल भोले बालक बनकर भगवान एवं गुरु के चरणों में बुद्धि एवं मन को शरणागत करने वाला साधक ही सच्चा भक्त है क्योंकि शरणागति का तात्पर्य है– आत्म समर्पण और आत्म समर्पण का तात्पर्य है मन एवं बुद्धि का समर्पण ना केवल शरीर का समर्पण। जब भक्त अहंकार शून्य होकर स्वयं को हरि गुरु के सम्मुख शरणागत कर देता है तब ईश्वर की असीम कृपा से उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है और उसे भगवान के दिव्य स्वरूप के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार एक भोला शिशु पूर्णतया अपनी माँ के प्रति शरणागत होता है, वह किसी प्रकार का बौद्धिक ज्ञान नहीं रखता, तो माँ उस बच्चे की सारी सेवा करती है, उसका ध्यान रखती है, उसकी संभाल करती है, लालन पालन करती है, उसके लिये क्या उचित है क्या अनुचित है उसका निर्णय करती है। उसी प्रकार भगवान एवं गुरु के सम्मुख मन एवं बुद्धि से भोला बालक बनना ही भक्त का लक्षण है।

भगवान एवं गुरु के किसी भी कार्य में बुद्धि न लगाना भी शरणागति है। हम मायिक जीव, दिव्य ज्ञानयुक्त महापुरुष एवं भगवान के क्रिया चरित्र को नहीं समझ सकते। इस मायिक बुद्धि मन से जब हम भगवान का चिन्तन, दर्शन नहीं कर सकते तो उनके रहस्यात्मक कार्यों को कैसे समझ सकते हैं ? ऐसा विचार कर भगवान एवं गुरू के किसी प्रकार के कार्य में बुद्धि नहीं लगाना ही भक्त की शरणागति है और जो गुरु व भगवान के कार्यों में अपनी बुद्धि लगाता है वह भक्ति मार्ग से च्युत हो जाता है और उसका पतन हो जाता है। संत कृपालु महाराज ने अपने समस्त साहित्य में अनेक बार भक्ति के उपर्युक्त लक्षण पर गंभीरता पूर्वक प्रकाश डाला है। वेदों, पुराणों, इतिहास के अनेक उदाहरणों से भक्ति में मन बुद्धि की शरणागति को स्पष्ट किया है कि कुछ न करना ही शरणागति है, कुछ न करने का तात्पर्य मन एवं बुद्धि की शरणागति। 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में इसी शरणागति को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है–

"शरणागति का अभिप्राय ही यह है कि हम कुछ न करें। कुछ न करने का नाम ही शरणागति है। जब तक नवजात बालक कुछ नहीं करता तब तक माँ सब कुछ करती

रहती है। जब बालक कुछ–कुछ करने लगता है तो माँ भी कुछ–कुछ करना कम कर देती है, जब बालक सब कुछ करने लगता है तब माँ कुछ नहीं करती। बस यही उदाहरण पर्याप्त है। जब तक हम कर्तृत्वाभिमान रखते हैं तभी तक हमें कर्मबंधन है एवं कर्ता घोषित किये जाते हैं। जहाँ हमारा कर्तापन समाप्त हुआ हम अकर्ता सिद्ध हो गए।........मुक्ति एवं बंधन में मध्यस्थ कारण केवल मन ही है अतएव हमें मन को ही ईश्वर के शरणागत करना है। मन के शरणागत होने पर सबकी शरणागति स्वमेव हो जाएगी।........जैसे पैरों को बाँधकर मार्चिंग नहीं हो सकती, मुख बंद करके स्पीच नहीं हो सकती, वैसे ही मन को अन्यत्र आसक्त करके ईश्वरोपासना भी नहीं हो सकती। वस्तुतस्तु मन की आसक्ति ही ईश्वर क्षेत्र में उपासना कहलाती है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : शरणागति, पृ.सं.–46

भक्ति में मन बुद्धि की शरणागति को 'भक्ति शतक' के निम्न दोहों में सुन्दर रूप से अभिव्यक्त किया है–

समुझ! समुझ सों श्याम को, समुझ सका नहिँ कोय।
समुझ मिलइ जब श्याम की, समुझ सके बस सोय।(32)
श्याम समझ से श्याम को, समझ सके सब कोय।
श्याम समुझ तब मिलइ जब, समुझ समर्पित होय। (33) *भक्ति शतक*

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मन! तू समझ जा कि इस बुद्धि से ईश्वर को नहीं जाना जा सकता न पाया जा सकता है। जब ईश्वरीय कृपा से दिव्य बुद्धि प्राप्त होती है तब ही उस ईश्वरीय दिव्य तत्व को जाना जा सकेगा और उस दिव्य बुद्धि को पाने के लिए शर्त यह है, इस मायिक बुद्धि का समर्पण। अर्थात इस मायिक मन बुद्धि की शरणागति ही दिव्य ज्ञान, दिव्य मन, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति करवाती है।

भक्ति में मन, बुद्धि की शरणागति को 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के निम्न पद में भी सुन्दर रूप से निरुपित किया है–

अरे मन! तू मेरो मत मान।
अनन्य चेताः सततं यो माँ, गुन येहि गीता ज्ञान।
तन, मन, प्राण समर्पण करि जो, कर नित हरि को ध्यान।
ताको हरि अति सुलभ जान मन, रह न कामना आन।

तर्क, वितर्क, कुतर्क आदि की, तजि दे अपनी बान।
रहु 'कृपालु' सद्गुरु शरणागति, करु गोविंद गुनगान।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–14

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मन! तुम मेरे सिद्धान्त को मान लो। 'अनन्य चेताः' इस गीता महावाक्य का यही अभिप्राय है कि जो तन, मन, प्राण समर्पण करके श्याम सुन्दर का निरन्तर स्मरण करता है, वे उसके लिए सुलभ हैं किन्तु अन्य कामनाएँ नहीं रहनी चाहिए। हे मन! तू तर्क, वितर्क आदि करने की अपनी आदत छोड़ दे। 'कृपालु' कहते हैं कि अपने गुरु की शरण में रहकर गोविंद गुण गाओ।

इसी प्रकार भक्ति में मन बुद्धि की शरणागति को संत कृपालु महाराज ने 'राधा गोविन्द गीत' रचना में सुन्दर रूप में निरुपित किया है–

हरि में लगाओ मन गोविंद राधे। बुद्धि को हरि की शरण बता दे। (974)
अब लौं किया तो किया गोविंद राधे। जैसे भी हटे किन्तु किन्तु को हटा दे। (975)
किंतु जब हट जाए गोविन्द राधे। झट पट हठी मन हरि में लगा दे। (976)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि ईश्वर के प्रति मन बुद्धि को शरणागत करो। अब तक तो संसार में मन बुद्धि का समर्पण किया किंतु अब ईश्वरीय क्षेत्र में किन्तु, परन्तु वाली बुद्धि को शरणागत कर लो। जैसे ही बुद्धि को भगवान के श्री चरणों में समर्पित करो तो साथ में मन का भी समर्पण तुरन्त कर लो अर्थात मन से हरि, गुरु का चिन्तन और प्रेम। आगे इसी ग्रंथ में उन्होंने शरणागति को और स्पष्ट किया है–

मन दे दे बुद्धि दे दे गोविंद राधे। यही है प्रपन्न परिभाषा बता दे। (1066)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात मन एवं बुद्धि की शरणागति ही वास्तविक शरणागति है। हरि गुरु की रूचि में रूचि रखना। हरि गुरु के भाव कार्यों में बुद्धि न लगाना। हरि गुरु आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करना ही शरणागति है। इसी क्रम में आगे और स्पष्ट किया कि यदि

मन हरि गुरु के शरणागत है तो तन एवं इन्द्रियों से किया गया कार्य, फल हीन है अर्थात शरीर की क्रिया का कोई औचित्य नहीं है। निरन्तर मन एवं बुद्धि हरि गुरु के शरणागत होने पर तन का कर्म अकर्म हो जाता है।

यदि मन हरि में हो गोविंद राधे। तन करे कर्म अकर्ता बता दे। (1080)
यदि मन हरि में हो गोविंद राधे। तन ते किया कर्म कभु फल ना दे। (1081)
आत्मा अकर्ता है गोविंद राधे। इन्द्रियाँ अकर्ता मन कर्ता बता दे। (1082)
मन का ही कर्म कर्म गोविंद राधे। याते रैन दिन मन हरि में लगा दे। (1087)

राधा गोविन्द गीत

आगे इसी ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने यह भी स्पष्ट किया कि मन बुद्धि की ऐसी शरणागति से क्या होगा ?–

जो भी हो प्रपन्न वाकी गोविन्द राधे। आपु हरि भक्ति करें गीता बता दे। (977)
गर्भस्थ शिशु ज्यों गोविंद राधे। निज लात मारै मातु हँसि के भुला दे। (978)
ऐसे ही हरि भी गोविंद राधे। प्रपन्न के अपराध पै ध्यान ना दे। (979)

x x x x x x x x x x

शरण में जाऊँ यदि गोविंद राधे। माया छुड़ा के योग माया लगा दे। (989)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात मन बुद्धि की शरणागति का प्रति फल संत कृपालु महाराज ने बताया कि ऐसी शरणागति से स्वयं भगवान उस भक्त के भक्त बन जाते हैं। जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु गर्भ में माँ को पैर से प्रहार करता है किन्तु माँ उसका बुरा नहीं मानती बल्कि उसको हँस के टाल देती है उसी प्रकार भगवान भी प्रपन्न (शरणागत) भक्त के अपराधों को क्षमा कर देते हैं। जो ईश्वर के पूर्ण शरणागत हो जाता है, भगवान स्वयं उसके क्रीत दास बन जाते हैं और भक्त का सम्पूर्ण योगक्षेम करते हैं। भगवान में मन बुद्धि की शरणागति करते ही त्रिगुण, त्रिकर्म, त्रिताप, पंचक्लेश, पंचकोश आदि सभी दोष भस्म हो जाते हैं। ऐसी शरणागति से भक्त की विद्या व अविद्या दोनों माया भाग जाती है। ऐसी शरणागति से माया जीव का पीछा छोड़ देती है और योग माया से जीवात्मा जुड़ जाती है। इस प्रकार की शरणागति से चौरासी लाख चराचर योनियों के चक्र से जीव बाहर निकल आता है। उस जीव पर भगवान की निरन्तर कृपा बरसती है।

मन बुद्धि की इसी शरणागति को संत कृपालु महाराज ने 'श्याम श्याम गीत' ग्रंथ के दोहों में भी स्पष्ट किया है।

जो मन बुद्धि दै के भजे आठु यामा। वाकी संभार करे शिशु जनु श्यामा। (18)
कोरे शब्द ज्ञान ते बने ना कछु कामा। मन करो शरणागत पद श्री श्यामा।(30)
मन ही शुभाशुभ कर्म करे बामा। याते मन ते ही करो भक्ति आठु यामा। (31)
मन ने ही बांधा कर्मपाश कह बामा। काटे पाश मन ही शरण गहि श्यामा। (32)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात् संत कृपालु महाराज के अनुसार जो जीवात्मा अपने मन बुद्धि का समर्पण राधा-कृष्ण के चरणों में कर देती है तो उस भक्त जीवात्मा की सुरक्षा स्वयं राधा रानी (श्यामा) नन्हें शिशु के समान करती हैं। शरणागति का तात्पर्य है मन को हरि गुरू के चरणों में समर्पित करना ना कि शब्दों से सिर्फ कहना कि हम आपकी शरण में हैं। शब्दों से नहीं मन में पूर्ण शरणागति का भाव होना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक कर्म वह चाहे शुभ हो या अशुभ, उसका कर्ता मन ही है। मन से जो भी हमने सोचा भले ही शरीर से कुछ और किया हो किन्तु कर्म तो मन का ही माना जाएगा। इस मन ने ही अनन्त जन्मों से जीवात्मा को कर्मबंधन में बांध रखा है और ये मन ही है जो इस कर्मबंधन को काट सकता है। इसका एक ही उपाय है कि मन राधा-कृष्ण के श्री चरणों में शरणागत कर दो। इसी ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने मन बुद्धि की शरणागति में आने वाली बाधाओं को भी स्पष्ट करते हुए उसका उपाय बताया है।

माना मन अति चंचल कह बामा। बार बार समझाओं मन तेरी श्यामा। (33)
तेरे हैं अनन्त पाप कह ब्रज बामा। याते धीरे धीरे मन भायेंगी श्यामा। (34)
मान लो पतित आपु कहँ कह बामा। बन ठन के जनि जाओ ढिंग श्यामा। (37)
मन में निराशा जनि लाओ कह बामा। आशा रखो एक दिन पिघलेंगी श्यामा।(38)
मेरी थी, मेरी हैं, मेरी रहेंगी भी श्यामा। दृढ़ विश्वास रहे यह आठु यामा। (39)
बार बार जग ते हटाओ मन बामा। बार बार श्याम में लगाओ आठु यामा। (44)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात् माना कि मन की प्रकृति अति चंचल है। वह एक जगह कुछ देर से अधिक नहीं ठहरता किन्तु बार-बार अभ्यास से, तत्व ज्ञान से मन को यह समझाने पर की तुम्हारी एक मात्र संबंधी तो राधा रानी अर्थात् हरि गुरु हैं तो निरन्तर अभ्यास से मन लगने लगेगा। मन एक बार में, झटके से भगवान में नहीं लगेगा क्योंकि

अनन्त जन्मों के अनन्त पापों से हमारा अन्तःकरण अशुद्ध है, इसलिए धीरे–धीरे अभ्यास से ही यह मायिक गंदगी मन से निकलेगी और भगवान में मन लगने लगेगा। मन की इस अशुद्धि को हटाने का एक उपाय यह है कि स्वयं को मन से पतित मानते हुए, स्वाभाविक रूप से भगवान की शरणागति लो। झूठ, कपट, कृत्रिमता का त्याग कर सरल स्वभाव से भगवान के चरणों में मन लगाने से निश्चय ही ईश्वर की कृपा होगी। क्योंकि हमारे मन में अनन्त जन्मों से दंभ का भाव कूट–कूट कर भरा है कि हम कुछ हैं ? अहं के भाव का त्याग कर, निश्छल भाव से भोले शिशु के समान हरि गुरु की शरणागति करनी है। निरन्तर स्वयं को पतित मानते हुए आँसू बहाकर हरि गुरु को पुकारो, भले ही कितना भी समय लगे। यह आशा मन में बनाए रखनी है कि हमारी राधा रानी एक दिन अवश्य मेरी पुकार सुनेंगी और मुझे हृदय से लगाएंगी। निरन्तर मन में यह दृढ़ विश्वास रखना है कि राधा–कृष्ण ही मेरे हैं, मेरे थे, मेरे रहेंगे। निरन्तर यही भाव बनाए रखने से निश्चय ही भगवान की कृपा होगी। अनन्त जन्मों से, मन का स्वभाव है संसार का चिन्तन करने का, लेकिन बार–बार अभ्यास करने से अर्थात् बार–बार मन को संसार से हटाकर, भगवान में लगाने का अभ्यास करने से निश्चित रूप से एक दिन ऐसा आएगा जब मन स्वतः ही हरि गुरु के निरन्तर शरणागत हो जाएगा और हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो जाएगी।

इसी ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने मन बुद्धि की शरणागति के फल को भी स्पष्ट किया है–

शरणागत हाथ बिके श्याम अरु श्यामा। औरों की लिखा पढ़ी करें उर धामा।(15)
भक्तों का योगक्षेम वहन करें श्यामा। पतितों का पाप लिखें बैठि उर धामा।(19)
सब तजि जोइ भज श्याम अरु श्यामा। श्यामा श्याम भी भजे ताको आठु श्यामा।(20)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात् जो भक्त मन बुद्धि की शरणागति करता है ऐसे भक्त के लिए श्यामा श्याम स्वयं बिक जाते हैं अर्थात् भक्त भगवान की भक्ति नहीं करता अपितु भगवान उसकी भक्ति करने लगते हैं। ऐसे शरणागत भक्तों का सम्पूर्ण योगक्षेम स्वयं राधा–कृष्ण करते हैं। अनन्य भाव से जो हरि गुरु की शरणागति करता है तो ऐसे भक्तों की भक्ति स्वयं भगवान करते हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने भक्ति तत्व के प्रधान लक्षणों में मन बुद्धि की शरणागति को सर्वथा महत्वपूर्ण माना है।

दैन्यभाव भक्ति की आधार शिला –

संत कृपालु महाराज द्वारा प्रणीत भक्ति तत्व में दैन्य भावना भक्ति की आधारशिला है। संत कृपालु महाराज जीव के परम चरम लक्ष्य, दिव्य आनन्द की प्राप्ति हेतु एक मात्र भक्ति मार्ग को ही समर्थ मानते हैं और यह भक्ति बिना दैन्य भाव के विकसित नहीं हो सकती। इसको भी वैदिक तर्क सहित उन्होंने सिद्ध किया कि जीव सदा ब्रह्म का दास है तथा अनादिकाल से जड़ माया के फेरे में उलझा हुआ अनन्त पाप–पुण्यों से ग्रसित है तथा अपने अंशी के दासत्व से दूर है। इस ब्रह्म के अंश को शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति तब ही हो सकती है जब वह स्वयं को पतित महसूस करते हुए ईश्वर से मिलन एवं सेवा, प्रेम, दर्शन की प्रार्थना करे। बिना दैन्य भाव के उसे परम ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। दैन्य भाव जीवात्मा के भीतर समाहित समस्त प्रकार के अहंकार का मर्दन करता है तथा जीव को परम शुद्ध बना देता है। दैन्य भाव जीवात्मा के अन्तःकरण को पवित्र बनाता है। दैन्य भाव से तात्पर्य तृण से बढ़कर दीन भाव, वृक्ष से बढ़कर सहिष्णु भाव, सबको सम्मान देना, स्वयं सम्मान न चाहने का भाव है। अर्थात् जीव स्वयं को मान अपमान से शून्य कर दे तथा सभी में एक मात्र भगवान की उपस्थिति का भाव रखे। भक्त वही है जो सब में भगवान की भावना रखे। भक्त भगवान के सम्मुख सदा दीनता का भाव रखे क्योंकि दैन्य भाव ही भक्ति की आधारशिला है। भक्ति की इस आधारशिला को संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में भली प्रकार से स्पष्ट किया है। अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार उन्होंने दैन्य भाव के समस्त विज्ञान को स्पष्ट किया जैसे–

"भक्ति मार्गावलंबी को सर्वप्रथम उपर्युक्त तीन शर्तों को पूरा करना होगा। 1. तृण से बढ़कर दीन भाव रहे। 2. वृक्ष से बढ़कर सहिष्णु भाव रहे। 3. सबको सम्मान दे, स्वयं सम्मान न चाहे। हम लोग स्वयं को अच्छा कहलवाने का प्रयत्न करते हैं, यह महान पतनकारक है। हमको अच्छा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे यदि कोई हमारी बुराई करता है तो हम फील करते हैं, उस व्यक्ति पर क्रोध करते हैं, उससे शत्रुता रखते हैं, शत्रु भाव से उसी का चिन्तन करते हैं। यह अपनी महती हानि करते हैं। जिस

मन में शुद्ध हरि गुरु को लाने का अभ्यास करना है, उसमें उस पतित को बार-बार स्थान देते हैं, इससे अन्तःकरण और अशुद्ध होता है। देखो! एक सिद्धान्त सदा समझ लो, जब तक हमको भगवत्प्राप्ति नहीं हो जाती। तब तक हम पर माया का अधिकार रहेगा। जब तक माया का अधिकार रहेगा, तब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सब दोष रहेंगे। इसके अतिरिक्त पिछले अनन्त जन्मों के पाप भी रहेंगे क्योंकि भगवत्प्राप्ति पर ही समस्त पाप भस्म होते हैं। यथा-

सर्व धर्मान् परित्यप्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि या शुचः।। *गीता 18.66*

अब सोचों-यदि कोई मुझे कामी, क्रोधी, लोभी, पतित, नीच अनाचारी, दुराचारी, पापाचारी कहता है तो गलत क्या है- सच को सहर्ष मानकर उस दोष को ठीक करना चाहिए।"

इसी क्रम में आगे उन्होंने मान अपमान के भाव को स्पष्ट करते हुए कहा कि- "अहंकार से बचना और अपमान को फील न करना साधना की आधारशिला है। यह बात साधना करने वाले जीवों के लिए श्री गणेश है। पाँचों इन्द्रियों को जीतना और किसी से अनुराग न करना फिर भी संभव है किन्तु मान-अपमान की फीलिंग जब तक नहीं मिट्ती तब तक आप में अहंकार सदा रहेगा एवं बढ़ता ही जाएगा। संकीर्तन में आपके आँसू नहीं आते, यह अहंकार के कारण है और अगर आँसू आते हैं और साधक सोचता है, वाह! हमें तो आँसू आते हैं- यह सूक्ष्म अहंकार है। इसका प्रकट में आना कठिन है। इस अहंकार को सिर्फ महापुरुष ही बतला सकता है और इसी अहंकार को ठीक करने के लिए ही संत की विशेष आवश्यकता होती है। हम अपनी मायिक बुद्धि से यह निश्चय नहीं कर सकते कि हम अहंकार कर रहे हैं। इसलिए मान अपमान पर विचार न करते हुए हमें यह सोचना है कि हम तृण से बढ़कर दीन किस प्रकार बनें ? हम दीन नहीं हैं लेकिन लोकरंजन के लिए यह भावना रहती है कि लोग हमें दीन समझें-यह भी अहंकार है।"

भक्ति की आधार शिला : प्रवचन, पृ.सं.-23-24

इस प्रकार भक्त मन में सदा दीन भाव रखकर आँसू बहाकर जब अपने शरण्य की आराधना करता है तब उसे जल्दी अपने लक्ष्य की प्राप्ति होती है। साधना में आँसू न आना, हमारे मन में अहंकार एवं दैन्य भाव के अभाव का सूचक है। भक्त

बनना है तो दीनता की पराकाष्ठा पर पहुँचना होगा। कोई किसी भी प्रकार का अपमान करे किन्तु मन में उसकी चुभन न हो यही दैन्य भाव है। भक्ति में इस दैन्य भाव को उन्होंने अपने लिखित साहित्य में भी अभिव्यक्ति किया है जैसे 'भक्ति शतक' ग्रंथ का निम्न दोहा प्रस्तुत है–

सब साधन सम्पन्न कहँ, पूछत सब संसार।
साधन हीन प्रपन्न कहँ, पूछत नन्द कुमार।।(39) *भक्ति शतक*

जिसे अपने समस्त साधनों का बल है अर्थात् धन बल, विद्या बल, सौन्दर्य बल, बुद्धिबल आदि से सम्पन्न व्यक्ति को तो सारा संसार ही आदर देता है किन्तु जो साधनहीन है, जिसके पास किसी प्रकार का बल नहीं है, जो निराधार होकर ईश्वर की शरण में जाता है, जो संसार के किसी बल का अहंकार नहीं करता, जो सदा दीन भाव से शरण्य की शरण में रहता है ऐसे दीन भक्त की संभाल तो स्वयं कृष्ण भगवान करते हैं। संत कृपालु महाराज भक्ति में दीन भाव को इतना महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में एक पूरा अध्याय ही दैन्य माधुरी के रूप में निरुपित किया है। इस ग्रंथ के दैन्य माधुरी अध्याय में कुल 105 पदों की रचना की गई है। यथा –

कहौं का, तुम सों नंद कुमार।
वासों कहत फबत जो उर की, नहिं जानत सरकार।
खरे खरे को तो संसारहुँ, सबै निबाहन हार।
पै मो सम खोटे को तो प्रभु, इक तुम्हरो दरबार।
यद्यपि दयायाचनाहूँ को, नहिं हमरो अधिकार।
तदपि 'कृपालु' कहौं पुनि कासों, को पतितन रखवार।

प्रेम रस मदिरा : दैन्य माधुरी, पद–29

अर्थात् एक भक्त भगवान से कहता है हे नंदकुमार! तुमसे कुछ कहते शोभा नहीं देता। कहना तो उसी से शोभनीय है जो हृदय की न जानता हो। हे श्यामसुन्दर! अच्छे–अच्छे लोगों को तो संसार में भी सब निबाह लेते हैं, किन्तु मुझ सरीखे खोटे को तो एक मात्र तुम्हारे ही दरबार का सहारा है। यद्यपि मुझे क्षमा मांगने का भी अधिकार नहीं है, क्योंकि क्षमा मांगने का अभिप्राय यह होता है कि पुनः अपराध न करे। 'कृपालु' कहते हैं तथापि फिर और किससे कहूँ, पतितों को अपनाने वाला और कौन है।

इसी प्रकार भक्ति में दैन्य भाव को 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ के निम्न दोहों में भी अभिव्यक्त किया है।

हरि मन लाए नहिं गोविंद राधे। केहि बल पै इतराय बता दे। (107)

निज सब बल तजु गोविंद राधे। निर्बल बनि बल हरि को बना दे। (908)

x x x x x x x x x

यौवन दो दिन गोविंद राधे। आयु भी है चार दिन मद क्यों बता दे। (919)

बल नहिं काल सम गोविंद राधे। पुनि बल का अभिमान क्यों बता दे। (920)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात् उक्त दोहों में संत कृपालु महाराज ने भक्त को दीन भाव हेतु प्रेरित करते हुए कहा है कि हे जीवात्मा। तुम हरि में मन नहीं लगाते। तुम्हें किस बात का अहंकार है ? संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अपने समस्त साधन बल को त्याग कर, अपना बल, हरि का बल बना दो। अर्थात् ईश्वरीय प्रेम एवं कृपा को ही अपना आधार बनाओ। इस संसार में जितने भी मायिक बल है जैसे तन, यौवन, धन आदि का बल। ये सारे बल तो नाशवान हैं। एक दिन ये सभी नष्ट हो जाएंगे लेकिन हरि का बल सदा हमारे साथ रहता है। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि ये निश्चित है कि जो भी इस संसार में आया है वह एक न एक दिन अवश्य जाएगा, तो फिर क्यों इस संसार में हम धन का संचय करते हैं। बड़े-बड़े धुरन्धर इस संसार में आये और खाली हाथ चले गए। धन, आयु, यौवन, सौन्दर्य आदि सभी कुछ क्षणिक और नाशवान हैं। जिस दिन काल अपना बल दिखायेगा तो सारे बल शून्य हो जाएंगे। अतः दीन भाव से हरि में मन लगाकर भक्ति करने से जल्दी ही लक्ष्य की प्राप्ति होगी।

भक्ति में दैन्य भाव को संत कृपालु महाराज ने 'युगल रस' के छन्दों में भी अभिव्यक्त किया है जैसे निम्न छन्द प्रस्तुत है-

अपनी ओर लखु राधे, राधे मेरी राधे।
बिनु कारण करुणा कर राधे,
अस कह रसिकन राधे, राधे मेरी राधे।
तुम ही मम जानत हौं राधे,
मानत नहिं मन राधे, राधे मेरी राधे।

आपुन दोष दुरावत राधे,
दोष देत तोहिं राधे, राधे मेरी राधे।
पतित 'कृपालु' पतित ते राधे,
पतित पावनी राधे, राधे मेरी राधे। *युगल रस : पद–83*

अर्थात् संत कृपालु महाराज राधा रानी से दैन्य भाव से विनय करते हैं कि हे राधे! आप मेरी ओर न देखें क्योंकि मैं तो अनन्त जन्मों का पापी हूँ, मेरे पास आपको रिझाने के लिए कोई गुण नहीं है। आप तो अपनी ओर देखो। अर्थात आपका स्वभाव अकारण करुणा का है। अतः आप मुझ जैसे गुणहीन पर कृपापूर्वक ध्यान दीजिए। मैं तो ऐसा अपराधी हूँ कि ये जानते हुए कि मेरी संबंधी तो केवल एक आप हो किन्तु फिर भी मेरा मन निरन्तर इस बात को नहीं मानता। मेरा मन अपने दोषों की ओर नहीं देखता बल्कि भगवान को ही दोष देता है कि आपने मेरा उद्धार नहीं किया। किंतु फिर भी कृपालु महाराज को यह भरोसा है कि आप पतित पावनी अर्थात पापियों का पाप धोने वाली हो और मेरे जैसे पापी का भी कल्याण आप ही करोगी। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ में भी संत कृपालु महाराज ने भक्ति में दैन्य भाव को अभिव्यक्त किया है–

जीभ घिस गई गाते गाते तव नामा। अब या तो प्रेम दे या ले ले प्राण श्यामा। (138)
माँगता रहूँगा रो रो प्रेम निष्कामा। बुरा नहीं मानूँगा तू दे या ना दे श्यामा। (139)
श्यामा श्याम गीत

अर्थात् संत कृपालु महाराज बड़े दैन्य भाव से राधा जी से अनुनय विनय कर रहे हैं कि हे राधा रानी! आपको बुलाते बुलाते अब मेरी सार्मथ्य खत्म हो गई है। अब या तो आप अपना प्रेम मुझे दीजिए या फिर मेरे प्राणों का हरण कर लो क्योंकि अब आपका वियोग मुझसे नहीं सहा जा रहा।

भक्ति में इसी दैन्य भाव को संत कृपालु महाराज ने 'युगल शतक' ग्रंथ के निम्न छन्द में भी अभिव्यक्त किया है।

रो रो के पुकारूँ तोहिं कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
मेरो कोइ साधन बल नहिं कान्हा,

तू ही मम बल कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तू तो अकिंचन का ही बस कान्हा,
मैं भी तो अकिंचन कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
लो अपनाय कृपालुहिं कान्हा,
तुम 'कृपालु' अति कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।

युगल शतक : पद–20

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे कृष्ण! मैं तुम्हें रो रो के पुकार रहा हूँ। आप मुझे अपना दर्शन दे दीजिए। मेरे पास इन आँसूओं के अलावा और कोई साधन बल नहीं है जिससे आपको रिझा सकूँ। मेरा तो एक बल मात्र आप ही हो। सुना है आप तो साधनहीन अकिंचन भक्त के वस में रहते हैं तो मेरा आपसे आग्रह है कि मैं भी तो अकिंचन हूँ। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप इस अकिंचन कृपालु को अपना लो क्योंकि तुम तो सदा से ही अति कृपालु हो।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य भक्ति में दैन्य भाव से परिपूरित है। उनके अनुसार बिना दीनता के भगवान को पाया नहीं जा सकता क्योंकि जीव का वास्तविक स्वरूप किंकर है। ईश्वर के प्रति सदा कैंकर्य भाव ही जीव को तुरन्त लक्ष्य की ओर अग्रसित करता है। भक्त संसार के समस्त जड़, चेतन पदार्थों में भी सदा अपने इष्ट के ही दर्शन करता है। संसार में इसी कारण वह सभी के साथ दीनता, नम्रता, अहंकार शून्यता का व्यवहार करता है। जैसा कि प्रवचन साहित्य की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट किया है–

"भक्त बनना है तो सबमें भगवान को देखो किसी का अपमान न करो। कड़क न बोलो। उसको दुःखी न करो 'परपीड़ा सम नहिं अधमाई'। सबसे बड़ा पाप कहा गया है दूसरे को दुखी करना। कम बोलो, मीठा बोलो और सहनशीलता बढ़ाओ, नम्रता बढ़ाओ, दीनता बढ़ाओ। इससे साधना जो किया है या जो कर रहे हो वो पूँजी बनी रहेगी।" *साधक सावधानी : प्रवचन, 20/10/2000, पृ. सं.–05*

इस प्रकार संत कृपालु महाराज विनम्रता और दीनता को भक्ति की आधारशिला मानते हैं।

भक्ति में माधुर्य भाव –

भक्ति के संदर्भ में संत कृपालु महाराज ने भगवान के सभी अवतारों एवं रूपों में कृष्ण अवतार को सर्वश्रेष्ठ एवं परम पुरुष के रूप में सिद्ध किया है। उन्होंने भगवान के अवतारों में किसी प्रकार का भेद नहीं माना लेकिन रस के दृष्टिकोंण से कृष्ण अवतार को सबसे रसमय बताया। जैसा कि 'राधा गोविंद गीत' में लिखा है–

दस अवतार मुख्य गोविंद राधे। मीन कच्छप वराह नृसिंह बता दे। (6890)
वामन परशुराम गोविंद राधे। राम बलराम बुद्ध कल्कि बता दे। (6891)
सब अवतार मधुर गोविंद राधे। कृष्ण लीला मधुरातिमधुर बता दे। (6892)

राधा गोविंद गीत : अवतार

भगवान के सभी अवतारों में कृष्ण रूप सबसे मधुर, प्रेममय, कृपामय और सौन्दर्य से परिपूर्ण है। संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में भगवान कृष्ण की ही भक्ति के पीछे तर्क दिया है कि कृष्ण अवतार प्रेम रूप एवं रस का पुंज है। जैसा कि 'राधा गोविंद गीत' में उन्होंने लिखा–

कृष्ण अवतार ऐसा गोविंद राधे। लता पता को भी दिव्य प्रेम दिला दे।(6907)
कृष्ण अवतार ऐसा गोविंद राधे। ब्रह्मलीन को भी ब्रज वृक्ष बना दे। (6908)
कृष्ण अवतार ऐसा गोविंद राधे। पूतना को भी हरि धाम दिला दे। (6909)
सब अवतारों के गोविंद राधे। मूल अवतारी श्री कृष्ण हैं बता दे। (6910)
कृष्ण भगवान आवैं गोविंद राधे। एक कल्प में एक बार बता दे। (6911)

राधा गोविंद गीत, अवतार

अर्थात् भगवान का कृष्ण अवतारी स्वरूप इतना दया एवं प्रेममय है कि वे लता पत्तों को भी दिव्य प्रेम से सरोबार कर देता है। कृष्ण अवतार ऐसा है जो ब्रह्म में लीन महापुरुषों को ब्रज में वृक्ष बना देता है। कृष्ण स्वरूप अत्यंत कृपामय है। इसका उदाहरण पूतना है। पूतना जैसी बाल घातिनी राक्षसी को भी हरि धाम दिया। वैदिक सत्य यही है कि भगवान के सभी अवतारों में कृष्ण मूल अवतारी हैं।

उन्होंने कृष्ण को ही आराध्य एवं इष्ट माना और राधा–कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव की भक्ति को अपने साहित्य के माध्यम से सम्प्रेषित किया है। सबसे पहले

उन्होंने माधुर्य भाव का अर्थ स्पष्ट किया कि परम प्रियतम श्री कृष्ण के प्रति न केवल प्रिय का भाव अपितु स्वामी, सखा, सुत, पति आदि समस्त भावों से परिपूर्ण है माधुर्य भाव। जैसा कि 'सुनहु साधक प्यारे' प्रवचन साहित्य में उन्होंने स्पष्ट किया है–

"भगवान कहते हैं देखो हमारे यहाँ ये सब चक्कर नहीं है। हम ही माँ है, हम ही बाप है, हम ही पति हैं, हम ही भाई हैं, हम ही बेटा हैं सब हमको बना लो। संसार में तो नहीं बना सकते आप। अरे बनाना तो दूर अगर बोल दे मुँह से तो अकाण्ड काण्ड खड़ा हो जाए। कोई स्त्री पति से कहे 'बेटा'! इधर आना देखो फिर क्या हाल होगा। और भावना बना ले वो, वो तो और बड़ा अपराध है, पाप है। लेकिन भगवान के यहाँ ये सब नहीं। **त्वमेव सर्वं मम देव देव।** भगवान ही हमारे सब कुछ हैं। यानी अनेक रिश्तों के लिए मन न भटके ये रियायत किया भगवान ने हमारे लिए। सब कुछ हमको मान लो। एक–एक सैकण्ड में चेंज करो। ये कन्हैया मेरा बेटा है इसलिए कह रहा हूँ कन्हैया, कनुआ इधर आ। और फिर हे श्यामसुन्दर। प्राण वल्लभ। लो पति हो गए। हे पिता ? मेरे प्रभु! आ जाओ! यानी कोई वहाँ प्रतिबंध नहीं है। इतनी रियायत कर दिया भगवान ने।" *सुनहु साधक प्यारे : पृ.सं.–50–51*

अर्थात् जीव के समस्त संबंध श्री कृष्ण से हैं। सभी भावों से ईश्वर का भजन, ईश्वर से प्रेम ही माधुर्य भाव है। भगवान कृष्ण से अनन्य प्रेम भाव को संत कृपालु महाराज ने अपने पद्य साहित्य में यत्र तत्र अभिव्यक्त किया है। जैसे 'प्रेम रस मदिरा' के निम्न पद प्रस्तुत हैं– जिनमें उन्होंने कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव को निरूपित किया है–

नाथ! मम तुम ही सों सब नात।
सुत दंपति पितु मातु नात कहँ, अब लौं रह पतियात।
अब जान्यों यह नात तबहिं लौं, जब लौं रह यह गात।
हौं हौं अंश सनातन हरि को, वेद विदित विख्यात।
जान्यों अब 'कृपालु' बस हमरो, सबरो इक बलभ्रात।

प्रेम रस माधुरी : सिद्धान्त माधुरी पद–60

अर्थात् भक्त अपने शरण्य कृष्ण से कहता है कि मेरे सारे नाते एक मात्र तुम से ही हैं। संसार के पुत्र, पति, माता–पिता आदि नातों को ही अब तक अपना माना

था। किंतु अब यह जान गया हूँ कि ये सब तो शरीर के नातेदार थे वास्तविक आत्मा के रिश्तेदार तो एक मात्र आप ही हो। अब मुझे पता चला है कि मैं तो ईश्वर का सनातन अंश हूँ जैसा कि वेदों में कहा गया है। कृपालु कहते हैं कि बस अब एक बात मुझे जानने में आ गई है कि हमारे सभी नाते श्यामसुन्दर से ही हैं।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें उन्होंने कृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर माधुर्य प्रेम व्यक्त किया है।

कान्हा तू ही मेरा अब जाना, जाना जाना जाना।

रसिकन कह तु ही स्वामी मम कान्हा,

मैं हूँ दास यह जाना, जाना जाना जाना।

रसिकन कह तू ही सखा मम कान्हा,

मैं भी सखा यह जाना, जाना जाना जाना।

रसिकन कह तु ही मम सुत कान्हा,

मैं हूँ माता पिता तव जाना, जाना जाना जाना।

रसिकन कह तु ही मेरो पिय कान्हा,

मैं हूँ तेरी प्रेयसि जाना, जाना जाना जाना।

युगल शतक : पद सं.-02

अर्थात भक्त भगवान कृष्ण से कहता है कि हे कान्हा! मैं अब समझ गया हूँ कि एक मात्र तुम ही मेरे हो। मेरे समस्त संबंध एक मात्र तुम से ही हैं। संत रसिक जन बताते हैं कि तुम ही मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम ही मेरे सखा हो, तुम ही मेरे पुत्र और मैं तुम्हारी माँ और पिता हूँ।

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ का निम्न छन्द दृष्टव्य है जिसमें भी संत कृपालु महाराज ने कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव व्यक्त किया है-

तू प्रियतम मैं प्यारी, प्यारी प्यारी प्यारी।

प्राण जाय भल पै व्रत प्यारी,

छुटै, न तो सन यारी, प्यारी प्यारी प्यारी।
प्रियतम सेवा ही चह प्यारी,
चाह न और हमारी, प्यारी प्यारी प्यारी।

युगल रस : पद सं.–28

अर्थात जीवात्मा कृष्ण से कहती है कि हे कृष्ण तुम मेरे प्रियतम हो और मैं तुम्हारी प्यारी हूँ और मेरी ही इच्छा है कि भले ही मेरे प्राण निकल जाए किन्तु तुम्हारे साथ मेरी यारी न छूटे। तुम ही सदा मेरे प्रियतम बने रहो। कोई कामना मेरे हृदय में न रहे।

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अरे मन! श्यामसुन्दर का निरंतर भजन कर। क्योंकि समस्त संसार में एक मात्र कृष्ण ही तुम्हारे सच्चे मीत हैं। अब तक संसार में जिन पुत्र, पति, माता–पिता, मित्र आदि को अपना मान रखा था वे तो सभी स्वार्थ पर आधारित हैं। सब कुछ जानकर भी तुम नहीं समझ रहे हो। जान लो कि यह मानव देह बार–बार नहीं मिलेगी। जो करना है इसी देह में करना होगा।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें भी उन्होंने कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव को ही निरूपित किया है–

तू ही तू ही तू ही तो है मेरा नन्दनन्दन।
मैं भी मैं भी मैं भी तो हूँ तेरा नन्दनन्दन।
तू ही मेरा तू ही मेरा स्वामी नन्दनन्दन।
तू ही मेरा तू ही मेरा सखा नन्दनन्दन।
तू ही मेरा तू ही मेरा सुत नन्दनन्दन।
तू ही मेरा तू ही मेरा पिय नन्दनन्दन।
तू ही मम माता पिता भ्राता नन्दनन्दन।
तेरा ही कहा हुआ है यह नन्दनन्दन।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद 25

अर्थात हे कृष्ण! तुम ही केवल मेरे हो और मैं भी तुम्हारा हूँ। अर्थात मेरे तो केवल एक तुम ही हो और मेरे जैसे कई होंगे जो आपके होंगे। भक्त कहता है कि तुम

ही एक मात्र मेरे स्वामी हो, तुम ही एक मात्र मेरे मित्र हो, तुम ही एक मात्र मेरे सर्वस्व हो। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ में संत कृपालु महाराज ने गोपी एवं कृष्ण प्रेम को भी माधुर्य भाव से परिपूर्ण बताया है तथा इस प्रेम का आधार निष्काम प्रवृत्ति को बताया है–

माधुर्य भाव ही था ब्रज ब्रज बामा। माधुर्य में भी रहा भाव निष्कामा। (248)

ब्रज नामा प्रेम यहँ बँधे श्याम श्यामा।धन्य धन्य निष्काम प्रेम ब्रज बामा। (250)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात माधुर्य प्रेम का साकार उदाहरण ब्रज की गोपियाँ हैं जिन्होंने भगवान कृष्ण से सदा निष्काम प्रेम किया। चाहे कृष्ण उन्हें छोड़कर मथुरा चले गए किंतु गोपियों का प्रेम कम नहीं हुआ क्योंकि उनका भाव माधुर्य था। पिय की रूचि में ही रूचि रखना ही उनका प्रेम था। उनके माधुर्य प्रेम का आधार निष्काम भाव था।

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ के दोहों में संत कृपालु महाराज ने भगवान कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव को अभिव्यक्त किया है–

हम दास स्वामी हरि गोविंद राधे। हरि ते हमारा सब नाता बता दे। (781)

x x x x x x x x x x

मेरा तू मेरा तू गोविंद राधे। बार बार सोचना ही हरि ते मिला दे। (4512)

राधा गोविंद गीत

अर्थात् हमारे समस्त नाते भगवान राधा–कृष्ण से ही हैं। हम उनके दास, वे ही हमारे स्वामी हैं। केवल हरि से प्रेम करना तथा तुम ही मेरे हो, ऐसा भाव बनाते ही कृष्ण की प्राप्ति हो जाती है।

इसी प्रकार 'युगल माधुरी' ग्रंथ का निम्न छन्द भी कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव को अभिव्यक्त करता है।

मेरो प्रियतम कुँज बिहारी, तन मन धन उन पर वारी।

मेरो प्राण प्राण बनवारी, विहरत नित संग बिहारी।

मम पिय बनि गयो बनवारी, मैं बनि गइ उनकी प्यारी

लिए मधुर भाव उर धारी, किये यार निकुंज बिहारी।

युगल माधुरी : पद–15

निष्कर्ष –

इस प्रकार विशुद्ध भक्ति तत्व का निरूपण करना संत कृपालु महाराज के साहित्य का विशेष प्रयोजन रहा है। समस्त वैदिक मार्गों में सबसे सरलतम मार्ग भक्ति ही है। काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार संत कृपालु महाराज का समस्त भक्ति साहित्य लोक मंगल, उपदेश प्रवृत्ति के साथ रस एवं दिव्य आनन्द की अनुभूति पर आधारित है। प्रस्तुत प्रयोजन स्वरूप लिखित उनका समस्त भक्ति साहित्य सहृदयजनों को विशुद्ध भक्ति तत्व के सैद्धान्तिक स्वरूप से परिचित करवाकर भक्ति रस से सराबोर करता परिलक्षित होता है। पाठ्क इस भक्ति साहित्य का पठन एवं श्रवण कर निश्चय ही लौकिक मायिक दुखों से निवृत्त होकर दिव्य आनन्द की अनुभूति के साथ–साथ राधा–कृष्ण के नाम, रूप, लीला, गुण आदि में निमग्न होकर भक्ति रस का आस्वादन करता परिलक्षित होता है।

5.1.3 राधा–कृष्ण लीला माधुर्य का निरूपण

संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का एक विशेष प्रयोजन राधा–कृष्ण के लीला माधुर्य का निरूपण करना भी है। संस्कृत, हिंदी, पाश्चात्य काव्याशास्त्रानुसार यह सिद्ध है कि लोकमंगल एवं आनन्द की अनुभूति ही साहित्य रचना के मुख्य प्रयोजन होते हैं। अन्य प्रयोजन जैसे धर्म, आयु, यश, कीर्ति, उपदेश प्रवृत्ति एवं चतुर्वर्ग की प्राप्ति आदि उक्त दोनों प्रमुख प्रयोजनों में अन्तर्निहित है। आनन्द अनुभूति का लक्ष्य कवि एवं सामाजिक दोनों पक्षों के संदर्भ में सिद्ध होता है। काव्य प्रयोजन की अवधारणा में आनन्द प्राप्ति के उद्देश्य का भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों काव्य शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है। यथा– 'काव्य प्रकाश' रचयिता आचार्य मम्मट ने भी काव्य प्रयोजन के निरूपण में, यश, अर्थ, व्यवहार परिज्ञान, अनिष्ट की श्रति, आनन्दानुभूति एवं कान्तासम्मित उपदेश को मान्यता प्रदान की है–

काव्य यशसेऽर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतर क्षतये।

सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे।।

काव्य प्रकाश : 1.2

उक्त समस्त प्रयोजनों में भी कवि एवं पाठक निष्ठ आनन्द अनुभूति को आचार्य मम्मट ने प्रमुखता प्रदान की है। इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का प्रस्तुत ग्रंथ की प्रस्तावना में स्वयं उन्होंने प्रस्तुत काव्य प्रयोजन को स्पष्ट किया है। "यद्यपि यह लीला पुरुषोत्तम भगवान श्यामसुन्दर की लीलाओं के रस सागर का एक बिन्दु मात्र है फिर भी यदि जिज्ञासुओं की कुछ तृप्ति इसके द्वारा हो सकी तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा। यदि किसी महानुभाव को कुछ भी संतोष या लाभ न प्राप्त हो वे इसे 'स्वान्तः सुखाय' ही समझ कर लेंगे।"

प्रेमरस मदिरा : भाग 01, प्राक्कथन

अर्थात रसानुभूति उनके साहित्य के प्रस्तुत प्रयोजन का आधार है। यह रसानुभूति उन्होंने पाठक एवं स्वनिष्ठ उद्घोषित की है। भक्तिकालीन कृष्ण भक्त महाकवि सूरदास द्वारा प्रणीत 'सूरसागर' भी इसी प्रयोजन का सुन्दर उदाहरण है। उन्होंने भी पाठकों में रसानुभूति एवं लोकमंगल के उद्देश्य से ही राधा–कृष्ण की बाल लीलाओं का सुन्दर रसमय चित्रण किया है। उसी परंपरा की मौलिक उद्भावना के रूप में संत कृपालु महाराज ने सिद्धान्त पक्ष के निरूपण के साथ–साथ रसमय साहित्य का लेखन भी किया है। तत्वज्ञान से परिपूर्ण साहित्य के साथ–साथ उन्होंने श्री राधा–कृष्ण का वेद सम्मत एवं विभिन्न महापुरुषों की वाणी सम्मत रसमय लीलाओं का चित्रण कर पाठकों को रस से सराबोर करने का पूरा प्रयास किया है। उनका पद्यबद्ध साहित्य भगवत्प्राप्ति के सिद्धान्त पक्ष के साथ–साथ रस से परिपूर्ण भी है। उन्होंने शास्त्रों में वर्णित श्री कृष्ण अवतार से संबंधित लीलाओं को अपने शब्दों और भावों में निरूपित कर उन्हें नया रूप दिया है जो पाठकों को और ज्यादा रस प्रदान कर रहा है। उनके साहित्य में वर्णित श्री राधा–कृष्ण की समस्त लीलाएँ शास्त्र सम्मत हैं तथा राधा–कृष्ण के सुन्दरतम् स्वरूप पर आधारित हैं। उन्होंने कृष्ण की बाल लीला, किशोर लीला, अवतार लीला के साथ–साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य इन चारों भावों की लीलाओं का विशद चित्रण किया है। उनके द्वारा चित्रित

लीलाएँ शास्त्र सम्मत होते हुए भी नवीन और मौलिक है क्योंकि उन्होंने अत्यन्त सरलतम रसमय भाव एवं भाषा से उन लीलाओं को नया रूप दिया है।

राधा-कृष्ण की लीलाओं का चित्रण उन्होंने मुख्य रूप से 'प्रेम रस मदिरा', राधा गोविंद गीत, श्यामाश्याम गीत ग्रंथों में किया है साथ ही ब्रजरस माधुरी, युगल माधुरी, युगल शतक, युगलरस ग्रंथों में यत्र-तत्र कहीं पर लीला माधुर्य की झांकी प्रस्तुत की है। संत कृपालु महाराज द्वारा निरूपित लीलाओं के कुछ उदाहरण निम्नानुसार प्रस्तुत हैं।

राधा-कृष्ण बाल लीला माधुर्य -

संत कृपालु महाराज ने राधा-कृष्ण के जन्मोत्सव से लेकर उनके बालपन से संबंधित लगभग सभी लीलाओं को भाव एवं शब्द बद्ध किया है। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में कृष्ण एवं राधा की बाल लीलाओं से संबंधित 120 पद संगृहीत हैं उदाहरण स्वरूप कृष्ण के जन्मोत्सव की लीला का निम्न पद प्रस्तुत है-

नंद के भये आजु आनंद।
ब्रह्म सच्चिदानंद रूप धरि, प्रकट्यो आनन्दकंद।
देव वृन्द दुँदुभिहिं बजावत, कहि कहि जय ब्रज चन्द।
मंगलगान करत ब्रह्मादिक, गाइ चारि श्रुतिछन्द।
नारद, शारद, ज्ञान-विशारद, भाग्य सराहत नन्द।
होत 'कृपालु' सुकृत यशुमति लखि, वाणिहुँ वाणी बंद।

प्रेमरस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी, पद सं.-04

अर्थात आज नन्द के घर में आनन्द मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ है, क्योंकि आनन्दकंद सच्चिदानन्द ब्रह्म श्री कृष्ण चन्द्र ने सगुण साकार अवतार धारण किया है, जिसके आनन्द में देवताओं के समूह 'ब्रज चन्द की जय हो' ऐसा कहकर दुंदुभी करते हुए मंगलगान कर रहे हैं। ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ महर्षि नारद एवं सरस्वती जी नन्द के भाग्य की भूरि भूरि सराहना कर रहे हैं। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि यशोदा मैया के पुण्य पुंज के बखान करते समय साक्षात् सरस्वती की भी वाणी रुक जाती है।

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज ने राधा जी के जन्म एवं बाल लीलाओं का चित्रण भी अत्यंत सुन्दर रूप में किया है –

ह्लादिनी को सार प्रेम प्रेम सार श्यामा। कीरति की गोद आईं बरसाने धामा। (310)
आई आई शोर चहुँ ओर ब्रज धामा। भोरी भारी नथवारी प्यारी प्यारी श्यामा। (311)
ब्रह्मा, विष्णु, शिव अरु उमा रमा धामा। हुए सब मोहित लखि छवि श्यामा। (312)
ब्रह्म वेद पाठ करें बरसाने धामा। शिव करें ताण्डव संग गोप बामा। (313)
भानु ने तपस्या कौन कीन्ही कौन धामा। जाते बने बाब शक्ति ह्लादिनी श्यामा। (314)
कीरति के भाग की न समता बामा। लाली को लाड लडायो आठु यामा। (315)
धन्य भूप भानु धन्य कीर्ति रानी बामा। चूमें चिपटावें दुलरावें नित श्यामा। (316)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात ह्लादिनी शक्ति का सार प्रेम है। प्रेम का सार श्री राधा हैं। वही श्री राधा बरसाने ग्राम में कीर्ति माँ की गोद में प्रकट हुईं। ब्रज मण्डल में चारों दिशाओं में कोलाहल मच गया। सभी नर–नारी 'आ–गई', 'आ–गई' कहकर शोर मचा रहे थे। इस प्रकार नासिका में सुन्दर नथ धारण करने वाली भोली भाली किशोरी राधा बरसाने में प्रकट हुई। राधा की मनोहारिणी छवि देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव व उमा, रमा आदि महाशक्तियाँ भी मोहित हो गई। बरसाना धाम वेद पाठ से गुंजरित हो उठा। शिव गोपियों के साथ ताण्डव नृत्य करने लगे। वृषभानु ने न जाने किस स्थल पर कौनसी तपस्या की, जिस कारण उनको ह्लादिनी शक्ति श्री राधा का पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री राधा की जननी कीर्ति के भाग्य की समानता भला कौन कर सकता है जिन्होंने लाडली राधा को निरन्तर भाँति–भाँति के लाड़ लड़ाये। वृषभानु राजा धन्य हैं, उनकी रानी कीर्ति भी धन्य हैं, जिन्हें श्री राधा को चूमने, चिपटाने एवं अनेक प्रकार से प्यार करने का नित्य अधिकार प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार बाल कृष्ण भगवान की घुटने के बल चलने की निम्न लीला का चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर है–

अजिर महँ बिहर ब्रह्म साकार।
घुटुवनि चलत नवनि मुख मण्डित, दीठि दिठौना धार।
कबहुँक चलत मंदगति कबहुँक, द्रुत चल करि किलकार।

कबहुँक लखि दूरहिं ते माटी, दौरि लेत मुख डार।
जो यशुमति मुख-माटि निकारत, लोटत धरणि मझार।
लै 'कृपालु' निज अंक यशोमति चूमति करति दुलार।

प्रेम रस मदिरा : पद सं. 14

अर्थात यशोदा के आंगन में सगुण साकार ब्रह्म नन्द लाल बनकर खेल रहे हैं। वे यशोदा के लाल, मुख में माखन लगाये हुए, टोना से बचने के लिए ललाट में काला टीका लगाए हुए, घुटनों के बल चल रहे हैं। कभी घुटनों के बल बड़ी मस्ती से चलते हुए कभी किलकारी मारकर अत्यंत तेज चलने लगते हैं। कभी दूर से ही कहीं पड़ी हुई मिट्टी को देखकर जल्दी से वहाँ जाकर, उसे अपने मुख में डालकर खाने लगते हैं। जब यशोदा मैया मिट्टी खाते हुए देख लेती है तथा मुख से मिट्टी निकाल देती है, तब पृथ्वी पर लोटने लगते हैं मानो उनका सर्वस्व छिन गया हो। 'कृपालु' कहते हैं कि उन लोटते हुए गोपाल को यशोदा अपनी गोद में ले-लेकर अनेक प्रकार से लाड़ करती है एवं बार-बार मुख चूमती है ताकि चुप हो जायें। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी राधा-कृष्ण की बाल लीलाओं का सुन्दर चित्रण किया है-

भानु घर भारी भीर गोप ब्रज बामा। सब ब्रजवासी चाहें दर्शन श्यामा। (320)
कोऊ गावे कोऊ नाचे भानु भूप धामा। कोउ बजावे ढोल ढप ब्रज बामा।(321)
तिल धरने की नाहिं ठौर भानु धामा। भारी भीर एक स्वर बोले 'जय श्यामा'।(322)

श्यामा श्याम गीत

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ में भी उन्होंने राधा-कृष्ण की बाल लीलाओं का मधुर चित्रण किया है। यथा-कृष्ण के जन्मोत्सव पर नन्द बाबा के उत्साह का चित्रण अत्यधिक सुन्दर रूप में किया है-

नंद बंदीजन गोविंद राधे। आशीर्वाद देने आये बता दे। (7460)
दुंदुभी भेरी आदि गोविंद राधे। लगे बजने सब बाजने बता दे। (7461)
सब ब्रजवासी भी गोविंद राधे। गावें बधाई नाचें मत्त हो बता दे। (7462)

राधा गोविन्द गीत

'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ में भी राधा-कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण है। छोटे से कन्हैया पालने में झूल रहे हैं और झूलते हुए कन्हैया के हाव भाव, हँसना, रोना तथा

माता यशोदा का कन्हैया को लाड़ करना, लोरी गाके सुनाना आदि मनमोहक लीलाओं का चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप में निम्न छन्द में किया है–

पालने झूलत यशुमति लाल।
चंदन को पलनो गोपाल।
मातु झुलावति होति निहाल।
लोरी गावति दै कर ताल।
कर पग पटकत किलकत लाल।
कर सों पग अँगुठा मुख डाल।
फरकावत अधरन गोपाल।
गूँ गूँ कर मुख शब्द रसाल। *ब्रज रस माधुरी : पद सं.–85*

इसी प्रकार जब छोटे से कृष्ण को नींद नहीं आती तो वे माँ यशोदा को अपने पास बुलाकर उन्हें कोई कहानी सुनाने को कहते हैं–

आजु कान्ह को नींद न आय।
याते कान्ह बुलायो माय।
मों ढिंग बैठो कह बलभाय।
कोउ कहानी माय सुनाय।
नींद आय बलभाय झुलाय।
राम 'कृपालु' माय बलभाय। *ब्रज रस माधुरी : पद सं.–84*

इसी प्रकार छोटी सी राधा माँ कीर्ति को खेल के दौरान किसी बाबा से मिलने की बात बताती हैं कि कोई एक बाबा अचानक मेरे सामने आ गए न तो उनके दाड़ी थी ना ही मूँछ थी उनके हाथ में एक वीणा थी और वे मुझे प्रणाम कर मेरी परिक्रमा कर रहे थे–

ओली मोली माय थुनु कह लाली तुतुराय।
खेलति रहि गहवर लुका छिपी माय।
संग रहीं ललितादिक सखि समुदाय।
इतने में तहँ आय इक बाबा माय।

सुर नर मुनि सब पूजत नित वाय।
हैं ब्रह्म 'कृपालु' कुँवरि तव माय।

ब्रज रस माधुरी : पद सं.–129

इसी प्रकार 'युगल माधुरी' ग्रंथ में निरूपित निम्न लीला का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है जिसमें छोटे से कन्हैया माँ यशोदा को गुरु दुर्वासा से मिलन एवं दर्शन की बात बताते हैं–

ओली माय थुनु कह कान्ह तुतुराय।
दुलु बिनु धान नहिं कभु कोउ पाय।
हाँ हाँ लाला गुरू ही दे ज्ञान कह माय।
तूने यह कैसे जाना मोय तो बताय।
आजु रह्यो खेलत सखा संग माय।
यमुना के तट तहँ ब्रजवासी आय।
पुनि मुनि प्रवचन दिये तहँ भाय।
अभी तो तू भोरो भारो छोटो बलभाय।
बड़ा हो 'कृपालु' गुरु मुनि को बनाय। *युगल माधुरी : पद 30*

माँ कन्हैया को बड़ा होने पर दुर्वासा मुनि को ही गुरू बनाने का आश्वासन देती है।

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ में भी बाल लीला चित्रण किया है। छोटे से कृष्ण माँ यशोदा से झगड़ रहे हैं कि आज बलराम भैया ने बताया कि आप मेरी माँ नहीं हो। माँ यशोदा उन्हें विश्वास दिलाती है कि तुम ही मेरे पुत्र हो–

तू नहिं मोरी मैया, मैया मैया मैया। झगरत अति बिरुझाय कन्हैया,
लेत बलैया मैया, मैया मैया मैया। मैया कह का चहिय कन्हैया,
मैं न लाल तव कहत कन्हैया, तू चुराय मोंहि मैया, मैया मैया मैया।
मोंहि बतायेउ आजुहिं भैया, परो मिल्यो तू मैया, मैया मैया मैया।

युगल रस : पद सं.–39

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा–कृष्ण की बाल सुलभ लीलाओं का माधुर्य समाहित है।

युगल किशोर लीला माधुर्य –

'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के 'युगल माधुरी' प्रकरण में युगल माधुर्य से परिपूर्ण 23 पद रचे गए हैं। इसी ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है। जिसमें ब्रज की एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि देखो राधा–कृष्ण की नवीन जोड़ी कितनी सुन्दर लग रही है–

देखु सखि! युगल नवल सरकार।
पीत वरन उत नागरि ता पर, नीलाम्बर बलिहार।
नील वरन इत नागर ता पर, पीताम्बर रिझवार।
उत अति सरल सुभायन मोहिनि, मोहति नंदकुमार।
इत अति चपल सुभायन मोहन, मोहत भानु दुलार।
लखि जोरी 'कृपालु' बरजोरी शंभु समाधि बिसार।

प्रेम रस मदिरा : युगल माधुरी पद सं.–05

अर्थात अरी सखि! श्यामा–श्याम की मनोहर झांकी देख! उधर तो पीले रंग की वृषभानुनन्दिनी के ऊपर नीले रंग का वस्त्र शोभित हो रहा है और इधर नीले रंग के श्याम सुन्दर के ऊपर पीले रंग का वस्त्र अपनी छटा दिखा रहा है। उधर तो श्री किशोरी जी अपने अत्यंत सरल स्वभाव से श्याम सुन्दर को मोहित कर रही हैं और इधर श्याम सुन्दर अपने अत्यंत चंचल स्वभाव से श्री किशोरी जी को मोहित कर रहे हैं। 'कृपालु' कहते हैं कि इस मनोहर युगल जोड़ी को बरबस देखकर भगवान शंकर अपनी ब्रह्म समाधि भूल जाते हैं।

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ में भी युगल सरकार की लीलाओं को चित्रित किया है–

जब गल बँहियाँ दै गोविंद राधे। दोनों खड़े हों निकुंज में बता दे। (6548)

x x x x x x

गौर तेज आभा में गोविंद राधे। श्याम तेज आभा निमग्न बता दे। (6553)

राधा गोविंद गीत : श्री राधा–कृष्ण

अर्थात राधा–कृष्ण जब गलबाहीं देकर कुँज में विहार करते हैं तो सारी सखियाँ अपलक होकर निहारती रहती हैं तथा रस से सराबोर होती रहती हैं न केवल सखियाँ

अपितु ब्रज के मोर, चकोर, भँवरे, मृगी भी इस सौन्दर्य का पान करते हुए ठगे से कह जाते हैं। गौर वर्णीय राधा नीले वस्त्र धारण करती हैं और नील वर्णीय कृष्ण पीत वस्त्र धारण करते हुए अत्यंत सुन्दर सुशोभित हो रहे हैं। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ के दोहों में भी युगल किशोर लीला का माधुर्य संत कृपालु महाराज ने प्रवाहित किया है–

साँकरी गली में श्याम छेड़ दिए श्यामा। श्याम थे अकेले बाँध्यो मिलि ब्रज बामा।(260)
आगे चलैं अलि संग कुंज गली धामा। पाछे चलैं लाल चूमें पदचिह्न श्यामा। (425)
महल के भीतर सेवा करें बामा। बाहर बुहारी देवें श्याम दास श्यामा। (426)
फूल तोड़े श्याम माला गुहे एक बामा। ललिता जू पहिरावें सेवा कुँज श्यामा। (427)
रास करि आईं श्यामा संग ब्रज बामा। विजन डुलावैं श्याम पोछें स्वेद श्यामा। (428)
श्यामा बैठीं कुँज महँ संग अष्ट बामा। श्याम दूर ही ते खड़े पूछें 'आउँश्यामा'।(432)
श्यामा श्याम गीत

अर्थात् किशोर कृष्ण एवं किशोरी श्यामा जब ब्रज की एक संकरी गली में मिले तो कृष्ण ने राधा जी को छेड़ दिया, इस पर राधा जी नाराज़ हो गईं और उनकी सभी सखियों ने मिलकर कृष्ण को पकड़ कर बांध दिया। कृष्ण, राधा से इतना प्रेम करते हैं कि जब राधा कुँज गलियों में अपनी सखियों के साथ विहार करती हैं तो कृष्ण चुपके–चुपके उनके पीछे–पीछे आते हैं और उनके पद्चिह्नों को चूमते हैं। ब्रज की गोपियाँ तो राधा के महल के भीतर सेवा करती हैं किंतु कृष्ण तो दास बनकर राधा के महल के बाहर बुहार लगाते हैं। कुंज में कृष्ण स्वयं फूल चुनते हैं तथा गोपी से माला बनवाकर श्यामा जी के लिए भिजवाते हैं। जब राधा–कृष्ण रास करके लौटते हैं तो राधा जी के थक जाने पर कृष्ण चँवर ढुला कर उनका पसीना सुखाने का प्रयास करते हैं। जब राधा जी अपनी अष्टसखियों के साथ कुँज में बैठी होती हैं तो कृष्ण भी वहाँ पहुँच जाते हैं और उनके साथ बैठने की आज्ञा माँगने लगते हैं।

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ में भी राधा, कृष्ण को उलाहना देती हुई कहती हैं कि मैं तुम्हें अपना प्रियतम बनाकर पछता रही हूँ। क्योंकि तुम तो मुझे अपनी सर्व प्रिय सखी कहा करते थे किंतु अब मथुरा जाकर कूबड़ी में आसक्त हो गए हो।

तेरी यारी में मैं मारी गई बनवारी, ऐसी यारी पर बलिहारी बलिहारी
तूने कहा था है तू प्रानन प्यारी, जाके मधुपुरी भूला तू तो बनवारी।
तू ने कहा था न छोड़ूँ तोहिं बनवारी, जा जा कुब्जा बनाया निज घरवारी।
तोहिं भावे जोइ सोइ करु बनवारी, तेरी थी 'कृपालु' रहेंगी भी ब्रजनारी।

युगल रस : पद सं.–57

इसी प्रकार 'ब्रजरस माधुरी' ग्रंथ में भी राधा–कृष्ण की युगल किशोर लीलाओं का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है–

आली लखु लाली लाल झुलन बहार।
झूला डर्यो कुंज कदमन दार।
झूलन बैठी है भानुदुलार।
झूला झूलावत नंद कुमार।
गावति अलि मिलि राग मलार।
बाजत विविध वाद्य बलिहार।
सब अलि मिलि कर जय जयकार।
घन गरजन लागे गगन मझार।
गरबाहीं डार दोउ सरकार।
झुलवत दोउ 'कृपालु' सरकार।

ब्रज रस माधुरी : भाग 02, पद–133

अर्थात् एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि देख कुंज में युगल सरकार अर्थात राधा–कृष्ण किस प्रकार झूला झूल रहे हैं। राधा जी झूले पर बैठी हैं तथ नंद कुमार उन्हें झुला रहे हैं। इस सुन्दर लीला को देखकर ब्रज की सखियाँ राग मल्हार गा रही हैं तथा सुन्दर वाद्य यंत्र बज रहे हैं। सभी सखियाँ युगल सरकार के लीला सौन्दर्य को देखकर जय जयकार कर रही हैं। राधा–कृष्ण दोनों गले में बाहें डालकर झूल रहे हैं।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ के निम्न छन्द में भी कृष्ण एवं सखियों के साथ माधुर्य लीला का सुन्दर चित्रण भी संत कृपालु महाराज ने किया है–

छेड़ो नहिं मोहिं छोड़ो मग मम नटखट।
मोहिं नहिं ऐसा वैसी जानो तुम नटखट।

अब लौं मिलि हैं तोहिं भोरी भारी नटखट।
मैं तो ललिता हूँ लाड़िली की सखि नटखट।
अखल बधावूँ पिटवावूँ तोहिं नटखट।
चेत जा अबहुँ तू 'कृपालु' नट नटखट।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी पद सं.-35

अर्थात राधा की परमांतरंग सखी ललिता चंचल कृष्ण से कहती है- हे कृष्ण! मेरा मार्ग छोड़ दो। मुझे तुम्हारी चंचलता प्रिय नहीं है। मुझे कोई साधारण ब्रजांगना न समझना। अभी तक तो तुम्हें भोली-भाली ब्रज बालाएँ ही मिली हैं। मैं राधा की प्यारी सखी ललिता हूँ। अरे नटखट! मेरी सखी राधा के महल में तो तुम्हारे जैसे कितने ही झाड़ू लगाते रहते हैं। तुम्हारा संग ग्रामीण ग्वालों का है। तुम प्रेम करना क्या जानो ? अब भी तुम सावधान हो जाओ, नहीं तो माता यशोदा से तुम्हारी शिकायत करुँगी। वे तुम्हें ऊरवल से बाँधकर सांटी से पीटेंगी।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में युगल किशोर लीला माधुर्य का सुन्दर चित्रण है।

गोपी प्रेम लीला माधुर्य -

संत कृपालु महाराज के साहित्य में ब्रज की गोपियों के साथ कृष्ण की मधुर लीलाओं का भी चित्रण अत्यंत मनोरम है। ब्रज में गोपियाँ कृष्ण को अपने इशारों पर नचाती हैं। 'प्रेम रस मदिरा', 'राधा गोविंद गीत', 'श्यामा श्याम गीत' आदि ग्रंथों में अनेक पद गोपी प्रेम लीला से संबंधित हैं। जैसे 'प्रेम रस मदिरा' का निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें कृष्ण नृत्य कर गोपियों को मोहित कर रहे हैं-

नचत ता, थेइ थेइ नंद कुमार।
सखियन कहत 'ततत ता थेइ थेइ', मंजु निकुंज मझार।
बजत चरन छूम छननन नूपुर, किंकिनि धुनि झनकार।
हस्तक, मस्तक, कटि, पद, भृकुटिन, भेद दिखाउ निहार।
बाजत चंग, मृदंग ढोल, ढप सबै सुरन इक सार।
पंचम सुर सों कुंज-विहारिणि, गावति राग मलार।
कबहुँ बिलंबित, कबहुँ मध्य लय, कबहुँक द्रुत लय धार।

ललितादिक संगीत स्वामिनिहुँ, करत स्वस विस्तार।
कहत 'कृपालु' सखिन सब 'जय हो, जय हो जय बलिहारी।

प्रेम रस मदिरा, लीला माधुरी, पद–14

अर्थात् कुंज में कृष्ण नृत्य कर रहे हैं। सखियाँ 'त त त ता थेइ थेइ' बोल रही हैं। नृत्य में श्याम सुन्दर के चरण कमलों का नूपुर 'छूम छननन' ऐसी ध्वनि कर रहा है, साथ ही किंकिणि की मधुर ध्वनि भी हो रही है। हाथ, मस्तक, कमर, पैर, भौंह आदि विविध अंगों के द्वारा नृत्य संबंधी अनेक भेद दिखा रहे हैं। मृदंग, चंग, ढोल, ढप आदि अनेक वाद्य एक स्वर में मिले हुए बज रहे हैं। श्री किशोरी जी पंचम स्वर में मल्हार राग गा रही हैं। संगीत की सिरमौर ललिता आदि सखियाँ तान अलाप द्वारा स्वर विस्तार कर रही हैं। 'कृपालु' के शब्दों में सहस्त्रों सखियों का समुदाय 'जय हो, जय हो, बलिहार, बलिहार' ऐसा ऐसा उच्च घोष कर रहा है।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' ग्रंथ में भी गोपी प्रेम लीला संबंधी दोहों का सृजन है–

जाकी माया ते नचे, योगी यती महान। नचे सोइ करताल पै, ब्रज बीथिन बनितान। (100)
जो नहिं जात बुलायेहु, शुक सनकादिक ध्यान। बिनुहिं बुलाये जात सोइ, घर घर ब्रज बनितान। (93)

भक्ति शतक

अर्थात जिसकी माया बड़े–बड़े योगियों को अपने इशारों पर नचाती है वही मायापति श्री कृष्ण ब्रज की गोपियों की कर ताल पर ब्रज की गलियों में नृत्य करता हुआ दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार जो कृष्ण शुक सनकादिक के बुलाने पर भी उनके ध्यान में नहीं आता वही परम ब्रह्म बिना बुलाये ही ब्रज की गोपियों के घरों में जाते हैं।

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ में भी गोपी एवं कृष्ण प्रेम लीला माधुर्य का चित्रण है–

घट फोरि लर तोरी गोविंद राधे। मन करे तोहिं पति ते पिटवा दे। (8244)
बार–बार छेड़े मोहिं गोविंद राधे। मन करे कंस कारागार पठा दे। (8245)
सैन मारे काहे कारे गोविंद राधे। मन करे मैया ते ऊखल बंधा दे। (8246)
छेड़ा छेड़ी छोड़ न तु गोविंद राधे। सब गोपी मिलि उल्टो टँगवा दे। (8247)
छोटा सा नन्द ढोटा गोविंद राधे। आँखि मारे जो भी देखे पागल बना दे। (8248)
चंचल तजु अंचल गोविंद राधे। लोग लखि एक की सात लगा दें।(8249)

राधागोविंद गीत : लीला माधुरी

अर्थात् कृष्ण गोपियों को छेड़ते हैं, मार्ग में उनकी मटकी, उनकी गले की माला तोड़ देते हैं तो गोपियाँ क्रोधित होकर उनसे कहती हैं कि हमारा ऐसा मन करता है कि अपने पति से तुम्हारी पिटाई करवाएँ। हमारा मन करता है कि तुम्हें कंस के कारागार में बंद करता दें। तुम आँखों से इशारे न किया करो वरना तुम्हारी मैया से कहकर तुम्हें ऊखल से बंधवा देंगे। गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि तुम हमें इस प्रकार से तंग करना बंद कर दो वरना तुम्हे हम सब मिलकर उल्टा टँगवा देंगी। कृष्ण तुम हमारा आँचल न पकड़ा करो वरना लोग बिना बात ही सात तरह की बाते बनाएंगे।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी गोपी प्रेम लीला की झाँकी देख सकते हैं–

गोपी प्रेम महिमा जानें ब्रज बामा। ब्रह्म पाछे पाछे घूमे बिक्यो बिनु दामा। (277)
गोबर उठावैं सिर श्याम सुख धामा। गाल में गोबर को टीका देयँ बामा। (278)
गोपी प्रेम महिमा देखो ब्रज धामा। गारी हित पूर्ण ब्रह्म छेड़े ब्रज बामा।(279)
ब्रज नारी गारी सुनि कह सुख धामा। क्या कहा पुनि कहु सुना नाहिं बामा। (280)
साँकरि खोर जनि छेड़ा करो बामा। गारी कैसे मिले पुनि कहें सुख धामा। (281)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि गोपी प्रेम की महिमा का मैं क्या बखान करुँ। स्वयं ब्रह्म श्री कृष्ण उनके पीछे–पीछे घूमते रहते हैं। गोपियाँ कृष्ण से गोबर उठाने को कहती हैं साथ में गाल पर गोबर के टीके लगाती जाती हैं कि जितनी बार गोबर उठाओगे उतने तुम्हारे गाल पर टीका लगाएंगे और अन्त में उनको गिनकर उतना मक्खन हम तुम्हें देंगी। इसी प्रकार कृष्ण बार–बार गोपियों को छेड़ते है तथा गोपियाँ उनको गाली सुनाती हैं। उनकी गालियों को सुनकर कृष्ण विभोर होते हैं। उनकी गालियों को सुनने के लिए वे लालायित रहते हैं और कहते हैं कि मैं तुम्हें छेड़ता ही इसलिए हूँ कि तुम्हारी गालियाँ सुनने को मिले।

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ का निम्न छंद प्रस्तुत है जिसमें गोपियाँ कृष्ण की शिकायत यशोदा मैया से कर रही हैं–

अति ह्वै गई अब मैया, मैया मैया मैया।
लेहु आपुनौ गोकुल मैया,

अंत बसे हम मैया, मैया मैया मैया।
ढ़ायो जुलुम सखिन पर मैया,
यह छैया तव मैया, मैया मैया मैया।
जो 'कृपालु' नहिं दउँ तो मैया,
फोरे मटुकिहुँ मैया, मैया मैया मैया।

युगल रस : पद सं.–45

अर्थात् ब्रज गोपियाँ यशोदा से कृष्ण की शिकायत करती हुई उलाहना देती हैं कि अब तो अति हो गई है। हम तो गोकुल छोड़कर कहीं और बसना चाहती हैं क्योंकि तुम्हारा पुत्र अत्यंत ही चंचल है वह हमें इतना तंग करता है कि हमारी नाक में दम कर दिया है। मार्ग में रोककर हमारी मटकी फोड़ता है, गले की माला आभूषण धक्का देकर तोड़ता है। साथ ही हमारे घर में आकर दही, मक्खन माँगता है अगर हम नहीं देते तो हमारी दही की मटकियाँ फोड़ देता है।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें गोपी एवं कृष्ण के प्रेम भरी नोंक–झोंक का निरूपण किया गया है–

चलु हट न लिपट लंपट, दउँ हेला जो नटखट।
आवे लठ लै पति झट, लठ खाय शीश झटपट।
अब लौं रह बचि नटखट, अब पावहु फल लंपट।
मैया पै जावूँ झट, मारे 'कृपालु' तोहिं नट।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद सं.–32

अर्थात् श्रीकृष्ण के अटपटे व्यवहार से खीझकर कोई गोपी कहती है–अरे लंपट! दूर हट! मुझसे मत लिपट। वरना मैं अपने पति से तुम्हें पिटवाऊँगी। तुम हमारी मटकी फोड़ते हो, हमारे वस्त्र चुराते हो और जब हम तुम्हें पकड़ना चाहती हैं तो तुरन्त ही गायब हो जाते हो। जब मैं मार्ग में अकेली चल रही होती हूँ तो तुम लता के पीछे छुप कर मुझे छेड़ते हो तथा दही एवं मक्खन मांगते हो। न देने पर हमारी मटकियाँ फोड़ देते हो। मैं तुमसे बात नहीं करना चाहती तो मेरी चुनरी पकड़ कर खेंचते हो। अभी तक तो मैंने तुम्हारे इस व्यवहार को सहन किया है किंतु तुम यदि अपना व्यवहार ठीक नहीं करोगे तो इसका बुरा फल तुम्हें भोगना पड़ेगा। मैं तुम्हारी माँ से शिकायत करके तुम्हें पिटवाऊँगी।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें गोपियाँ आपस में वार्तालाप कर रही हैं। एक गोपी दूसरी गोपी से कृष्ण के अवगुणों का बखान करती है किंतु फिर भी कृष्ण के अवगुणों पर बलिहार जाती हैं।

कामरि वारे पै का मरि जाय।
कारो रंग अति निंदनीय बलभाय।
चौर सिर मौर सब रसिक बताय।
माखन चोर सखिन बतलाय।
छल सों ही मार्‍यो ब्रज असुरन आय।
कह लौं 'कृपालु' वाय अवगुन गाय।

ब्रजरस माधुरी : भाग 02, पद 94

अर्थात एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि उस काले कम्बल धारण करने वाले काले रंग के कन्हैया पे तुम क्यों मरी जा रही हो। सुना है उसकी दो माता एवं पिता भी दो हैं। कोई उसे क्षत्रिय बताता है कोई उसे वैश्य बताता है। अनेक गोपियों के साथ उसके प्रेम प्रसंग हैं। वह चोरों का सिर मोर है। यहाँ तक कि गोपियों के वस्त्र तक चुराता है। सखाओं के साथ दही मक्खन की चोरी करता है। उसकी काली करतूतों का क्या बखान करूँ वह तो धोखेबाज भी है। छल से उसने कौरवों को मरवाया तथा छल से ही ब्रज के असुरों का संहार किया है। कृपालु कहते हैं कि उनके अवगुणों की कथा मैं कहाँ तक सुनाऊँ।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में गोपी प्रेम लीला माधुर्य का सुन्दर चित्रण परिलक्षित है।

मान लीला माधुर्य निरूपण –

संत कृपालु महाराज रचित 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में राधा–कृष्ण की मान लीला का सुन्दर चित्रण है। इस ग्रंथ में मान लीला माधुर्य से संबंधित 59 पदों की रचना की गई है। राधा, कृष्ण से रूठ जाती है तो विभिन्न प्रकार से कृष्ण एवं सखियाँ उनका मान तोड़ने का प्रयास करती हैं। जैसे इसी ग्रंथ के निम्न पद में सखी ललिता राधा जी का मान तोड़ने का प्रयास करती है–

मानिनी! बात हमारी मान।

बिनु समुझे बूझे ही नित प्रति, लेति मान तुम ठान।
मोहू ते पूछति नहिं टुक यह, कौन तिहारी बान।
चंद्रावलि तो कालि गई रहि, हमरेहिं भवन सुजान।
भई बेर तब सोइ गई तहँ, नहिं आयो तहँ कान्ह।
सो 'कृपालु' नित छली जाति जो, सुनति आन के कान।

प्रेम रस मदिरा, मान माधुरी, पद–07

अर्थात मान धारण की हुई राधा से उनकी सखी ललिता कहती है कि हे स्वामिनी राधा जी! आप मेरा विश्वास करें। आप सदा बिना समझे–बूझे ही मान ठान लेती हो। यह तुम्हारी कौन सी आदत है। चंद्रावलि तो कल रात मेरे घर गयी थी। वहाँ उसे देर हो गयी तब वहीं सो गयी। वहाँ श्यामसुन्दर नहीं आये थे। 'कृपालु' कहते हैं कि उसको सभी लोग ठग लेते हैं जो दूसरे के कान से सुनता है।

राधा जी के मान की झाँकी हमें संत कृपालु महाराज रचित 'राधागोविंद गीत' ग्रंथ में भी दिखाई देती है। जब राधा, कृष्ण के अन्य गोपी के साथ विहार करने पर रूठ जाती हैं और कृष्ण उन्हें मनाने का प्रयास करते हैं–

पिया गये प्रिया ढ़िग गोविंद राधे। पूछा क्यों रूठी हो प्रिया जू बता दे। (8901)

x x x x x x x

वे ही लगावें आग गोविंद राधे। तो को जानि भोरी भारी बता दे। (8910)

राधा गोविंद गीत, लीला माधुरी

कृष्ण राधा से कहते हैं कि संसार में लोग दाम्पत्य सुख को देखकर जलते हैं तथा एक दूसरे के खिलाफ भड़काने का प्रयास करते हैं।

राधा के मान की लीला को हम 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ में भी देख सकते हैं।

जाके डर डरे डर सोउ ब्रज धामा। थर थर काँपे खड़ो लखि मान श्यामा।(570)
श्यामा जब मान करें श्याम कहें बामा। ऋणियाँ रहूँगो तेरो मना लाओ श्यामा। (571)
मान बानि अच्छी नहिं कह ब्रज बामा। सदा मुसकाती रहो प्राण प्यारी श्यामा। (572)
बार बार मान करि दुःख पावो श्यामा। तव दुख दुखी होवें सब ब्रज बामा। (573)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात राधा को मान में देखकर स्वयं श्री कृष्ण जिनके डर से डर भागता है, वे भयभीत होने लगे। वे राधा जी से प्रार्थना करते हैं कि मैं सदा आपका ऋणी रहूँगा कृपया अपना मान तोड़ दीजिए। राधा की सखियाँ भी उन्हें मनाने का प्रयास करती हैं कि बार-बार मान करने की यह आदत अच्छी नहीं है। आपके बार-बार मान करने से आप भी दुखी होती हैं तथा हम सब भी दुखी होते हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में मान लीला माधुर्य का सुन्दर चित्रण परिलक्षित है।

कृष्ण रस अवतार लीला माधुर्य – संत कृपालु महाराज के साहित्य में कृष्ण की रस अवतार लीला का चित्रण भी है। कृष्ण ब्रज में अवतरित हुए हैं और अपने अवतारत्व को भूलकर ब्रजवासियों को रस से सरोबार करते हैं। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में रसिया माधुरी में इसी रसिक स्वरूप पर कुल 22 पद लिखे हैं। जिनमें कृष्ण के रस अवतारी स्वरूप का निरूपण है। इसी ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है। जिसमें संत कृपालु महाराज कृष्ण को ब्रज रस बेचने वाला बता रहे हैं।

आयो ब्रज, रस बेचन-वारो।
जो रस निरामागमहुँ अगम सोइ, देत वनचरिन कहँ कारो।
जो ब्रज रस हित शुक सनकादिक, लतन पतन तन करि डारो।
सो रस अस जेहि लगि शिव शंकर, नर ते नारी तनु धारो।
सो रस पियत सोइ जो वाको, निज तन मन प्रानन हारो।
सो रस अस 'कृपालु' छिन छिन बढ़, रस वैकुण्ठ लगत खारो।

प्रेम रस मदिरा : रसिया माधुरी, पद-03

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि परम सौभाग्य की बात है कि ब्रज में आनन्द के भी सार तत्व ब्रज रस को बेचने वाला अवतार लेकर आ गया है। जो ब्रज रस वेदों शास्त्रों से अप्राप्त है उसे नन्द लाल वन में रहने वाली अशिक्षित स्त्रियों को दे रहा है। जिस ब्रज रस की प्राप्ति के हेतु शुक सनकादिक परमहंस वृक्ष बनकर ब्रज में अवतरित हुए हैं, जिस ब्रज के हेतु भगवान शंकर ने अर्धनारी-नटेश्वर का भेष बना डाला है, वह ब्रजरस वही प्राप्त कर सकता है जो मूल्य में अपना तन मन प्राण श्याम सुन्दर को समर्पित कर देता है। 'कृपालु' कहते हैं कि ब्रजरस प्रतिक्षण सरलता से वृद्धि

को प्राप्त होता है एवं ऐश्वर्यलोकीय भगवद्धाम बैकुण्ठ का सुख भी उस ब्रजरस के आगे नगण्य है।

रस अवतारी कृष्ण लीला की झांकी 'युगल रस' ग्रंथ के निम्न छंद में देख सकते हैं जिसमें राधा–कृष्ण एक दूसरे को रस से सरोबार कर रहे हैं।

होड़ परी पिय प्यारी, प्यारी प्यारी प्यारी।
हौं भाजों तुम पकरहुँ प्यारी,
ब्याहु 'कृपालु' न करु बनवारी,
ब्याहु न करु तुम प्यारी, प्यारी प्यारी प्यारी।

युगल रस : पद सं.–100

अर्थात आज कृष्ण एवं राधा में होड़ लगी है। प्यारी राधा से कृष्ण ने कहा–मैं भाग रहा हूँ, तुम मुझे पकड़ो। तुम भागों तो मैं तुम्हें पकडूँगा। यदि मैं तुमसे पराजित हुआ तो मैं तुमसे विवाह करुँगा और तुम पराजित हुई तो तुम्हें मुझसे विवाह करना होगा। राधा जी कृष्ण की चतुरता को समझ नहीं पाईं।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' ग्रंथ के दोहों में भी रस लीला के कुछ दोहे निम्नानुसार प्रस्तुत हैं–

काहे खोजत ब्रह्म को, श्रुतिन ऋचन भरमाय।
यशुमति कर ऊखलबंध्यो, देखहु ब्रज महँ जाय। (91)
ब्रह्म निरंजन जनि भनो, सुनहु खोलि निज कान।
अंजन बनि डोलै सदा, पाछे ब्रज बनितान।(92)
जाके भय भयभीत हो, महाकाल बरजोर।
जरासंध के भय सोई, भाजि बन्यो रण छोर।(96)
जाकी याचत शरण सब, विधि हरि हर उनमान
सोइ यशुमति की गोद हित, लोटत रोदन ठान।(99)

भक्ति शतक

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि ब्रह्म तो ब्रज में यशुमति के आंगन में ऊखल से बंधा हुआ है। वह निरंजन ब्रह्म ब्रज में गोपियों का अंजन बनकर उनके पीछे

डोलता रहता है। ब्रज में ऐसा ब्रह्म अवतार हुआ है जो जरासंध के भय से रणछोर बन गया है। जिस ब्रह्म की शरण स्वयं ब्रह्मा एवं शंकर चाहते हैं वही ब्रह्म ब्रज में यशोदा की गोद के लिए धूल में लोट–लोट कर रो रहा है।

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' में संत कृपालु महाराज ने लीला माधुरी अध्याय के अन्तर्गत रस अवतारी कृष्ण की अनेक लीलाओं का चित्रण किया है। पूतना, शंकटासुर, बकासुर, अधासुर, तृणावर्त आदि राक्षसों के वध के साथ–साथ कृष्ण की रसिक लीलाओं को चित्रित किया है–उनकी रसिक लीला के कुछ दोहे निम्न रूप से प्रस्तुत हैं–

खेलते खेलते ही गोविंद राधे। लाला की दृष्टि पड़ी चन्द्र पै बता दे। (7672)
तोतरी बोली में गोविंद राधे। मैं लूँगा लगे बोलने बता दे। (7675)
गोपियाँ बोली लाल गोविंद राधे। यह नहिं माखन लोंदा बता दे। (7687)
अब तो और भी गोविंद राधे।मचलें पटकें पाम बता दें। (7699)

राधा गोविंद गीत : लीला माधुरी

अर्थात गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि तेरे जैसा निर्लज कोई नहीं होगा। तुम्हें देखकर तो लज्जा भी लज्जित होती है। प्रतिदिन तुम किसी न किसी सखी को छेड़ते ही रहते हो, परिणाम स्वरूप गाली खाते हो। 'दारी के' गाली सुनकर तुम मुसकराते रहते हो।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में रस अवतार लीला माधुर्य का निरूपण परिलक्षित है।

मिलन एवं विरह लीला माधुर्य –

संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा–कृष्ण एवं कृष्ण–गोपी प्रेम निरूपण में मिलन एवं विरह लीला का चित्रण अत्यन्त सुन्दर है। लीला माधुर्य निरूपण में उन्होंने श्रृंगार रस के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण किया है। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में मिलन माधुरी अध्याय में कुल 70 पदों की रचना है तथा विरह माधुरी अध्याय में 214 पदों की रचना है। इसके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रंथों में भी राधा–कृष्ण–गोपी मिलन एवं विरह की लीलाओं का चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप में

किया गया है। उदाहरण स्वरूप 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के निम्न पदों को देखा जा सकता है।

आज सखि! ह्वै गये नैना चार।
हौं दधि बेचन जाति वृंदावन, देख्यों नंदकुमार।
सो छवि लखत बनत, नहिं बरनत, रूप माधुरी सार।
तन-मन-प्रान निछावरि करि मैं, लियो मोल रिझवार।
पुनि-पुनि कह्यो 'हमारी प्यारी', सुनि सुनि गइ बलिहार।
कत 'कृपालु' बलि जात नंद को, कै गया बंटाढार।

प्रेम रस मदिरा : मिलन माधुरी, पद सं.-03

अर्थात एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण से प्रथम मिलन की चर्चा करती हुई कहती है कि आज मैं वृंदावन की ओर दही बेचने जा रही थी। अचानक ही मार्ग में प्यारे श्यामसुन्दर दिखाई पड़े और उनकी आँखों से हमारी आँखे चार हो गईं। अरी सखी वह रूप माधुरी देखते ही बनती थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो सौन्दर्य की मधुरता का सार निकालकर वह छवि बनी हुई हो। मैं भी उनकी सुन्दर छवि देखकर अपना तन-मन-प्राण-न्योछावर करने के लिए उनकी बन गई। उसने मुझे देखकर 'हमारी प्यारी' कहा। यह सुनकर मैं प्रेम विभोर हो गई। कवि कृपालु कहते हैं कि अरी सखी! तू नाहक ही इतनी अधिक आनन्द में मग्न हो रही है, उस छलिया नन्द कुमार ने तो तेरा लोक परलोक सभी चौपट कर दिया, क्योंकि अब तू सदा ही उसके मधुर मिलन के लिए तड़पा करेगी। इसी प्रकार इसी ग्रंथ में विरह लीला माधुरी का सुन्दर चित्रण भी निम्न रूप में प्रस्तुत है-

बताओ सखि! कैसे धरुँ मैं धीर।
जो रातें पल सम मधु बातें, करत बीत गईं वीर।
वे अब पल पल कटत न मानों, द्रुपद सुता की चीर।
जिन अँखियन सों जल नेकहुँ आवत, पिय रह होत अधीर।
तिन अँखियन सों सदा एकरस, बहत रहत अब नीर।
जिनते होत, पलकहुँ न्यारे, उठत रही उर पीर।
सुनति 'कृपालु' कहानी उनकी, 'थे कोउ श्याम सरीर।

प्रेम रस मदिरा : विरह माधुरी, पद सं.-123

अर्थात् एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि तू ही बता बिना श्याम के मैं किस प्रकार धीरज धरूँ। कृष्ण से मधुर बाते करते हुए जो रात्रि एक पल में बीत जाती थी आज वही रात्रि उनके बिना काटे नहीं कट रही है। यह रात द्रोपदी के चीर के समान बढ़ती जा रही है। इन आँखों से निरन्तर अश्रु धारा बह रही है। जिन कृष्ण से एक क्षण के लिए भी पृथक होने पर मेरे हृदय में असह्य पीड़ा हुआ करती थी, 'कृपालु' कहते हैं कि आज उन्हीं श्यामसुन्दर की कहानी–मात्र सुना रही हूँ कि ब्रज में कभी कोई श्यामसुन्दर थे।

मिलन एवं विरह लीला से संबंधित अनेक छन्द हमको संत कृपालु महाराज रचित अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं जैसे– 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ का निम्न छंद प्रस्तुत है जिसमें राधा–कृष्ण–गोपी प्रेम मिलन लीला का चित्रण है–

सखि लखु सावन मास बहार।
हरियाली हरियाली आली निहार।
झूलें अलि तरु झूला डार।
चलु अलि मिलि ढिंग भानु दुलार।
कहु चलिए झूलन सरकार।
कीनी ललिहिं विनय ब्रजनार।
कीनी ललिहुं विनय स्वीकार।
तब 'कृपालु' कह सुनु ब्रजनार।
देहु मोहिं सेवा अधिकार।

ब्रज रस माधुरी : भाग 02, पद सं.134

अर्थात् सावन के माह में चारों आरे प्रकृति हरी भरी है। ऐसे समय में कुंज में कृष्ण झूला झूलने गए। उन्हें झूला–झूलते देख सखियाँ राधा जी के पास गईं और उनसे विनय किया कि आप भी पिय के साथ झूला झूलें। राधा सखियों का विनय स्वीकार कर लेती हैं। राधा–कृष्ण कुंज में झूलते हैं और गोपियों में उनकी झुलाने की होड़ लग जाती है। तब कृपालु कहते हैं कि हे गोपियों मुझे भी राधा–कृष्ण की सेवा का अधिकार दीजिए।

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' में भी मिलन एवं विरह माधुरी का निरूपण है। उदाहरण स्वरूप जब कृष्ण, राधा एवं गोपियों को ब्रज में छोड़ अक्रूर के साथ मथुरा

चले जाते हैं तो गोपियाँ उन्हें याद करके उनके विरह को अनुभव करती हैं–

जिन संग रास में गोविंद राधे। ब्राह्य रात्रियाँ बीती क्षण में बता दे। (10287)
उनके बिना अब गोविंद राधे। पल भर भी कैसे कटेगा बता दे। (10288)
प्रतिदिन सांझ को गोविंद राधे। गाय चरा के लौटते थे बता दे। (10289)
तब लखि श्याम छवि गोविंद राधे। मन प्राण होते थे मुग्ध बता दे। (10290)

राधा गोविंद गीत : लीला माधुरी

अर्थात् गोपियाँ कृष्ण के वियोग में उन्हें स्मरण कर रही हैं कि उनके बिना पलभर भी चैन नहीं है। उन्हें देख–देख कर ही हम जीया करते थे।

इसी प्रकार 'श्याम श्याम गीत' ग्रंथ में भी राधा–कृष्ण–गोपी मिलन एवं विरह की अनेक लीलाओं का रसमय चित्रण मिलता है यथा निम्न उदारहण प्रस्तुत है– जब एक सखी दूसरी सखी से कृष्ण एवं स्वयं के मिलन वार्तालाप को बताती है–

निलज कहे मैं हूँ तेरा परम पति बामा। चोरी चोरी प्यार करु कह सुख धामा। (731)
लोक लाज छोड़ी मेरी बन जा ब्रज बामा। मेरे जैसा पिय नहिं मिले ब्रज धामा। (732)
सब सों कहत फिरे मेरी प्यारी बामा। किंतु ब्याह काहू सों ना करे सुखधामा। (733)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात् ब्रज की गोपी से जब कृष्ण मिले, तो उनके मधुर प्रेमपूर्ण संवाद को वह गोपी अपनी सखी को बताती है कि वे इतने निर्लज्ज हैं कि खुले रूप में स्वयं को मेरा पति बताते हैं, चोरी–चोरी मुझसे प्यार करते हैं तथा कहते हैं कि पूरे ब्रज में तुझे मेरे जैसा पिया नहीं मिलेगा। किंतु हैरानी इस बात की है कि वह ये सब ब्रज की प्रत्येक गोपी से कहते हैं किंतु विवाह किसी से नहीं करते।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में मिलन एवं विरह की लीलाओं का सुन्दर चित्रण परिलक्षित है।

होली लीला माधुर्य –

संत कृपालु महाराज के साहित्य में वर्णित लीला चित्रण में राधा एवं कृष्ण की होली परक लीलाओं का चित्रण अत्यंत रसमय है। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में होरी माधुरी अध्याय में इस लीला से संबंधित 30 पदों का संकलन है। साथ में 'राधा

गोविंद गीत', 'श्यामाश्याम गीत' एवं 'ब्रज रस माधुरी' आदि अन्य ग्रंथों में भी होली लीला का सुन्दर चित्रण है। उदाहरण स्वरूप 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है। जिसमें एक गोपी अपनी सखियों से कहती है कि चलो कृष्ण पर रंग डालने चलें।

डारो डारो री, रंग बनवारी पै।

लालहिं लाल गुलाल गाल मलु, मलु, अबीर लटकारी पै।

रंग बिरंग रंग पिचकारिन, डारो री गिरिधारी पै।

छोरि लेउ याकी लकुटि कमरिया, लै चलु भानुदुलारी पै।

सेहरा बाँधि बनाय दुल्हनिया, मिलि नचाउ अलि! तारी पै।

बलिहारी 'कृपालु' ब्रज नारिन, बलिहारी येहि यारी पै।

प्रेम रस मदिरा : होरी माधुरी–पद 06

अर्थात् होली के अवसर पर एक सखी अन्य सखियों को श्यामसुन्दर के ऊपर रंग डालने के लिए कहती है। लाल–लाल गुलाल और अबीर उनके गालों और काले बालों में डालने के लिए कहती है तथा रंग बिरंगी पिचकारियों से उन्हें भिगोने को कहती है। उन्हें पकड़कर किशोरी जी के पास ले जाने एवं नववधू बनाकर नचाने को कहती है। कवि 'कृपालु' कहते हैं कि मैं इन ब्रजांगनाओं के प्रेम पर बलिहार जाता हूँ जिन्होंने ब्रह्म की ऐसी दुर्दशा कर दी।

इसी प्रकार 'राधा गोविंद गीत' में भी होली लीला के चित्र चित्रित हैं–एक गोपी कृष्ण से अपने ऊपर रंग न डालने की गुहार करती है अन्यथा इसके बुरे परिणाम की धमकी देती है।

रंग डारो जनि श्याम गोविंद राधे। मेरा पति तेरी ठकुराई भुला दे। (1842)

रंग डारो जनि श्याम गोविंद राधे। मेरा पति दिन में ही तारे दिखा दे। (1842)

रंग डारो जनि श्याम गोविंद राधे। मेरा पति तेरी गति विधि ते बना दे। (1843)

रंग डारो जनि श्याम गोविंद राधे। मेरी सास मोहिं निज घर ते भगा दे। (1844)

रंग डारो जनि श्याम गोविंद राधे। लोग तेरी मेरी है यारी बता दे। (1845)

राधा गोविंद गीत

अर्थात् एक गोपी कृष्ण से कहती है कि मेरे ऊपर रंग मत डालो वरना मेरा पति तेरी ऐसी पिटाई करेगा कि दिन में तारे दिखने लगेंगे। वह कहती है कि हे कृष्ण! मेरे ऊपर रंग मत डालो वरना मेरी सास मुझे घर से बाहर निकाल देगी तथा समाज के लोग तुम्हें और मुझे जोड़कर बुरी बातें करेंगे। इससे हमारा नाम बदनाम होगा।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में होली लीला माधुर्य सुन्दर रूप में चित्रित है।

मुरली लीला माधुरी –

कृष्ण नाम के साथ मुरली अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में मुरली लीला माधुर्य का निरूपण भी अत्यन्त रमणीय है। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के मुरली माधुरी अध्याय में मुरली लीला से संबंधित 09 पद हैं। साथ ही 'राधा गोविंद गीत', 'श्यामा श्याम गीत' में भी मुरली लीला से संबंधित माधुर्य प्रवाहित है। उदाहरण के तौर पर 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें श्री कृष्ण मुरली हेतु परेशान हो रहे हैं–

अली मोरी, मुरली कौन लई?।
मुरली बिनु मोहिं चैन न इक छिन, सो मम प्राण मई।
एक कहे 'मैं सुनी कालि कोउ, भार में डार दई।
एक कहे देखी मैं कतहूँ, सुधि नहिं भूलि गई।
सुनि सुनि वचन सखिन हरि खीझत, दृगन घटा उनई।
कहति 'कृपालु' मातु 'कत रोवत', देउँ मँगाय नई।

प्रेम रस मदिरा : मुरली माधुरी, पद–02

अर्थात् किसी गोपी द्वारा कृष्ण की मुरली चुरा लेने पर कृष्ण व्याकुल होकर सभी से पूछ रहे हैं कि मेरी मुरली किसने चुराई है ? मुरली बिना मुझे एक पल भी अच्छा नहीं लगता। वह मुरली मुझे प्राणों से प्यारी है। एक गोपी कहती है कि मैंने सुना है कि कल किसी ने मुरली को भाड़ में डालकर जला दिया है। दूसरी गोपी, तीसरी चंचल गोपी ताली बजाकर बार–बार हँसती हुई कहती है कि यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। गोपियों के उपहास भरे व्यंग्य वचनों को सुनकर कृष्ण और भी खीझ गये उनके नेत्रों में आँसू भर गये। कृपालु कहते हैं कि ये बातें मैया भी सुन रही थी। अतएव मैया ने कहा, मेरे लाल! तुम मुरली के लिए क्यों रोते हो ? मैं तुम्हें नई मुरली मँगा दूँगी।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के काव्य में मुरली लीला सुन्दर रूप में चित्रित है।

गोपी उद्धव संवाद लीला (भ्रमर गीत परम्परा) –

संत कृपालु महाराज के साहित्य में भक्तिकालीन महाकवि सूरदास द्वारा प्रणीत भ्रमरगीत परम्परा स्वरूप राधा–कृष्ण लीला माधुर्य निरूपण के प्रसंग में गोपी उद्धव संवाद लीला का सुन्दर चित्रण भी निरूपित है। भ्रमर गीत परम्परा में ही जब श्री कृष्ण अपने मित्र उद्धव को ब्रज में जाकर गोपियों को ज्ञान योग का उपदेश देने की आज्ञा देकर भेजते हैं तब उद्धव ब्रज में गोपियों को अद्वैत ब्रह्म, ज्ञान योग का उपदेश देकर ध्यान और समाधि लगाने का उपदेश देते हैं। ऐसा नीरस उपदेशात्मक संदेश सुनकर गोपियाँ अत्यन्त दुःखी और क्रोधित हो जाती हैं और उद्धव से व्यंग्यात्मक शैली में कहती हैं–

ऊधो! कहि दीजो संदेश।
ब्रज महँ रहे ब्रजेश, भये अब, मथुरा महँ मथुरेश।
ब्रज महँ रह भोगेश, भये अब, मथुरा महँ योगेश।
ब्रज महँ रह राधेश, भये अब, मथुरा महँ कुब्जेश
ब्रज महँ रह गोपेश, भये अब, मथुरा महँ भूपेश
अंगूठा–छाप 'कृपालु' रहे, अब, पंडित भये विशेष।

प्रेम रस मदिरा : विरह माधुरी, पद सं. 25

अर्थात् ब्रजांगनाएँ उद्धव के द्वारा श्यामसुन्दर को संदेशा भेजती हुई कहती हैं कि हे उद्धव! श्यामसुन्दर से यही संदेशा कह देना कि वे ब्रज में तो ब्रजेश ही थे किन्तु मथुरा में जाकर मथुरेश हो गए। पुनः कहना कि ब्रज में तो भोगियों के नेता थे किन्तु मथुरा में जाकर योगियों के नेता हो गए और भी कहना कि ब्रज में जो श्री राधा जी के स्वामी थे, किन्तु मथुरा में जाकर श्रीमती कुब्जा के स्वामी हो गए। फिर कहना कि ब्रज में तो ग्वाल बालों के ही स्वामी थे किन्तु मथुरा में जाकर राजाओं के भी स्वामी बन गए। 'कृपालु' के शब्दों में सखी कहती है कि कहाँ तक कहें ब्रज में तो वे अँगूठा छाप निरक्षर भट्टाचार्य थे किन्तु अब मथुरा में जाकर महान पण्डित हो गये हैं, तभी तो ज्ञानोपदेशक बने हुए हैं।

इसी के साथ-साथ गोपियाँ उद्धव से अपने इष्ट के प्रति अनन्य प्रेम का परिचय देती हुई कहती हैं कि-

ऊधो! कहियो हरि समुझाय।
हम सब उनहिं न कबहुँ बिसरिहैं, वे चाहे बिसराय।
वे मेरे, प्रियतम, प्राणेश्वर, हम अबला असहाय।
हम सब भई सनातन चेरी, वे चाहे ठुकराय।
चितवत पंथ रैन-दिन दैइहौं, अगनित जनमबिताय।
पै 'कृपालु' को भय पिय! जग सों, तव परतीति न जाय।

प्रेम रस मदिरा : विरह माधुरी, पद सं. 34

अर्थात् ब्रज गोपियाँ उद्धव से अपने श्यामसुन्दर के लिए संदेश भेजती हैं कि हे उद्धव! कृष्ण से यह समझाकर कह देना कि हम सब तो उन्हें कभी नहीं भूल सकती, वे चाहे हमें भुला ही क्यों न दें। हे उद्धव! वे मेरे प्रियतम एवं प्राणों के स्वामी हैं तथा हम सब ब्रज-गोपियाँ केवल उन्हीं के बल एवं सहारे पर हैं। हम सब तो अनन्तकाल के लिए उनकी दासी बन चुकी हैं, वे चाहे कितना ही ठुकराएँ। यह हम सब ब्रज-गोपियों का दृढ़ निश्चय है कि दिन रात प्रियतम की प्रतीक्षा करते हुए हम सब उनकी मिलन-माधुरी की आशा में अनन्त जन्म बिता देंगी। 'कृपालु' कहते हैं कि हे प्रियतम! ब्रज गोपियों को केवल यही भय है कि कहीं तुम्हारे न आने से संसार का तुमसे विश्वास न उठ जाए अर्थात् अल्पज्ञ लोग तुम्हारी करुणा की अन्तरंगता को न समझते हुए तुमको निष्ठुर न कहने लगे।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में गोपी उद्धव संवाद (भ्रमरगीत) लीला का सुन्दर निरूपण है।

नायक नायिका (राधा-कृष्ण) का सांगोपांग निरूपण -

संत कृपालु महाराज के साहित्य की एक विशेष प्रवृत्ति नायक-नायिका (राधा-कृष्ण) के सांगोपांग निरूपण की है। उन्होंने अपने काव्य में राधा-कृष्ण का सुन्दर सांगोपांग निरूपण किया है। उनके द्वारा रचित 'श्री राधा त्रयोदशी' एवं 'श्री कृष्ण द्वादशी' (रचना) राधा-कृष्ण के सांगोपांग निरूपण से ही संबंधित है। जैसा कि

इन पुस्तकों के प्राक्कथन के रूप में उन्होंने लिखा है– "इस पुस्तक में 12 पद हैं। जिनमें आनन्द कंद सच्चिदानंद श्री कृष्ण चन्द्र के सांगोपांग शास्त्रीय रूप ध्यान का दिग्दर्शन कराया गया है। प्रत्येक अंग का सौन्दर्य चित्रण इतना मनोहारी है कि बहुत कम प्रयास से साधक के मानस पटल पर श्री कृष्ण की सजीव झाँकी अंकित हो जाती है। अतः प्रत्येक साधक के लिए परम उपयोगी है।"

श्री कृष्ण द्वादशी : प्राक्कथन

इसी प्रकार 'श्री राधा त्रयोदशी' रचना के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा है– "वृषभानुनन्दिनी रासेश्वरी श्री राधा रानी के प्रेम रस सार स्वरूप विग्रह का सांगोपांग चित्रण अत्यन्त ही आकर्षक एवं अनूठे ढंग से किया गया है। इसमें 13 पद हैं। प्रत्येक पद में मधुरातिमधुर प्रेम रस धारा प्रवाहित हो रही है जो श्री राधा रानी के रूपध्यान के लिए परम सहायक है। अतः भक्ति मार्गीय प्रत्येक साधक के लिए परम उपयोगी है।"

श्री राधा त्रयोदशी : प्राक्कथन

उनका यह सांगोपांग निरूपण शास्त्रीय सिद्धान्त पर ही आधारित है। उनके काव्य की उक्त विशेषता का उदाहरण निम्न रूप से देख सकते हैं–

किशोरी तनु दुति पर दुति बलिहार।
सिर ते मुकुट मणिन मोतिन दुति, परत लिलार मझार।
बिंदी लाल भाल दुति दमकति, कुण्डल दुति रिझवार।
बिंदी कुण्डल मुकुट दमक मिलि, परत कपोल निहार।
इत मुक्ताहल नथ बेसर मिलि, करति रंग बौछार।
रंग बिरंगी मणिन मोतियन, दमकत गल विच हार।
पहुँची बाजुबन्द मणिन दुति, दमकति विविध प्रकार।
इत किंकिनि नूपुर बिछुवनि दुति, मोहति नन्दकुमार।
कह 'कृपालु' सब दुति मिलि मानहुँ, दुति मूरति साकार।

श्री राधा त्रयोदशी : पद सं.–08

अर्थात संत कृपालु महाराज राधा के अंग की कांति का निरूपण करते हुए कहते हैं कि श्री राधा की अंग कांति पर स्वयं कांति भी बलिहार जाती है। सिर से मुकुट

के मणि एवं मुक्ताओं का प्रकाश मस्तक के ऊपर पड़ रहा है। अरुण वर्ण की बिंदी की चमक मस्तक पर पड़ रही है। उधर कुण्डलों का भी प्रकाश है। बिन्दी कुण्डल एवं मुकुट तीनों की प्रभा गोल कपोलों पर पड़ रही है। कण्ठ के मध्य हार हिल रहे हैं। उनमें जड़ी हुई रंग बिरंगी मणियाँ एवं मुक्ता चमक रही है। हाथों की पहुँची एवं भुजाओं के बाजूबन्दों की मणियाँ नाना भाँति से दमक रही हैं। कटि की करधनी, चरणों के नूपुर एवं पदों की अंगुलियों के बिछुए अपने प्रकाश से नन्द नन्दन को आकर्षित कर रहे हैं। यदि इन सभी दुतियों को सम्मिलित कर दिया जाए तो श्री राधा दुति की साकार प्रतिमा सी प्रतीत होती हैं।

इसी प्रकार 'श्री कृष्ण द्वादशी' रचना में निरूपित सांगोपांग निरूपण का एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें नायक श्री कृष्ण के नेत्रों के सौन्दर्य का निरूपण है–

नीलमणि नैनन पर बलिहार।
इन नैनन रस जानति नीके, श्री वृषभानुदुलार।
तीन रंग श्वेतिमा अरुणिमा, अरु कालिमा निहार।
डूब न जाय रसिक नैनन रस, याते पलक विहार।
पलकनि ऊपर अटपट नटखट, भृकुटि काम-धनु-धार।
जब तिरछे नैनन बानन सों, मारत नन्द कुमार।
तब 'कृपालु' शिव बने शिवानी कह 'हा प्राणाधार'।

श्री कृष्ण द्वादशी : पद-07

अर्थात संत कृपालु महाराज कृष्ण के रसीले नेत्रों पर बलिहार जाते हुए कहते हैं कि इन नेत्रों के अद्‌भुत रस का अनुभव एक मात्र वृषभानुनन्दिनी ही करती हैं। कृष्ण के नेत्र तीन प्रकार के रंगों से युक्त हैं। नेत्रों का मध्य भाग श्वेत है। नेत्रों के कोर (प्रान्त भाग) अरुण हैं एवं श्याम-पुत्तलिका कृष्ण वर्ण की है। इन नेत्रों का दर्शन कर रसिकों का मन कहीं अगाध रस-सिंधु में डूब न जाय, इस कारण नेत्रों के ऊपर पलक की रचना हुई है। ये पलकें बार-बार उठती हैं, गिरती हैं। कभी नेत्रों का दर्शन करा देती हैं, कभी द्रष्टा की दृष्टि से बचाने के लिए नेत्रों के रस को ढँप देती हैं। पलकों के ऊपर टेढ़ी भृकुटियाँ कामदेव के धनुष पर तिरछी चितवन का बाण रखकर लक्ष्य पर चलाते हैं। इस समय उनके कटाक्षपात से घायल हुए शिव भी शिवानी बने-'हा प्राणधन'! कह मूर्छित हो जाते हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा–कृष्ण का सांगोपांग निरूपण काव्य शास्त्रीय पद्धति से निरुपित है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य का एक प्रयोजन लीला माधुर्य निरूपण भी है। सिद्धान्त पक्ष के साथ–साथ उनका समस्त पद्य साहित्य राधा–कृष्ण–गोपी प्रेम की विभिन्न रसमय लीलाओं से परिपूर्ण है जो कवि एवं पाठक दोनों को निश्चित रूप से आनन्द की अनुभूति देता है। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार जैसा कि आचार्य मम्मट ने 'सद्यः परिनिवृत्ति' अर्थात आनन्द को काव्य रचना का प्रमुख प्रयोजन माना है। इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज का प्रस्तुत लीला माधुर्य निरूपण निश्चित रूप से रस आधारित प्रयोजन परिलक्षित होता है। इन लीलाओं के गायन एवं श्रवण से पाठक, गायक, श्रोता सभी को एक विशेष अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है।

5.1.4 राधा तत्त्व का निरुपण

संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का एक विशेष प्रयोजन राधा तत्त्व के वैदिक स्वरूप को स्पष्ट करना है। संस्कृत काव्य शास्त्र आचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' ग्रंथ में काव्य के जिन प्रयोजनों का विवरण दिया है उनमें 'शिवेतर क्षतये' एवं 'कान्ता सम्मित उपदेश' को भी काव्य का प्रयोजन सिद्ध किया है।

'काव्य यशेसेऽर्थ कृते व्यवहारविदेशिवेतर क्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे।' *काव्य प्रकाश : 1.2*

इसी प्रकार 'नाट्यशास्त्र' में आचार्य भरतमुनि ने 'बुद्धिविवर्धनम्' को काव्य प्रयोजन माना है तथा 'काव्यादर्श' रचयिता आचार्य दण्डी ने 'ज्योतिरा संसाराद्ध दीप्यते' कहकर ज्ञान के प्रकाश को काव्य का प्रयोजन माना। इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज का प्रस्तुत काव्य प्रयोजन उक्त तीनों आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य प्रयोजनों पर आधारित है। राधा तत्त्व के निरूपण से जनसामान्य में बुद्धि एवं ज्ञान के विकास के साथ–साथ वे राधा तत्त्व की महिमा गान से मंगल भावना प्रकट करते

हैं। जिससे अनिष्ट की क्षति स्वतः हो जाती है। राधा उनकी इष्ट हैं। उनके यशोगान से वे जग एवं मानव के प्रति मंगल कामना करते हैं। उक्त निरूपण में कान्ता सम्मित उपदेश भी सन्निहित है। उक्त राधा तत्त्व को पढ़कर पाठक निश्चित रूप से आनन्द की अनुभूति करता है तथा उसमें वास्तविक ज्ञान एवं रस का प्रवाह होता है। सामान्य रूप में जन साधारण राधा को कृष्ण की प्रेयसी के रूप में ही समझता है और जानता है। किंतु राधा–कृष्ण को इतनी प्रिय क्यों हैं ? राधा एवं कृष्ण का संबंध क्या है ? राधा एवं कृष्ण एक क्यों हैं ? राधा का वास्तविक स्वरूप क्या है ? राधा की भक्ति से कृष्ण क्यों प्रसन्न होते हैं ? आदि प्रश्नों का उत्तर उन्होंने अपने पद्य एवं प्रवचन साहित्य में दिया है। 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ के श्री राधा अध्याय में उन्होंने राधा तत्त्व के रहस्य का उद्घाटन किया है। राधा तत्त्व का वैदिक सत्य उन्होंने स्पष्ट किया है कि जब सनकादिक ऋषियों ने परम पिता से प्रश्न किया कि समस्त देवताओं में परम देव कौन हैं ? और उस परम देव की शक्तियाँ क्या–क्या हैं ? रस सृष्टि की हेतु शक्ति कौनसी हैं ? इसके उत्तर में ब्रह्मा ने स्पष्ट किया कि–

कृष्ण है परम देव गोविंद राधे। षडैश्वर्य परिपूर्ण बता दे। (6004)
गोप गोपी वृन्द गोविंद राधे। करें श्री कृष्ण की भक्ति बता दे। (6005)
वृन्दावन स्वामी कृष्ण गोविंद राधे। एक मात्र मेरे परमेश्वर बता दे। (6006)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात सनकादिकों के प्रश्न पर ब्रह्मा उत्तर देते हैं कि समस्त देवताओं में कृष्ण परम देव हैं जो कि सोलह कलाओं के अवतार हैं। ब्रज के समस्त गोप एवं गोपियाँ उन्हीं कृष्ण की आराधना करते हैं तथा ब्रह्मा कहते हैं कि वे ही वृन्दावन के स्वामी कृष्ण एक मात्र मेरे परमेश्वर हैं। आगे ब्रह्मा उस परम ब्रह्म श्री कृष्ण की शक्तियों का विवरण देते हैं कि कृष्ण परम देव हैं तथा वेदों के अनुसार उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं–

उन श्री कृष्ण की हैं गोविंद राधे। शक्तियाँ अनन्त चारों वेद बता दे। (6009)
ह्लादिनी संघिनी गोविंद राधे। ज्ञानेच्छा क्रिया आदि है बता दे। (6010)

राधा गोविंद गीत : श्री राधा

अर्थात् ब्रह्मा सनकादिक ऋषियों को उत्तर देते हैं कि परम देव कृष्ण के पास अनन्त शक्तियाँ हैं जैसे ह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ। इसी क्रम में ब्रह्मा राधा तत्त्व को भी उद्घाटित करते हैं कि राधा भगवान कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। जो कि कृष्ण भगवान की सभी शक्तियों में सबसे श्रेष्ठ है–

सब शक्तियों में श्रेष्ठ गोविंद राधे। कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति है बता दे। (6016)
यही अन्तरंग शक्ति गोविंद राधे। कृष्ण आराधित राधा बता दे। (6017)
राधा कायव्यूह रूपा गोविंद राधे। गोपी पटरानी अरु लक्ष्मी बता दे। (6019)

राधा गोविंद गीत

अर्थात कृष्ण की समस्त शक्तियों में ह्लादिनी शक्ति सबसे श्रेष्ठ है तथा कृष्ण की यही ह्लादिनी शक्ति कृष्ण की अन्तरंग राधा है। अर्थात् राधा–कृष्ण की अन्तरंग शक्ति ह्लदिनी शक्ति का साकार स्वरूप है। इसी ग्रंथ में उन्होंने आगे राधा तत्त्व की महिमा को भी निरूपित किया है।

राधा कृष्ण एक ही हैं गोविंद राधे। लीला के हेतु बने दो हैं बता दे। (6020)
राधा श्री कृष्ण की गोविंद राधे। सम्पूर्ण ईश्वरी ही हैं बता दे। (6021)

x x x x x

पूरी आयु में भी मैं गोविंद राधे। राधा महिमा बता पाऊँ ना बता दे। (6025)
जिस पै हो राधा कृपा गोविंद राधे। सोई जाने राधा महिमा बता दे। (6026)

राधा गोविंद गीत

अर्थात राधा और कृष्ण में किसी प्रकार का भेद नहीं है अपितु लीला के कारण उन्होंने अपने दो रूप बना लिए हैं। राधा–कृष्ण की ईश्वरी और अधिष्ठात्री देवी हैं। राधा की महिमा तो वेद भी गाते हैं। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि मैं तो अपनी पूरी आयु में भी राधा की महिमा को नहीं गा सकता। जिस पर राधा स्वयं कृपा कर दे वही राधा महिमा को गा सकता है। बिना राधा की आराधना के कृष्ण की आराधना अधूरी है। उसके जैसा मूर्ख और कोई नहीं हो सकता जो राधा की आराधना के बिना कृष्ण को रिझाना चाहे।

राधा तत्त्व जाने बिनु गोविंद राधे। जो करे कृष्ण की भक्ति बता दे। (6027)

उसके समान मूढ़ गोविंद राधे। एक मात्र सोइ है मूढ़ बता दे। (6028)

राधा गोविंद गीत

इसी ग्रंथ में आगे संत कृपालु महाराज ने राधा तत्त्व की महिमा का सुन्दर गान किया है। यथा–

राधा पद रज ते ही गोविंद राधे। कोटि विष्णु होते प्रकट बता दे।(6029)

श्री कृष्ण आत्मरति गोविंद राधे। आत्मा हैं राधा रानी बता दे। (6030)

परमात्मा ते प्रिय गोविंद राधे। परमात्मा की आत्मा राधा बता दे। (6034)

श्री राधा रानी हैं गोविंद राधे। सर्व शक्तियों की मूल बता दे। (6084)

राधा गोविंद गीत

अर्थात राधा की पद रज से करोड़ो विष्णुओं का प्राकट्य होता है। राधा तो कृष्ण की आत्मा स्वरूपा हैं। राधा समस्त शक्तियों का पुंज हैं। राधा तत्त्व का निरूपण संत कृपालु महाराज ने 'भक्ति शतक' ग्रंथ के दोहों में भी किया है। ग्रंथ के प्रथम दो दोहों में राधा तत्त्व को निरूपित किया है।

अद्वितीय इक तत्त्व है, राधा तत्त्व प्रधान। याको दूजो रूप है, स्वयं कृष्ण भगवान। (01)

जोई राधा सोई कृष्ण हैं, इनमें भेद न मान। इक है ह्लादिनि शक्ति अरु, शक्तिमान इक जान। (02)

भक्ति शतक

अर्थात राधा तत्त्व समस्त ब्रह्माण्ड में अद्वितीय हैं अर्थात राधा तत्त्व एक निष्ठ शक्ति रूप हैं और कृष्ण इन्हीं अद्वितीय राधा शक्ति के दूसरे स्वरूप हैं। राधा और कृष्ण में किसी प्रकार का भेद नहीं मानना चाहिए क्योंकि दोनों में शक्ति और शक्ति मान का संबंध है। शक्ति कभी भी शक्तिमान से भिन्न नहीं हो सकती। राधा तो कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति का साकार रूप हैं तथा बिना शक्ति के शक्तिमान का अस्तित्व नहीं होता। अतः राधा–कृष्ण दोनों एक ही हैं।

संत कृपालु महाराज का समस्त पद्य साहित्य राधा तत्त्व निरूपण से आच्छादित है। 'युगल माधुरी' ग्रंथ में भी अनेक छन्द राधा तत्त्व निरूपण से परिपूर्ण हैं। यथा निम्न छन्द प्रस्तुत है–

मेरी राधा रानी मेरी राधा रानी।
राधा रानी ठाकुरहूँ ठकुरानी।
राधा प्रेम रूप रस की खानी।
रस को भी रस दे राधा रानी।
जाकी ब्रह्म श्याम करें अगवानी।
जाको पग चापैं सारँगपानी।
अति ही 'कृपालु' प्यारी राधा रानी।

युगल माधुरी : पद सं.-36

अर्थात कृष्ण की भी आराध्य राधा प्रेम, रूप, रस इन तीन गुणों की खान हैं। रस रूप परम ब्रह्म को भी विशेष रस से सराबोर करने वाला तत्त्व है राधा। राधा की महिमा का बखान करते हुए संत कृपालु महाराज कहते हैं कि राधा वह शक्ति रूपा देवी हैं जिनकी सवारी निकलने पर स्वयं कृष्ण उनकी अगवानी करने के लिए आते हैं तथा उनके चरणों की वन्दना करते हैं। राधा स्वयं कृपा की अवतार हैं।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के श्री राधा माधुरी अध्याय में अनेक पद राधा तत्त्व की महिमा को अभिव्यक्त करते हैं यथा-

करौं का राधा तत्त्व बखान।
शुक सनकादि समाधि साधि जेहिं, आराधत धरि ध्यान।
सोइ ज्योतिर्मय ब्रह्म, राधिका-पद-नख-मणि-दुति जान।
ब्रह्महिं-तत्त्व न जान वेद जब, बुधि अतीत तेहि मान।
पुनि सो ब्रह्म प्रतिष्ठित जामे, सोई श्याम सुजान।
सोउ 'कृपालु' अवराधत तुमहू, भज राधे तज ज्ञान।

प्रेम रस मदिरा : श्री राधा माधुरी पद-07

अर्थात् राधा तत्त्व का वर्णन सर्वथा अनिर्वचनीय है। शुक, सनकादिक जीवन मुक्त अमलात्मा परमहंस निर्विकल्प समाधि में ध्यान द्वारा जिस ज्योतिर्मय ब्रह्म की आराधना करते हैं, वह ब्रह्म श्री किशोरी जी के चरण कमलों की नख मणि-चन्द्रिका ही है अर्थात किशोरी जी के चरणों की नख मणि-चन्द्रिका को ही रसिक लोग

निराकार ब्रह्म मानते हैं। उस निराकार ब्रह्म के बारे में ही वेदों का कथन है कि वह ब्रह्म अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण एवं अचिन्त्य आदि है। फिर वह ब्रह्म भी गीता के अनुसार जिसमें प्रतिष्ठित है, वे ब्रजेन्द्र नन्दन श्री कृष्ण हैं। 'कृपालु' कहते हैं कि वेदों के अनुसार वे श्री कृष्ण भी राधिका की उपासना करते हैं। अतएव राधा तत्त्व को जानने के चक्कर में न पड़कर तुम भी उनकी उपासना करो। वस्तु तस्तु श्री राधा, श्री कृष्ण की आत्मा हैं अतएव जीवात्माओं की भाँति परमात्मा भी अपनी आत्मा–स्वरूपा श्री राधा की आराधना करता है।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें राधा तत्त्व की महिमा का बखान है–

ब्रज रस अंबुधि राधे, राधे मेरी राधे।
तेरी कृपा पाय रस राधे,
भये रसिक पिय राधे, राधे मेरी राधे।
मादन महाभाव तू राधे,
जेहि वश रह पिय राधे, राधे मेरी राधे।
तेरी कृपा रसिक सब राधे,
पाये ब्रज रस राधे, राधे मेरी राधे।
तेरी बिनु अनुकंपा राधे,
कोउ न पाव रस राधे, राधे मेरी राधे।
कमला ने अति तप किय राधे,
लह्यो न ब्रज रस राधे, राधे मेरी राधे।

युगल शतक : पद सं.–84

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि सागर रूपा श्री राधे! तुम्हारी कृपा प्राप्त कर ही श्याम सुन्दर रसिक शिरोमणि बने। राधा मादन महाभाव रूपा हैं। इसी कारण श्री कृष्ण सदा उनके वशीभूत रहते हैं। इन्हीं की कृपा से रसिकों को ब्रजरस की प्राप्ति होती है। बिना इनकी कृपा के किसी को रस की एक बूँद भी प्राप्त नहीं हो सकती। महालक्ष्मी ने ब्रज में प्रवेश प्राप्त करने के लिए बहुत तप किया किंतु वे प्राप्त नहीं कर सकीं। ब्रज रस की ऐसी महिमा है कि श्री कृष्ण भी सदैव इसी रस के वशीभूत रहते हैं।

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ का निम्न छन्द भी प्रस्तुत है जिसमें उन्होंने राधा तत्त्व के वेदातीत स्वरूप को निरूपित किया है–

अति गूढ़ तत्त्व राधा, नहिं जान श्रुतिहुँ राधा,
कह नेति नेति राधा, सोइ मम स्वामिनि राधा।
चाकर हरि जेहि राधा, सेवत हरि जेहि राधा,
ध्यावत हरि जेहि राधा, सोइ मम 'कृपालु' राधा।

युगल रस : पद सं.–66

अर्थात् राधा के रहस्यपूर्ण तत्त्व को न जानने के कारण ही वेद उनके विषय में 'नेति नेति' कहकर मौन हो जाते हैं। ऐसी श्री राधा ही मेरी स्वामिनी हैं। जिन्हें नेत्रों से एक बार देखकर काम देवता की पत्नी रति स्वयं को निछावर कर देती है। जिन श्री राधा के सेवक स्वयं श्री कृष्ण हैं, जिनकी सेवा निरन्तर श्री हरि सावधान रहकर करते हैं, जिनका ध्यान श्री कृष्ण करते हैं, वे ही कृपामयी श्री राधा मेरी स्वामिनी हैं।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें वृषभानुनंदिनी श्री राधा की महिमा का निरूपण है–

मेरी वृषभानु दुलार, भोरी भारी सुकुमार।
जेहि चाकर नंदकुमार, मम अलबेली सरकार।
सत चित सुख 'घन' तनु धार, गौरिहुँ गोरी सुकुमार।
जेहि परिकर सब ब्रजनार, मम सोइ स्वामिनि सरकार।
विधि हरि हर कर जयकार, स्वागत कर नन्दकुमार।
आरति कर सब ब्रजनार, हौं कह 'कृपालु' बलिहार।

ब्रज रस माधुरी : भाग 02, पद–68

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वृषभानुनन्दिनी राधा अत्यंत भोली भाली हैं। उनकी महिमा यह है कि स्वयं नन्द कुमार उनके चाकर हैं। वे अलबेली चंचल स्वभाव की हैं। उन्होंने सच्चिदानन्दघन स्वरूप धारण किया है तथा गौर स्वरूप में वे अवतरित हुई हैं। ब्रज की समस्त गोपियाँ उनकी परिकर हैं। सदा उनकी सेवा में अनुरक्त रहती हैं। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश उनकी जयकार करते नहीं थकते तथा

स्वयं परम ब्रह्म श्री कृष्ण उनकी सदा अगवानी करने के लिए तत्पर रहते हैं। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि ऐसी राधा रानी मेरी सरकार हैं।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी राधा तत्त्व की महिमा के निरूपण को निम्न दोहों में देख सकते हैं–

श्यामा में हैं श्याम श्याम में हैं तीन धामा। सबको प्रणाम हो प्रणाम किये श्यामा।
तू तो है अनन्त अनन्त तव नामा। शक्तियाँ अनन्त अनन्त तव धामा।
तेरा नाम रूप गुण लीला जन धामा। सब है अनन्त अनन्त प्रणामा।
विधि हरि हर पूज्य महाविष्णु नामा। महा विष्णु पूज्य श्याम श्याम पूज्य श्यामा।
माना सर्व पूज्य श्याम उनते पूज्य श्यामा। किंतु श्यामा जू ते मिलावें ब्रज नामा।

श्यामा श्याम गीत : दोहा सं., 476–480

अर्थात राधा में कृष्ण समाये हुए हैं, कृष्ण में तीन धाम (त्रिलोक) समाए हुए हैं इसलिए एक राधा की आराधना त्रैलोक्य के समस्त देवी देवताओं की आराधना का प्रतीक है। अर्थात राधा की पूजा करने से समस्त ब्रह्माण्ड के देवी देवता भी प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे सभी भी उनकी ही आराधना करते हैं। राधा तत्त्व अनन्त, असीमित शक्तियों से परिपूर्ण है। राधा के नाम भी अनन्त हैं। यहाँ तक कि राधा तत्व के नाम, रूप, लीला, गुण, धाम आदि सभी तत्व अनन्त हैं। ब्रह्मा–विष्णु–महेश, महाविष्णु की पूजा करते हैं। महाविष्णु कृष्ण की पूजा करते हैं तथा कृष्ण राधा की पूजा करते हैं। सर्व पूज्य श्यामा श्याम के साथ ब्रज की गोपियाँ भी धन्य हैं। क्योंकि उनकी कृपा से राधा रानी के दर्शन सुलभ होते हैं।

निष्कर्ष –

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का एक प्रमुख उद्देश्य राधा तत्त्व का निरूपण करना परिलक्षित होता है। इस राधा तत्त्व के निरूपण में राधा तत्त्व की महिमा का भाव छिपा है। काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार आचार्य मम्मट, आचार्य भरतमुनि एवं आचार्य दण्डी ने जिन काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है जैसे 'शिवेतर क्षतये', बुद्धिविवर्धनम् एवं 'ज्योतिरा संसाराद्ध दीप्यते', इन प्रयोजनों

के संदर्भ में संत कृपालु महाराज का प्रस्तुत काव्य प्रयोजन सटीक परिलक्षित होता है। राधा उनकी इष्ट देवी हैं। उनकी महिमा से अनिष्ट की निवृत्ति एवं मंगल की अभिवृद्धि होने का प्रयोजन इस काव्य में सन्निहित है। साथ में प्रस्तुत राधा तत्त्व निरूपण पाठक वर्ग में (सामाजिक) बुद्धि एवं ज्ञान के विकास की अभिवृद्धि करेगा। प्रस्तुत निरूपण उपदेश परक है किन्तु कान्ता सम्मित उपदेश की भाँति मधुर एवं रसमय। अतः काव्यशास्त्र के आधार पर उनका यह प्रयोजन सर्वथा सिद्ध परिलक्षित होता है।

5.1.5 वैदिक दार्शनिक तत्व का निरुपण

संत कृपालु महाराज के साहित्य का एक विशेष प्रयोजन भारत की वैदिक दार्शनिक विचार धारा का निरूपण करना है। दार्शनिक अभिव्यक्ति से तात्पर्य कवि की ईश्वर, माया, जगत, सुख–दुख, प्रवृत्ति–निवृत्ति आदि की भावनाओं का स्पष्टीकरण है। जैसा कि हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' में कहा है–

विचित्र भाव धर्मांशतत्व प्रख्याच् दर्शनम्।
स तत्व दर्शयादेव शास्त्रेषु पठितः कविः।। *काव्यानुशासन*

अर्थात संसार के विविध वस्तुओं के तत्व को देख पाना ही दर्शन है। तत्व दर्शन प्राप्त करने मात्र से ही शास्त्रों में किसी को कवि की संज्ञा दी गई है। दर्शन का अर्थ केवल देखना नहीं है, बल्कि भीतर पैंठ कर देखना है। कवि वह क्रांतदर्शी होता है, जो बाहरी अवगुंठन को हटाकर अन्तरंग को देख पाता है। जैसा कि ईशावस्य उपनिषद् में उल्लेखित है कि 'सर्वदृक्' अर्थात समस्त को देख पाने वाला।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में निरूपित वैदिक दार्शनिक तत्व को मानव जीवन का लक्ष्य, लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग एवं गुरु तत्व का वास्तविक स्वरुप बिन्दुओं के रूप में निम्नानुसार देख सकते हैं–

- **मानव जीवन का चरम लक्ष्य**

संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजन शीलता के क्रम में सर्वप्रथम जीव के परम चरम लक्ष्य के निरुपण को देखा जा सकता है। काव्य शास्त्रीय नियमानुसार उनके साहित्य रचना का प्रस्तुत प्रयोजन–उपदेश, ज्ञान की अभिवृद्धि एवं लोक मंगल

पर आधारित है। जैसा कि संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में काव्य प्रयोजनों का निरूपण किया है–

दुःखार्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।
विश्रांति जननं काले नाट्य भेतद् भविष्यति।
धर्म्य यशस्य मानुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्।
लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद् भविष्यति। *नाट्यशास्त्र : 1.113–15*

अर्थात् आचार्य भरतमुनि दुख, श्रम एवं शोक से पीड़ित लोगों को सुख प्राप्ति अर्थात लोक मंगल को काव्य का प्रयोजन मानते हुए धर्म, यश, आयु, हित, ज्ञान बुद्धि का विकास और उपदेश प्रवृत्ति को भी काव्य प्रयोजन सिद्ध किया है। इसमें यश की प्राप्ति कवि को व धर्म की प्राप्ति कवि एवं सहृदय दोनों को प्राप्त होती है। शेष सभी प्रयोजन तत्वों का संबंध स्पष्ट रूप से सामाजिक के पक्ष में है। इन सभी तत्वों के विचार स्वरूप लोक कल्याण ही प्रधानतः काव्य का प्रयोजन है।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज द्वारा रचित साहित्य का उक्त प्रयोजन मानव समाज को उपदेश, ज्ञान अभिवृद्धि एवं लोक मंगल की कामना पर आधारित है। उनके द्वारा रचित गद्य–पद्य एवं प्रवचन साहित्य में स्पष्ट रूप से मानव के परम लक्ष्य का सुसंगत निरुपण है। उनके सिद्धान्त ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' का प्रथम अध्याय ही "जीव का चरम लक्ष्य" है। प्रस्तुत अध्याय में उन्होंने स्पष्ट किया है कि संसार का प्रत्येक जीव बिना किसी प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करता। जैसा कि दर्शनशास्त्र कहता है– '**प्रयोजन मनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।**' अर्थात घोर से घोर मूर्ख भी प्रयोजन के बिना कोई कार्य नहीं करता। इस आधार पर तो यह सिद्ध हुआ कि हर जीव का अलग–अलग प्रयोजन है। इसी विषय पर संसार भर के पूर्व एवं पाश्चात्य सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में वैदिक सनातन सत्य आनन्द सिद्धान्त की स्थापना की है। उनके प्रवचन साहित्य "जीव का लक्ष्य" (मार्च 2003) में उन्होंने चार्वाक सिद्धान्त, पाश्चात्य दार्शनिक–हॉब्स, हल्वेशियस, बटलर, बैन्थावे, मिल आदि के सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए सिद्ध किया कि जीव का कर्म भले ही दिखने में भिन्न–भिन्न हो किन्तु उसके प्रत्येक कर्म

का उद्देश्य आनन्द अर्थात सुख की प्राप्ति ही है। कोई भी जीव या मानव करोड़ो कल्प प्रयास कर ले कि वह कभी सुख या आनन्द की कामना नहीं करेगा किन्तु उसके प्रत्येक कर्म का उद्देश्य आनन्द अर्थात सुख की प्राप्ति ही है। कोई भी जीव या मानव करोड़ों कल्प प्रयास कर ले कि वह कभी सुख या आनन्द की कामना नहीं करेगा वह तो दुख की ही कामना करेगा। ऐसा चिरकाल में सम्भव नहीं है। जैसा कि 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में उन्होंने लिखा है।

"विश्व का प्राणि मात्र एक मात्र आनन्द प्राप्ति हेतु ही प्रत्येक कार्य करता है। यदि आप कहें कि धन-पुत्र-मित्रादि अन्य प्रयोजन के लिए भी जो अनुभव सिद्ध है, कर्म किया जाता है तो यह समझ लेना चाहिए कि धन पुत्रादि की प्राप्ति लक्ष्य नहीं है अपितु धन, पुत्रादि के द्वारा भी उसी अव्यक्त आनन्द की प्राप्ति का ही लक्ष्य है।

सर्वेषामपि भूतानां नृपस्वात्मैव वल्लभः।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि।। *भागवत*

इस वेदव्यासोक्ति का यही अभिप्राय है। यदि आप कहें कि जीवन, ज्ञान, स्वतंत्रता सब पर शासन करना तथा आनन्द आदि पाँच लक्ष्य कुछ दार्शनिकों ने माने हैं फिर एक ही लक्ष्य आनन्द प्राप्ति कैसे सिद्ध होगा। तो वहाँ भी यह समझ लेना चाहिए कि अन्य जीवन ज्ञानादि लक्ष्य उसी आनन्द प्राप्ति के हेतु ही होते हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि विश्व का प्रत्येक जीव वह चाहे सर्व साधारण हो, दुष्ट हो या भगवान हो एक मात्र आनन्द के ही लक्ष्य से कार्य करता है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : जीव का लक्ष्य, पृ.सं.-2-3

इस प्रकार संत कृपालु महाराज समस्त जीवों का सनातन स्वाभाविक लक्ष्य आनन्द प्राप्ति बताते हैं। अब प्रश्न उठता है कि समस्त जीवों का एक ही लक्ष्य क्यों है ? इसका विज्ञान समत्त उत्तर उन्होंने अपने साहित्य में दिया है कि समस्त जीव उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म के अंश हैं। अनादि ब्रह्म आनन्द का ही स्वरूप है। अर्थात भगवान और आनन्द एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। आनन्द और सुख की जिस अनुभूति

की बात की जाती है वह हमें ब्रह्म में ही मिलती है और आनन्द स्वरूप ब्रह्म का अंश होने के कारण ये स्वाभाविक नेचर है कि प्रत्येक जीव आनन्द ही चाहता है। इसे उन्होंने अपने 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में इस प्रकार स्पष्ट किया है–

"जब विश्व में सर्वत्र वैषम्य और वैमत्य है तो अल्पज्ञ से लेकर सर्वज्ञ तक, बिना किसी के सिखाए ही एक मात्र आनन्द ही क्यों चाहता है, इसका कोई महान वैज्ञानिक रहस्य अवश्य होगा। हाँ, वह रहस्य यह है कि–

"आनन्दो ब्रह्मोति व्यजानात् आनन्दाद्धयेव खल्वियानि भूतानि जायन्ते,
आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्द प्रयन्त्यभिसंविशतीति।"

तैत्तिरीयोपनिषत् : 3–6

इस वेदोक्ति के अनुसार ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। यहाँ तक कि–

"आनन्द स्वाधस्तात आनन्द उपरिष्टात् आनन्दः पुरस्तात आनन्द–
पश्चात् आनन्द उत्तरतः आनन्दो दक्षिणतः आनन्द एवदं सर्वम्।"

छान्दोग्यपनिषत् : 25–1

इसके अनुसार उसके नीचे, उसके ऊपर, उसके पूर्व, उसके पश्चिम, उसके उत्तर, उसके दक्षिण, उसके बाहर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द लबालब भरा है। आप कहेंगे कि यह आनन्द स्वरूप ईश्वर की बात हुई पर यहाँ तो प्रश्न जीवों का है। पर बात यह है कि **"मैमवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः"** इस गीतोक्ति के अनुसार जीव उसी आनन्द स्वरूप ब्रह्म का अंश है। अतएव अपने अंशी के स्वभाव से युक्त होने के कारण स्वभावतः प्रत्येक जीव एक मात्र आनन्द ही चाहता है।"

प्रेम रस सिद्धान्त : जीव का लक्ष्य, पृ.सं.–03

इस प्रकार वेदों के प्रमाण स्वरूप उन्होंने सिद्ध किया कि जीव आनन्द स्वरूप परम ब्रह्म का सनातन अंश है, इसी कारण प्रत्येक जीव का स्वभाव सुख और आनन्द प्राप्ति ही है, कर्म चाहे भिन्न–भिन्न ही क्यों न हो। इसी सिद्धान्त को उन्होंने अपने पद्य साहित्य में भी निरुपित किया है– "सुनहु साधक प्यारे" स्व रचित पद में उन्होंने

इसी सिद्धान्त को बड़े सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है–

सुनहु साधक सुनहु साधक सुनहु साधक प्यारे।
तुम चहत आनन्द शाश्वत, दिव्य चिन्मय प्यारे।
ब्रह्म या आनन्द दोनों, एक ही हैं प्यारे।
ब्रह्म या आनन्द के ही, अंश हैं सब प्यारे।
चहत नित सब आनन्द याते, जीव सब ही प्यारे।
सुनहु साधक सुनह साधक सुनहु साधक प्यारे।

सुनहु साधक प्यारे, प्रवचन साहित्य नवम्बर–2002

इसी प्रकार "राधा गोविन्द गीत" रचना में भी उन्होंने जीव का परम लक्ष्य अध्याय के अन्तर्गत स्पष्ट किया है कि प्रत्येक जीव स्वभाव से ही आनन्द प्राप्ति हेतु व्यग्र है–

पशु पक्षी कीट आदि गोविन्द राधे।आनन्द ही के हेतु व्यग्र बता दे। (657)

राधा गोविंद गीत

परम ब्रह्म भगवान कृष्ण आनन्द के ही स्वरूप हैं और प्रत्येक जीव उसी आनन्द स्वरूप ब्रह्म का अंश है। इसी कारण प्रत्येक जीव आनन्द ही चाहता है।

गोविन्द आनन्द गोविन्द राधे। पर्यायवाची हैं वेद बता दे। (685)

x x x x x x x x x x

आनन्द पाने की गोविन्द राधे। जीव में नित्य आकांक्षा बता दे।। (691)

राधा गोविंद गीत

इसी प्रकार अपने 'भक्ति शतक' ग्रंथ में उन्होंने एक सुन्दर दोहा लिखा है जिसमें उन्होंने ब्रह्म को रस रूप बताकर जीव को उसी रस का आकांक्षी बताया है।

"ब्रह्म एक मधु रूप है, एक भ्रमर उनमान।
एक रूप रस देत है, एक आपु कर पान।" (52) *भक्ति शतक*

अर्थात रस रूप ब्रह्म के दो स्वरूप होते हैं। एक रस रूप। दूसरा रसिक रूप। अर्थात एक मधु के समान। दूसरा भौंरे के समान। एक रूप में स्वयं रस पान करते हैं। दूसरे रूप से जीवों को भी वही रस पान कराते हैं।

इसी प्रकार 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में सिद्धान्त माधुरी अध्याय के निम्न पद में भी उन्होंने ब्रह्म को आनन्द स्वरूप बताकर उसी की प्राप्ति का लक्ष्य निरुपित किया है–

सुनो मन! यह वेदन को सार।
कहत 'रसो वै सः' यह वेदन, या पर करिय विचार।
रसिक शिरोमणि ब्रह्म श्याम बिनु, रस न पाउ संसार।
'उपासते पुरुषं' येहि श्रुति को, इहै अर्थ उर धार।
सकल कामनाहीन दीनबनि, भजिए नन्द कुमार।
तब 'कृपालु' तुम पाव प्रेम रस, बस गोलोक मझार।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–121

अर्थात्–अरे मन! सब वेदों का यही निष्कर्ष है। वेद में जो 'रसो वै सः' कहा गया है, इस पर गंभीर विचार कर। इसका भाव यही है कि रसिक शिरोमणि ब्रह्म श्यामसुन्दर के बिना संसार में कहीं भी वास्तविक सुख नहीं है। 'उपासते पुरुषं' इस श्रुति का भी यही अर्थ है कि समस्त कामनाओं से रहित होकर नन्द कुमार का भजन करो। 'कृपालु' कहते हैं कि उनकी कृपा से तू प्रेम रस पा सकेगा एवं सदा के लिए गोलोक में निवास करेगा।

इस प्रकार अपनी विविध रचनाओं में उन्होंने इसी जीव लक्ष्य को वैदिक विज्ञान के तरीके से निरुपित किया है। इसी सिद्धान्त निरुपण में उन्होंने आनन्द क्या है ? और वह आनन्द कैसे मिलेगा ? अभी तक आनन्द क्यों नहीं मिला ? प्रत्येक जीव आनन्द का अंश होने पर भी दुःखी क्यों है ? इन सभी प्रश्नों का वेद सम्मत उत्तर उन्होंने अपने साहित्य में दिया है। अपने प्रवचन साहित्य 'जीव का लक्ष्य' में उन्होंने जीव की परम उत्कंठा आनन्द को निरुपित किया–

"जिसका जो अंश है वह अपने अंशी को चाहता है नेचुरल–स्वाभाविक। कहीं से नॉलिज इकट्ठा करके नहीं। देखिये आप लोग जब पैदा हुए तो आप लोगों ने क्या किया ? नारा लगाया ? आनन्द चाहिए, आनन्द चाहिए, दुःख नहीं चाहिए। ये थ्योरिटिकल नारा नहीं लगाया प्रेक्टिकल। रोकर आप चिल्लाए। आपको कष्ट हुआ पैदा होने में, इतना कोमल शरीर। तो आप रोकर उस कष्ट को निकाल रहे हैं और कह

रहे हैं संसार वालों से हमको आनन्द चाहिए, दुःख नहीं चाहिए। तब से लेकर मृत्युपर्यन्त सबके सब आनन्द चाहते हैं– मनुष्य ही नहीं समस्त प्राणी। लाखों शरीर धारी। सब आनन्द चाहते हैं और जो कुछ चाहते हैं आनन्द के लिए चाहते हैं। केयर ऑफ माँ, केयर ऑफ बाप, केयर ऑफ बीबी। केयर ऑफ पैसा, केयर ऑफ संसार का सामान। क्या ? केयर ऑफ क्या चाहते हैं ? आनन्द। आनन्द।"

यो वै भूमा तत्सुखम। (छान्दो. 7–23–1)

स एष रसानां रसतमः। (छान्दो. 1–1–3)

जो अनन्त मात्रा का हो और अनन्त काल के लिए हो उसको आनन्द कहते हैं, लिमिटेड आनन्द तो हमको बहुत मिल चुका अनन्त जन्म में। हमारे संसार का जो आनन्द वर्तमान काल का आप लोग भोग रहे हैं ये कुछ नहीं है।"

जीव का लक्ष्य : प्रवचन, पृ.सं.–14

इस प्रकार वास्तव में जो आनन्द है वह अनन्त मात्रा का असीमित होता है तथा जब मिलता है तो सदा के लिए ही मिलता है कभी छिनता नहीं है। ये आनन्द ईश्वर प्राप्ति पर ही संभव है। लेकिन चूँकि जीव मायाधीन है अतः वह मायिक आनन्द जो उसे विविध माध्यमों से संसार में मिलता है उसको ही सत्य मानता है। संसार से मिलने वाला सुख क्षण भंगुर होता है। मिलता है और छिनता है। इसी कारण कभी जीव सुखी कभी दुःखी होता रहता है। इसी तथ्य को संत कृपालु महाराज ने अपने 'राधा गोविन्द गीत' रचना में जीव का लक्ष्य अध्याय के अन्तर्गत निरुपित किया है तथा उदाहरण दिया है कि जीव रस रूपी ब्रह्म का अंश होने के नाते रस अर्थात आनन्द ही चाहता है किन्तु जीव माया रूपी पित्त रोग से ग्रसित है अतः उसे ईश्वरीय आनन्द का स्वाद पता नहीं है और मायिक आनन्द को ही सत्य मानता है जो अल्पकालिक और परिणामतः दुःखदायी है।

जीव आनन्द चित्त गोविंद राधे। जीव आनन्द अधिकारी बता दे। (703)

x x x x x x x x x x

जग सुख क्षणिक है गोविन्द राधे। कभु मिले कभु छिन जाय बता दे। (719)

जग सुख तो अल्प गोविंद राधे। प्यास नहिं जाए प्यास और बढ़ा दे। (720)
सच्चा ईश्वरीय सुख गोविन्द राधे। सदा सदा को मिल जाए बता दे। (721)

राधा गोविंद गीत : जीव का लक्ष्य

इस प्रकार वास्तविक सुख ईश्वर में ही है उसके मिलने पर जीव को भी वास्तविक आनन्द मिल जाएगा। अब प्रश्न यह है कि आनन्द रूपी ब्रह्म का अंश होकर भी जीव दुःखी है उसे वह वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा तथा समस्त चराचर जीव योनियों में केवल मानव योनि में ही उस आनन्द को प्राप्त किया जा सकता है ऐसा क्यों ? इन प्रश्नों का उत्तर भी उन्होंने अपने साहित्य में दिया हैं "जीव का लक्ष्य" प्रवचन साहित्य में उन्होंने लिखा है–

"जीव का चरम लक्ष्य क्या है ? और जीव भी मत बोलो और संक्षेप मे कह दो–मनुष्य का लक्ष्य क्या है ? क्योंकि और कोई प्राणी इन प्रश्नों को न समझ सकता है और न इनका उपाय कर सकता है केवल मानव देह ऐसा है जिसमें हम इन दोनों प्रश्नों का समाधान कर सकते हैं। वैसे तो ज्ञान में देवता लोग मनुष्यों से बहुत आगे हैं, बहुत आगे। किन्तु उनको कर्म करने का अधिकार नहीं हैं अर्थात अगर वह जान भी लें कि लक्ष्य क्या है तो उसके प्राप्त करने का उपाय नहीं कर सकते। वह भोग योनि है। अर्थात केवल एक मनुष्य योनि ही कर्म योनि है, शेष सब की सब भोग योनि है।"

जीव का लक्ष्य : पृ.सं.–01

इसी प्रश्न का उत्तर भी उन्होंने इस प्रवचन साहित्य में दिया कि जीव ईश्वरीय आनन्द को क्यों नहीं प्राप्त कर पा रहा है इसका कारण उन्होंने माया शक्ति को बताया है। जड़ माया ने चेतन जीव पर अपना अधिकार कर रखा है। क्यों ? क्योंकि माया शक्ति भी ईश्वरीय शक्ति है तथा जो भगवान के शरणागत हो जाए उस पर माया शक्ति का बल नहीं चलता और उसे अपना वास्तविक भूला हुआ ज्ञान मिल जाता है जैसा कि उन्होंने लिखा है–

"यह जीव अपने स्वरूप को भूला है ये अपने को शरीर मान बैठा है बस ये मिस्टेक मेन। अपने को शरीर मानता है, अपने को भूला है। क्यों भूला है ? 'तन्मायया'

माया के कारण। भगवान की एक माया है मैंने बताया है न, एक ब्रह्म, एक जीव, एक माया। तो क्यों जी माया तो जड़ है और जीव चेतन है। तो जड़ शक्ति चेतन पर हावी कैसे हो जाएगी ? ये तो अननेचुरल है। ये माया शक्ति है, किसकी ? भगवान की.. ....माया को कौन जीत सकता है ? जो भगवान के बराबर हो। और भगवान के बराबर कोई हो ही नहीं सकता इसलिए कोई नहीं जीत सकता। इसलिए भगवान कहते हैं "मामेव ये प्रपद्यन्ते" जो मेरी शरण में आ जाए, बस उसको मैं माया से मुक्त कर दूँगा, इतनी बलवती है माया।" *जीव का लक्ष्य : पृ.सं.-64*

इस प्रकार अपने परम चरम लक्ष्य को प्राप्त करने का एक मात्र मार्ग है भोले मन से ईश्वर की शरणागति एवं, भक्ति कर, अपने अन्तःकरण को शुद्ध करना और अन्तःकरण शुद्ध होते ही भगवान अपना आनन्द जीव मात्र को दे देते हैं तब जीव अपने उस परम लक्ष्य को प्राप्त करता है। इसी तथ्य को उन्होंने अपनी कई रचनाओं में भी निरुपित किया हैं जैसे- 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में संसार को असार बताते हुए, ईश्वर की शरण की ओर प्रेरित किया है-

अरे मन! इहै सार संसार।

सुर दुर्लभ तनु पाय भजन करु, निशि दिन नन्द कुमार।
लगत न दाम छदाम याम वसु, सुमिरु श्याम सरकार।
हरि व्यापक संसार एक रस, प्रति परमाणु मझार।
तिनके नाम रूप गुण गावत, का घटि जात तिहार।
झूठो जप, तप, जोग, योग, व्रत, नेम, धर्म, आचार।
हरि बिनु सुख, 'कृपालु' नहीं सपनेहुँ पचि मरिए हजार।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद सं.-09

अर्थात अरे मन! इस असार संसार मे यही सार है कि देव दुर्लभ मानव देह पाकर, निरन्तर श्याम सुन्दर का भजन कर। तू ही सोच! इसमें तेरी कौड़ी भी तो खर्च नहीं होती है। एक मात्र उन्हीं का स्मरण कर। श्याम सुन्दर संसार के परमाणु-परमाणु में व्याप्त हैं। उन्हीं का नाम रूप व गुणों का गान कर। तेरा कुछ घट नहीं जाएगा। जप,

तप, योग, यज्ञ, व्रत, नेम, धर्म, आचार इनसे माया निवृत्ति नहीं हो सकती। 'कृपालु' कहते हैं कि बिना श्यामसुन्दर की शरण गये स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता, चाहे करोड़ो साधन करके मर जाओ।

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' में संत कृपालु जी महाराज ने ईश्वर प्राप्ति अर्थात लक्ष्य प्राप्ति को अत्यन्त सहज बताते हुए लिखा है कि हरि को सर्वत्र अनुभव करना ही लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है।

मेरा साध्य क्या है अरु गोविन्द राधे। साधन क्या है कोई याय समझा दे। (765)
तेरा साध्य हरि सेवा गोविन्द राधे। साधन श्री कृष्ण है भक्ति बता दे। (766)
हरि सर्वव्यापक गोविन्द राधे। यह मानना ही तेरा साध्य दिला दे। (768)
हरि तेरे उर रह गोविन्द राधे। यह मानना ही तोहिं हरि ते मिला दे। (769)
हरि में निवास तेरा गोविन्द राधे। यह मानना ही तोहिं लक्ष्य दिला दे। (770)

राधा गोविंद गीत

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' के अनेक पदों में भी जीव के परम लक्ष्य को इंगित किया है–

मन तेरो साँचों मीत गोपाल।
तेरो स्वामी सखा सुत पति गोपाल।
तू है अंश तेरा अंशी है गोपाल।
तू चह नित्य दिव्य सुख गोपाल।
तू चह सुख सुखघन गोपाल।
तू चह सुख भूमा गोपाल।
x x x x x
केवल भक्ति से ही मिले गोपाल।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद – 35

अर्थात संत कृपालु जी महाराज कहते हैं कि जीव के समस्त नाते एक मात्र कृष्ण से हैं क्योंकि आत्मा अंश और परमात्मा अंशी है और अंश का अंशी से प्रेम स्वाभाविक है। चूँकि वह दिव्य अंशी का अंश है उसका स्वाभाविक लक्ष्य दिव्य, चिन्मय, भूमा सुख और आनन्द की प्राप्ति है। साथ ही संत कृपालु महाराज ने उक्त

पद में जीव के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की विधि और मार्ग को भी निरुपित कर दिया कि कर्म, योग, ज्ञान मार्ग से उस दिव्य सुख को प्राप्त नहीं किया जा सकता। गोपाल को प्राप्त करने का एक मात्र उपाय निष्काम, नित्य व अनन्य भक्ति ही है।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ में श्री कृष्ण माधुरी के एक छन्द में संत कृपालु महाराज ने जीव ब्रह्म का संबंध जनक-शिशु का बताकर जीव के चरम लक्ष्य की ओर संकेत किया है-

भले हैं बुरे हैं हैं तेरे, तेरे तेरे तेरे।
वचन वेद में है यह तेरे,
सबै जीव सुत तेरे, तेरे तेरे तेरे।
श्रुति कह बिना अनुग्रह तेरे,
जानि न सक सुत तेरे, तेरे तेरे तेरे।
x x x x x
हैं 'कृपालु' जो निज जन तेरे,
सोइ प्रेम दे तेरे, तेरे तेरे तेरे।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद सं.-19

अर्थात भक्त कहता है- हे श्री कृष्ण। हम अच्छे या बुरे जैसे भी हैं, हैं तो तुम्हारे ही। वेद में तुमने कहा है- 'अमृतस्य वै पुत्राः' अर्थात सभी जीव तुम्हारी संतान हैं। वेद यह भी कहता है कि तुम्हारी अनुकम्पा के बिना तुम्हारा अंश जीव तुम्हें जान नहीं सकता। तुम्हारे नाम के बल पर हमें भी विश्वास है कि कभी हमें भी तुम्हारी कृपा प्राप्त होगी। हे कृपालु! तुम्हारे अपने प्रेमी-जन ही किसी को तुम्हारा प्रेम प्रदान कर सकते हैं।

निष्कर्ष -

इस प्रकार ईश्वर की निष्काम और नित्य शरणागति एवं उस परम तत्व की अनुभूति ही लक्ष्य अर्थात आनन्द प्राप्ति और समस्त दुःखों की निवृत्ति तक ले जा सकती है। उस परम दिव्य आनन्द की प्राप्ति पर ही जीव अर्थात मानव की लक्ष्य

पिपासा शांत होती है और रस पिपासा को शांत करने का एक ही मार्ग है, ब्रह्म अर्थात भगवान की अनन्य, निष्काम, निरन्तर शरणागति और यह सब केवल मानव ही कर सकता है। अतः मानव के परम चरम लक्ष्य का निरुपण करना संत कृपालु महाराज के साहित्य का उद्देश्य दृष्टिगोचर है तथा आचार्य भरतमुनि ने जिन काव्य प्रयोजनों का निरूपण 'नाट्यशास्त्र' में किया है उनमें उपदेश प्रवृत्ति, मानव समाज में ज्ञान की अभिवृद्धि एवं मूल रूप में लोक मंगल की भावना का प्रयोजन संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित है। लोक मंगल की कामना उनके प्रस्तुत काव्य प्रयोजन का आधार है।

- **लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग**

संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का प्रयोजन मानव के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग का निरूपण करना है। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार उनके साहित्य लेखन का प्रस्तुत प्रयोजन, चतुर्वर्ग में से धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति एवं ज्ञान में अभिवृद्धि करना है। प्रस्तुत प्रयोजन सामाजिक के संदर्भ में है। प्रस्तुत साहित्याध्ययन से सामाजिक वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति करेगा। निश्चित रूप से उपर्युक्त प्रयोजन जनहित एवं लोक मंगल की भावना पर ही आधारित है। जैसा कि 'काव्यालंकार' ग्रंथ रचयिता आचार्य भामह ने अपने ग्रंथ में काव्य प्रयोजनों का निम्नानुसार निरूपण किया है–

'धमार्थ काममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च'। *काव्यालंकार :1–12*

अर्थात काव्य रचना से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा कलाओं में विलक्षणता प्राप्त होती है। इसी प्रकार आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में–

'धर्म्यं यशस्य भामुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्'। *नाट्यशास्त्र : 1–113–15*

यह कहकर धर्म, यश, आयु, हित, ज्ञान बुद्धि के विकास को काव्य प्रयोजन स्वीकार किया है। इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज का प्रस्तुत प्रयोजन धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति एवं ज्ञान अभिवृद्धि पर आधारित है। उक्त प्रयोजन के मूल में लोक मंगल की भावना प्रमुख है। उनके समस्त साहित्य के शोधपरक विश्लेषण करने पर

मानव के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयोजन ही उभर कर सम्मुख प्रकट होता है। लक्ष्य प्राप्ति अर्थात भगवत्प्राप्ति हेतु इन्होंने वेदशास्त्र सम्मत तीन मार्ग बताए हैं– कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग।

लक्ष्य प्राप्ति के मार्गों के संदर्भ में उन्होंने अपने सिद्धान्त ग्रंथ में निरुपण किया है कि–

"ईश्वर प्राप्ति के एक मात्र तीन उपाय अर्थात मार्ग हैं। आप कहेंगे, जब भौतिकवाद में अनेक उन्नतियाँ हो रही हैं तो ईश्वर प्राप्ति में अनादिकाल से अब तक तीन ही मार्ग क्यों हैं ? चौथे मार्ग की खोज आज तक किसी आध्यात्मिक वैज्ञानिक ने क्यों नहीं की ? पर शायद आप यह नहीं जानते कि नेचर के विपरीत विज्ञान नहीं हुआ करता। आँख से अनादिकाल से देखने का ही काम लिया जाता है। वह कार्य विज्ञान के द्वारा भी कान नहीं कर सकता। उसी प्रकार इन तीनों का स्वाभाविक विज्ञान है जिसे समझ लेने पर आपका यह भ्रम समाप्त हो जाएगा। वेदों, शास्त्रों, पुराणों आदि समस्त ग्रंथों में तीन ही मार्गों का प्रतिपादन किया गया है– प्रथम कर्म, द्वितीय ज्ञान एवं तृतीय भक्ति या उपासना। बस,चौथा कोई मार्ग नहीं। यदि कहीं पढ़ने सुनने को मिलेगा तो वह इन्हीं तीनों के अन्तर्गत ही होगा।" इसका विज्ञान यह है कि ब्रह्म की तीन स्वरूप शक्तियाँ हैं– सत्ब्रह्म, चित्ब्रह्म एवं आनन्दब्रह्म। इसमें सत् ब्रह्म का स्वभाव कर्म वाला है, चित् ब्रह्म का स्वभाव ज्ञान वाला है तथा आनन्द ब्रह्म का स्वभाव प्रेम का है। चौथा कोई स्वभाव ईश्वर का नहीं है और उसी के अनादि सनातन अंश होने के कारण प्रत्येक जीव का भी तीन ही प्रकार का स्वभाव हो सकता है– कर्म, ज्ञान और भक्ति का। जब चौथा स्वभाव ही नहीं है तो चौथा मार्ग कैसे बन सकता है ?"

प्रेम रस सिद्धान्त : पृ.सं.–129

संत कृपालु महाराज ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से ईश्वर प्राप्ति के मार्गों का निरुपण किया है तथा इस प्रश्न पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है कि ईश्वर प्राप्ति के मार्गों का वैविध्य जनसमुदाय को क्यों भ्रमित करता है ? श्रेष्ठ उपाय कौनसा है और क्यों ? इन्हीं जिज्ञासाओं की तृप्ति हेतु उन्होंने वेद शास्त्र सम्मत विश्लेषण किया। उनके द्वारा रचित 'राधा गोविन्द गीत' में उन्होंने बड़े सुन्दर एवं वैज्ञानिक ढंग से भगत्प्राप्ति के उपायों संबंधी सभी मार्गों, जिज्ञासाओं, समस्याओं, परिणामों का निरुपण किया है।

जब उद्धव श्री कृष्ण से ईश्वर प्राप्ति के उपायों की विविधता पर प्रश्न करते हैं।

ऊधो तो माधो के गोविन्द राधे। सदा ते हैं नित्य पार्षद बता दे।। (2151)
जीव कल्याण हित गोविन्द राधे। ऊधो पूछे माधो ते प्रश्न बता दे।। (2152)
प्रश्न था श्रेय के गोविन्द राधे। मार्ग क्यों अनेकों बन गए बता दे।। (2153)
उन मार्गों में गोविन्द राधे। कौन सत्य कौन असत्य बता दे।। (2154)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार श्रीमद् भागवत के उद्धव एवं कृष्ण के वार्तालाप प्रसंग में उन्होंने भगवत्प्राप्ति के मार्गों को निरुपित किया है। जब उद्धव भगवान कृष्ण से भगवत्प्राप्ति के मार्गों की विविधता का कारण पूछते हैं तो कृष्ण उन्हें इस विविधता का विज्ञान बताते हैं–

भगवान श्री कृष्ण गोविन्द राधे। बोले सुनो प्रिय ऊधो बता दे।।(2156)
कृष्ण ने कहा ऊधो गोविन्द राधे। मेरी वेद वाणी है दिव्य बता दे।।(2157)

x x x x x x

कछु पाखंडियों ने गोविन्द राधे। कल्पित मत भी गढ़ दिए बता दे।।(2171)
जो भी थे माया बद्ध गोविन्द राधे। निज रूचि युक्त अर्थ कर दिए बता दे।।(2172)

राधा गोवन्दि गीत

इस प्रकार श्री कृष्ण उद्धव से जीवों के स्वभाव गत, रूचिगत एवं चित्त वृत्ति संबंधी विविधता को ही वेद वाणी के दिव्य अर्थ का विविधतापूर्ण अर्थ लगाने के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। इसी संदर्भ में संत कृपालु जी महाराज ने भगवत्प्राप्ति के प्रत्येक मार्ग का वैदिक विश्लेषण करते हुए निरूपण किया है–

(क) कर्म मार्ग –

संत कृपालु जी महाराज ने अपनी विविध रचनाओं में वैदिक विज्ञान से कर्म मार्ग को निरुपित किया है। कर्म मार्ग किस प्रकार भगत्प्राप्ति मार्ग हेतु सहायक है अथवा अपूर्ण मार्ग है ? कर्म मार्ग का फलकारी परिणाम क्या है ?, कर्म मार्ग से क्या तात्पर्य है ? आदि समस्त जिज्ञासाओं का सटीक शास्त्रपरक उत्तर उन्होंने अपनी

रचनाओं में दिया है। वेदों शास्त्रों में कर्म मार्ग के परिणाम को मूर्खतापूर्ण बताया गया है यथा–'प्रेमरस सिद्धान्त' में संत कृपालु महाराज ने निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है।

अंधतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। (ईश.1)
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायारताः।।

अर्थात् जो कर्म करता है वह अज्ञान को प्राप्त करता है उत्तर दिया गया–

ईष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छेयो वेदयन्ते प्रमूढ़ाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।।

अर्थात् कर्मकाण्ड का फल स्वर्ग लोक है, वह क्षणभंगुर है, मायिक है अतएव कर्म करना घोर मूर्खता है। अतएव कर्म से ईश्वर प्राप्ति या माया निवृत्ति की समस्या हल ही नहीं हो सकती। पुनः वेद कहता है कि–

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणों निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।

मुण्डकोपनिषद् 1–2–190

अर्थात् कर्म करके आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने अनुभव कर लिया कि कर्म से मुक्ति नहीं हो सकती स्वर्ग मात्र मिलता है।" *प्रेम रस सिद्धान्त : पृ.सं.–131*

इसी प्रकार उन्होंने 'राधा गोविन्द गीत' भाग–1 में बहुत ही सुन्दर रूप में कर्म मार्ग का निरूपण किया है। कर्म क्या है इसका उत्तर उन्होंने निम्न प्रकार से दिया–

कुछ मीमांसक गोविन्द राधे। धर्म को ही श्रेष्ठ श्रेय बता दे।। (2173)
कछु साहित्यिक गोविन्द राधे। यश को ही श्रेष्ठ श्रेय बता दे।। (2174)

x x x x x x x x

कछु भोग कछु स्वार्थ गोविन्द राधे। कछु यज्ञ आदि को श्रेय बता दे।। (2178)
ऊधो किन्तु उपर्युक्त गोविन्द राधे। सब ही हैं एक मात्र कर्म बता दे।। (2179)

राधा गोविन्द गीत : कर्म– पृ.सं.–191

इस प्रकार धर्म, यश, काम, शम, त्याग, ऐश्वर्य, भोग, यज्ञ आदि सभी कर्म मार्ग ही हैं। आगे संत कृपालु जी महाराज ने कर्म मार्ग का फल परिणाम क्या है ?

इसका निरुपण किया है–

इन सब कर्मों के गोविन्द राधे। फल हैं आदि अन्त वाले बता दे।। (2180)

x x x x x x x x x x

अतएव उपर्युक्त गोविन्द राधे। मार्ग है असत्य अरु त्याज्य बता दे।। (2185)

राधा गोविन्द गीत : कर्म

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ में भी अनेक छन्दों में कर्म मार्ग की अपूर्णता को व्यक्त किया है–

एक बार ज्ञानी ऊधो पूछे बलभाय। श्रेय के अनेक पथ बुध क्यों बताय।

इतने बने क्यों पथ मोहिँ समुझाय। इनमें से सत्य कौन और क्यों बताय।

ब्रज रस माधुरी : भाग–2, पद, 05

एक बार ज्ञानी उद्धव श्री कृष्ण से प्रश्न पूछते हैं कि श्रेय को प्राप्त करने के इतने पथ क्यों बन गए हैं और इनमें से सत्य मार्ग कौनसा है ? इस प्रश्न के प्रतिउत्तर में कृष्ण ने श्रेय प्राप्ति के मार्गों के वैविध्य का कारण बताया कि वेदों में तो श्रेय प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग बताया गया है किन्तु तीन गुणों से युक्त मायिक वेद पाठियों ने अपनी चित्त वृत्ति के अनुसार इसके भिन्न–भिन्न अर्थ कर दिए–

वेद में तो मैंने एक धर्म बताय।
सारे धर्म भागवत धर्म कहाय।
ब्रह्म ने तो वेद ज्ञान मनु को कराय।
ऐसे ही परम्परा से वेद चली आय।
वेद पाठियों का तो स्वभाव भिन्न आय।
वासना भी उन मन भिन्न भिन्न आय।
याते वेद वाणी अर्थ नाना प्रकटाय।

ब्रज रस माधुरी–02, पद–05

वेद वाणी का स्वरुचि एवं चित्त वृत्ति से भिन्न भिन्न अर्थ लगाने वालों में से कुछ वेद निन्दक एवं दंभी जनों ने भी कुछ भ्रमित मार्ग चला दिए। कुछ धर्म को, कुछ

यश प्राप्ति को, कुछ काम सुख को कुछ सत्य प्राप्ति को, कुछ शम, दम, ऐश्वर्य, कुछ भोग लिप्सा, कुछ यज्ञ, तप, व्रत, नेम, उपवास को श्रेय प्राप्ति का मार्ग बताते हैं।

किन्तु संत कृपालु महाराज उक्त सभी मार्गों को कर्म मार्ग का नाम देकर अनित्य एवं अल्प कालिक सुख दायक मानते हैं।

कुछ पथ वेद निन्दकों ने भी चलाय।
कुछ पथ दंभी जनों ने भी चलवाय।
माया वश सब की ही मति भरमाय।
याते निज रुचि का ही पथ बतलाय।
कोउ पथ धर्म कोइ यश को बताय।
कोउ श्रेय पथ शम दम को बताय।
कोउ ऐश्वर्य कोउ भोग को बताय।
कोउ त्याग कोउ यज्ञ तप बतलाय।
कोउ व्रत कोइ यम नियम बताय।
ऊधो जो बताये सब कर्म कहलाय।
कर्म फल तो सदा अनित्य बतलाय।
कुछ काल अल्प स्वर्ग लोक सुख पाय।
पुण्य क्षीण होय जब पुनि दुख पाय।

ब्रज रस माधुरी -02, पद सं.-05

अर्थात उपर्युक्त सभी कर्म का पालन यदि किया जाए तो उसका परिणाम अल्पकाल के लिए स्वर्ग की प्राप्ति है जो पुण्य क्षीण होते ही छिन जाएगा। कर्म मार्ग का अन्तिम प्राप्तव्य स्वर्ग का वास है, वो भी अल्पकालिक है। जैसा कि 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में उन्होंने लिखा है।

ज्ञान मरै दै मुक्ति पद, कर्म मरै दै स्वर्ग। *भक्ति शतक : दोहा-61*

इसी प्रकार 'युगल रस' ग्रंथ के निम्न छन्द में संत कृपालु महाराज ने हरि कृपा को ही श्रेय प्राप्ति का आधार, कारण, लक्षण बताया। समस्त धर्म-कर्म बेकार हैं जब तक कि हरि की कृपा नहीं हो जाती-

कैसे कहुँ तू कृपालु कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
सुन्यो बिनु कारण कृपा करे कान्हा,

पतितन पर नित कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कोउ कह धर्म कर्म ते कान्हा,
मन हो निर्मल कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कोउ कह योग मार्ग ते कान्हा,
चित्त शुद्ध हो कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कोउ कह नवधा भक्तिहिँ कान्हा,
करत दिव्य मन कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
सार 'कृपालु' एक है कान्हा,
कृपा तिहारी कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।। *युगल रस : पद सं. 20*

अर्थात बिना प्रभु की कृपा के धर्म, कर्म, योग, ज्ञान, भक्ति मार्ग अधूरे हैं।

इसी प्रकार 'युगल शतक' रचना में भी संत कृपालु महाराज ने श्रेय प्राप्ति के समस्त मार्गों का आधार हरि कृपा को ही बताया है–

कान्हा मैंने यह जाना, जाना जाना जाना।
तू ही मम प्रियतम है कान्हा,
यद्यपि कर्म, योग अरु ज्ञाना,
तीनिहुँ पथ बुध माना, जाना जाना जाना।
कछु बुध जन औरहु पथ माना,
सबै व्यर्थ बिनु कान्हा, जाना जाना जाना।
जाय 'कृपालु' न माया कान्हा,
कान्ह कृपा बिनु जाना, जाना जाना जाना।

युगलशतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद सं. 04

अर्थात जीव और ब्रह्म के बीच की बाधा अर्थात माया को हटाने के लिए जितने भी मार्गों का अवलम्ब लिया जाए, बिना कृष्ण की कृपा के सभी कर्म, योग, ज्ञान अपूर्ण व अनित्य हैं। जिस कर्म से भगवान कृष्ण में आस्था, प्रेम प्रगाढ़ हो वही कर्म वास्तव में कर्म है। निष्काम भाव से कृष्ण के सुख के लिए किया गया कर्म ही वास्तव में कर्म है। जैसा कि 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में संत कृपालु महाराज ने जीव को दास और कृष्ण को सनातन स्वामी बताते हुए ब्रह्म की सेवा को ही लक्ष्य प्राप्ति का साधन और उद्देश्य बताया है।

सेवक सेवा ही चहइ, सेव्य श्याम रूचि जान।
तिन सुख महँ रह सुखी निज, उर न कामना आन।

भक्तिशतक : दोहा-46

इसी प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में भी कर्म मार्ग का परिणाम मात्र नश्वर स्वर्गलोक की प्राप्ति बताया है-

अमोलक रतन मिलत बिनु मोल।
प्रेम रतन याचत ज्ञानीजन, सुन लो कानहि खोल।
x x x x x
स्वर्ग कर्म ते, सिद्धि योग ते, प्रेम बोल हरि बोल।
रतन 'कृपालु' अमोलक पायो, हमहुँ बजावत ढ़ोल।।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद सं.-05

वास्तव में कर्म क्या होना चाहिए। इसका उत्तर भी संत कृपालु जी महाराज ने अपने ग्रंथ 'राधा गोविन्द गीत' में दिया है।

धर्म अर्थ काम आदि गोविन्द राधे। कृष्ण प्रीत्यर्थ करणीय बता दे।। 2277
हरि के निमित्त जो हो गोविन्द राधे। कर्म वही कर्म यह कर्मी को बता दे।। 2278
x x x x x
जिस कर्म धर्म ते हो गोविन्द राधे। श्यामा श्याम तुष्टि वही कर्म बता दे।। 2282

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज कृष्ण के प्रति अर्पित कर्म को ही श्रेष्ठ कर्म मानते हैं। केवल कर्म मार्ग का अवलम्ब निराधार, अनित्य, अल्पकालिक सुख देने वाला है। दिव्य आनन्द की प्राप्ति इस मार्ग से सम्भव नहीं है।

(ख) ज्ञान मार्ग -

भगवत्प्राप्ति के उपायों में दूसरा मार्ग ज्ञान मार्ग है। संत कृपालु महाराज ने ज्ञान मार्ग का विश्लेषण वैदिक विज्ञान को आधार बनाकर किया है तथा निरुपित किया है कि ज्ञान मार्ग ईश्वर प्राप्ति के लिए सक्षम मार्ग नहीं है तथा दुरुह एवं कठिन

मार्ग भी है। ज्ञान मार्ग क्या है ? ज्ञान की परिसीमा क्या है ? ज्ञान मार्ग का अधिकारी कौन है ? ज्ञान मार्ग का परिणाम क्या है ? वास्तव में ज्ञान क्या है ? इन सभी जिज्ञासाओं को उन्होंने 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में वैदिक तत्व से समझाने का प्रयास किया है कि ज्ञान दो प्रकार का होता है-

"इश्वरीय ज्ञान भी दो प्रकार का होता है जैसे ईश्वरीय विषय का शाब्दिक ज्ञान तो प्रचुर मात्रा में हो, वेद शास्त्र कण्ठस्थ हों, प्रवचन भी दे सकता हो, बड़ी बड़ी बातें बता सकता हो किन्तु स्वयं ने कुछ भी साधना न की हो। यह शाब्दिक ईश्वरीय ज्ञान है। अनुभवात्मक ईश्वरीय ज्ञान वह है जिसमें वेद शास्त्र सम्मत आप्तानुमोदित पथ पर चलकर ईश्वर को ईश्वरीय कृपा द्वारा जाना हो।"

प्रेम रस सिद्धान्त : ज्ञान एवं ज्ञान योग, पृ.सं.-160

ज्ञान का विश्लेषण करते हुए संत कृपालु महाराज ने कोरे शाब्दिक ज्ञान को अभिमान का पुंज माना है। वास्तविक ज्ञान तो साधनात्मक अनुभव से परिपूर्ण होता है जिसमें लेशमात्र भी अभिमान की गंध नहीं होती। कोरे शाब्दिक ज्ञान पर उन्होंने 'राधा गोविन्द गीत' में लिखा है-

भाव यह है भक्ति बिनु गोविन्द राधे। ब्रह्म ज्ञान तो अभिमान बढ़ा दे।। (2519)
अनुभवहीन ज्ञान गोविन्द राधे। लख चौरासी योनि घुमा दे।। (2520)
शब्द ज्ञान ज्ञान नहिं गोविंद राधे। यह ज्ञान ज्ञानाभिमान बढ़ा दे।। (2522)

राधा गोविन्द गीत : ज्ञान

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' रचना में भी भक्ति बिना ज्ञान को अभिमान जन्य माना है। **ज्ञान बिना हो भक्ति पै, भगति बिना नहिं ज्ञान।**
भक्ति बिना हो ज्ञान जो, लावत उर अभिमान।।

भक्ति शतक : दोहा-47

शब्द ज्ञान का लाभ तो तब है जब जीव उस ज्ञान को साधनात्मक बनाए। जैसा कि राधा गोविन्द गीत में संत कृपालु जी महाराज ने कहा-

प्रथम शब्द ज्ञान करे गोविन्द राधे। फिर करे भक्ति भक्ति अनुभव करा दे।। (2510)

राधा गोविंद गीत

केवल शाब्दिक ज्ञान कदापि लक्ष्य की प्राप्ति नहीं करवा सकता जिस प्रकार पाकशास्त्र रट लेने से भूख का शमन नहीं हो सकता–

पाक शास्त्र रटने ते गोविन्द राधे।भूख नहीं जाये वाय खाना खिला दे।।(2511)

राधा गोविंद गीत

भूख का शमन तो खाना खाने से होगा। उसी प्रकार केवल ज्ञान लक्ष्य प्राप्त नहीं करवा सकता अपितु उसके लिए ज्ञान को साधना के स्तर पर ले जाना होगा। सच्चा ज्ञान वही है जो हरि मिलन के मार्ग को खोले, सच्चा ज्ञान वही है जो ईश्वरीय प्रेम में सहायक हो, सच्चा ज्ञान वही है जब ब्रह्म से अपनापन होने लगे। 'राधा गोविन्द गीत' में संत कृपालु जी महाराज ने लिखा है–

उतना ही ज्ञान जानो गोविन्द राधे। जितने में गुरु तोहिं हरि ते मिला दे।। (2529)
ज्ञान है अनन्त किन्तु गोविन्द राधे। तू तो साध्य साधन ज्ञान करा दे।। (2530)
वह ज्ञान अज्ञान गोविन्द राधे। श्यामा श्याम ते जो ना प्रेम करा दे।। (2531)

राधा गोविन्द गीत

संत कृपालु जी महाराज वास्तविक ज्ञान को भक्ति रूपी जननी का पुत्र मानते हैं। भक्ति उपजने के उपरान्त व्यक्ति को ज्ञान की स्वतः ही प्राप्ति हो जाती है। इसी कारण वे भक्ति की स्थापना को प्रथम मानते हैं जिससे ज्ञान की उपज तो स्वतः ही हो जाएगी।

ज्ञान वैराग्य दोनों गोविन्द राधे। भक्ति महरानी के पुत्र हैं बता दे।। (2540)
जग में भी माता बिनु गोविन्द राधे। पुत्र की प्राप्ति असंभव बता दे।। (2541)
ज्ञान वैराग्य मोक्ष गोविन्द राधे। मिले बिनु माँगे कृष्ण भक्ति ते बता दे।। (2542)

राधा गोविंद गीत : ज्ञान

स्वयं ज्ञान के सिरमौर एवं ज्ञानमार्ग अवलम्बी जगद्गुरु श्री शंकराचार्य भी ज्ञान को हरि भक्ति की उपज मानते हैं–

शंकराचार्य कह गोविन्द राधे। वेदव्यास नारायण हैं बता दे।। (2559)
शंकर कहे ज्ञान गोविन्द राधे। हरि की कृपा ते ही होगा बता दे।। (2561)

राधा गोविंद गीत

संत कृपालु जी महाराज बिना ईश्वरीय प्रेम के ज्ञान को अज्ञान की ही संज्ञा देते हैं तथा ज्ञानी को जब ईश्वरीय प्रेम मिलता है तब ही वह अपने ब्रह्म का असली रूप जान पाता है।

ज्ञानी जब प्रेम पाये गोविन्द राधे। ब्रह्म को तो अब जाना सबको बता दे।। (2535)
प्रेम बिनु ज्ञान व्यर्थ गोविन्द राधे। ऐसा ज्ञान अज्ञान ज्ञानी को बता दे।। (2536)
धान की भूसी का गोविन्द राधे। कूटना है व्यर्थ केवल श्रम है बता दे।। (2537)
ऐसे हरि भक्ति बिनु गोविन्द राधे। ज्ञान का प्रयास केवल श्रम है बता दे।। (2538)

राधा गोविन्द गीत : ज्ञान

संत कृपालु जी महाराज ज्ञान मार्ग का परिणाम कठिन और दुरुह बताते हुए निरुपित करते हैं कि भक्ति रहित ज्ञान तो पतनकारी होता है, जीवन मुक्त अमलात्मा का भी पतन हो सकता है यदि वह भक्ति का आश्रय न ले यदि ज्ञान मार्ग में भक्ति का अवलम्ब लिया जाए तो ज्ञानी को उसका परम प्राप्य ब्रह्म ज्ञान एवं अपवर्ग अर्थात मुक्ति स्वयं ही प्राप्त हो जाएगी। इसका उदाहरण वे जड़ मुनि भरत परमहंस का देते हैं जो परम ज्ञानी होते हुए भी एक हिरण के प्रेम में आसक्त हो जाते हैं और उनका पतन हो जाता है और उन्हें अगला जीवन हिरण का मिलता है।

हरि ज्ञान ते हो भक्ति गोविन्द राधे। भक्ति ते ब्रह्म ज्ञान आप हो बता दे।। (2563)
भक्ति सहित ज्ञान गोविन्द राधे। ब्रह्म ज्ञान अरु अपवर्ग दिला दे।। (2564)
भक्ति के बिना अधूरे गोविन्द राधे। ज्ञानी, ब्रह्मज्ञान वाको पतन करा दे।। (2565)
भक्तिहीन ब्रह्म ज्ञान गोविन्द राधे। जड़ भरत को भी तन हिरण दिला दे।। (2567)

राधा गोविंद गीत

संत कृपालु जी महाराज ज्ञानी और भक्त में एक बारीक अन्तर बताते हुए लिखते हैं– **ज्ञानी चले निज बल गोविन्द राधे।**
भक्त चले हरि बल अन्तर बता दे।। (2585) *राधा गोविंद गीत*

ज्ञान मार्ग के अधिकारित्व पर भी संत कृपालु जी महाराज ने कलम चलाई है– ज्ञान मार्ग के अवलम्बन हेतु भी चार शर्तें हैं। यदि उन शर्तों को हम पूरा करते हैं तो ही ज्ञान मार्ग ग्रहण कर सकते हैं–

चार साधनों ते युक्त गोविन्द राधे। ज्ञान मार्ग का अधिकारी बता दे।। (2664)

विवेक वैराग्य गोविन्द राधे। शमादि षट् मुमुक्षु साधन बता दे। (2665)

राधा गोविंद गीत

उक्त चार साधनों से सम्पन्न होने के बाद ही ज्ञान मार्ग को पाया जा सकता है जो कि बहुत ही कठिन कार्य है तथा उसका परिणाम भी आनन्द प्राप्ति तक नहीं ले जा सकता। इसके विपरीत हरि भक्ति सरल और पूर्ण फलदायी है।

ज्ञान का मार्ग क्लिष्ट गोविन्द राधे। तलवार धार पै चलना बता दे।। (1604)

भक्ति का मार्ग सरल गोविन्द राधे। नाव पै बैठो हरि पार करा दे।। (1605)

राधा गोविन्द गीत

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' रचना में भी संत कृपालु महाराज ने ज्ञानियों के ब्रह्म को असक्षम घोषित किया है।

बिनु हरि कृपा न जाति यह, माया अति बलवान।
ज्ञानिन ब्रह्म न कछु कर, पुनि किमि कर कल्यान।। (48)

बिनु हरि कृपा न पाइ सक, ज्ञानिहुँ ब्रह्म ज्ञान।
ब्रह्म अकर्ता वेद कह, सोचहु मनहि सुजान।। (49)

भक्ति शतक

अर्थात ईश्वर की माया शक्ति अति बलवान है और बिना हरि कृपा के इस माया हो हटाना असंभव है क्योंकि ज्ञान मार्ग ब्रह्म को अकर्ता बताता है तो वह माया रूपी अज्ञान को किस प्रकार मिटा सकता है ? इसी प्रकार ज्ञानी हो या योगी जब उसके मन में कृष्ण भक्ति प्रविष्ठ करती है तब ही उसे वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है जैसे कि सनकादि शुकादि परमहंसों को ब्रजरस प्राप्त हुआ था।

ज्ञानी अरु योगी जवै, कृष्ण भक्ति उर आन।
कृष्ण कृपा ते ही तवै, पावै ब्रह्म ज्ञान।। (27)

कोटिन ज्ञानिन मध्य कोउ, प्रेम सुधा रस पाय।
जिमि सनकादि शुकादि मन, ब्रज रस रहे डुबाय। (28)

भक्ति शतक

ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग के परिणाम को उन्होंने एक दोहे में निरुपित किया है–

ज्ञान मरै दै मुक्ति पद, कर्म मरै दै स्वर्ग।
अमर रहै इक भक्ति ही, चह न स्वर्ग अपवर्ग।। (61) *भक्ति शतक*

ज्ञान मार्ग पाँच तत्वों और अहं का भेदन तो कर देता है किन्तु प्रकृति का भेदन ज्ञान मार्ग नहीं कर सकता–

पंच तत्व अरु अहं का, भेदन करि दे ज्ञान।
पै बिनु भक्ति न करि सके, भेदन प्रकृति महान।। (62) *भक्ति शतक*

ऐसा ही भाव उन्होंने 'राधा गोविन्द गीत' में भी व्यक्त किया है–

ज्ञानी भूमि, जल, तेज, गोविन्द राधे। वायु आकाश अहं भेदन करा दे।। (2632)
ज्ञानी, महान, प्रकृति गोविन्द राधे। एक मात्र भक्ति ते ही भेदन करा दे।। (2633)

राधा गोविन्द गीत

वास्तव में ज्ञान की परिभाषा क्या है ? इसके उत्तर में 'भक्ति शतक' का निम्न दोहा प्रस्तुत है–

जो हरि सेवा हेतु हो, सोई कर्म बरवान।
जो हरि भगति बढ़ावै, सोई समुझिए ज्ञान।। (66)

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा-वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान।। (74) *भक्ति शतक*

ईश्वर की सच्ची भक्ति अपने आप ही जीव को ज्ञान मय बना देती है। हरि कृपा से जो ज्ञान प्राप्त होता है वही सच्चा ज्ञान होता है। इसी भाव को निम्न दोहे में

निरूपित किया है।

मन मनमोहन भजन कर, सजन सनेही मान।
बिनुहिं बुलाये आइ हैं, जग विराग अरु ज्ञान।। (75)

प्राकृत मन ते होत है, ज्ञानिन प्राकृत ध्यान।
भक्तन मन हरि कृपा ते, होत दिव्य सच मान।।(76) *भक्ति शतक*

कहने का तात्पर्य यह है कि संत कृपालु जी महाराज ज्ञान मार्ग को भी लक्ष्य प्राप्ति अर्थात ईश्वरीय प्राप्ति हेतु अक्षम साधन बताते हैं। ईश्वर की प्राप्ति तो प्रेम से होती है ज्ञान से नहीं। ब्रज में कृष्ण की लीला माधुरी देखकर यह सिद्ध हो जाता है कि प्रेम से ही भगवान मिलेंगे ज्ञान से नहीं ब्रजवासियों का प्रेम देख ज्ञानी जन भी खिसिया जाते हैं।

अचम्भो इक देख्यो ब्रज माहिं।
श्रुतिन महावाक्य अस्तुति सुनि, जो मुख बोलत नाहिं।
सोई गोकुल गोकुल बछरनि की, बोलनि सों बतराहिं।
जो स्वामिहुँ, बनि शंभु समाधिहुँ, जावन महँ सकु चाहिं।
सोई निदरतहुँ ब्रजबनितनि घर, जावन महँ बलि जाहिं।
लखि 'कृपालु' करतुति प्रीति येहि, ज्ञानी जन खिसियाहिं।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी पद सं.-01

अर्थात संत कृपालु जी महाराज कहते हैं कि मैंने ब्रज में एक महान आश्चर्य देखा। जो ब्रह्म वेदों के महावाक्यों की स्तुतियों को सुनकर मुँह से नहीं बोलता, वह ब्रह्म गोकुल में गायों के बछड़ों की अव्यक्त भाषा से बातें करता है। जो ब्रह्म भगवान शिव की समाधि में, स्वामी बनकर जाने में भी संकोच करता है, वही ब्रह्म, अपमानित होकर भी ब्रजांगनाओं के घर आने में बलिहार जाता है। 'कृपालु' कहते हैं कि प्रेम की इस विलक्षण करतूत को देखकर ज्ञानी लोग अत्यंत खिसिया जाते हैं।

ब्रह्म प्राप्ति का आधार प्रेम है, ज्ञान नहीं। जैसा कि 'श्यामा श्याम गीत' के दोहों में संत कृपालु जी महाराज ने स्पष्ट किया है–

श्यामा श्याम नाम जपो चाहे आठु यामा। बिना प्रेम रीझें नहिं कभू श्याम श्यामा। (08)
प्रेम ही है सब साधन परिणामा। प्रेम में भी भान रहे सदा निष्कामा। (09)
रिद्धि मिले सिद्धि मिले मिले मोक्ष धामा। सब है अज्ञान ज्ञान प्रेम श्याम श्यामा। (10)
प्रेम के अधीन श्याम नाम ते न कामा। लाला लाला कहें नित यशुमति भामा। (11)
कोरे शब्द ज्ञान ते बने ना कछु कामा। मन करो शरणागत पद श्री श्यामा। (30)

श्यामा श्याम गीत

अर्थात भगवान प्रेम से ही रीझते हैं, प्रेम रहित नाम भले ही आठों याम क्यों न लिया जाय श्यामा-श्याम की प्रसन्नता की प्राप्ति नहीं करा सकता। समस्त साधनों का फल प्रेम ही है। प्रेम में भी निष्कामता का सदा ध्यान रहे। रिद्धि-सिद्धि की प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति तो अज्ञान ही है। सच्चा ज्ञान तो वही है जिससे श्यामा-श्याम के प्रेम की प्राप्ति हो। श्याम सुन्दर तो प्रेम के ही अधीन हैं। उनको किसी विशेष नाम से ही बुलाया जाय ऐसी कोई शर्त नहीं है। यशोदा तो केवल 'लाला' कहकर अपने कन्हैया को पुकारती है। केवल पुस्तकीय ज्ञान से कल्याण की आशा करना व्यर्थ है। जब तक यह मन श्री राधा पद्म -पराग का मत्त मधुप नहीं बन जाता तब तक इसे संसार के विषय-विष अपनी ओर आकर्षित करते ही रहेंगे।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ में भी कई स्थानों पर संत कृपालु जी महाराज ने ज्ञान मार्ग की अपूर्णता को सिद्ध किया है-

वेद तत्व पर ब्रह्म बताय।
ब्रह्म अभिन्न रूप द्वै आय।
एक रूप साकार कहाय।
निराकार इक रूप बताय।
ज्ञान पथिक निज बल ते जाय।
याते बार बार गिरि जाय।
ब्रह्म ज्ञान ज्ञानी नहिं जाय।
मोक्ष लाभ ज्ञानी नहिं पाय।
कारण माया वाय न जाय।
द्वै माया का रूप बताय।
विद्या तथा अविद्या आय।

सत्व गुणी विद्या कहलाय।
ज्ञानिहुँ की विद्या न नसाय।
बिनु हरि भक्ति न विद्या जाय।
ज्ञानिहुँ भक्ति अपेक्षा आय।
निर्गुण ब्रह्म वेद बतलाय।
वाते ज्ञानी कृपा न पाय।
कृपा हेतु भक्तिहिं अपनाय।
तब हरि कृपा मुक्ति पद पाय।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद सं. 04

अर्थात परम तत्व ब्रह्म को पाने के लिए ज्ञानी जिस ज्ञान मार्ग का अवलम्ब लेते हैं, उससे उस परम तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि ज्ञानी का मार्ग के मध्य में ही पतन हो जाता है क्योंकि ज्ञानी निज बल का अभिमान करता है। ईश्वर प्राप्ति हेतु ईश्वरीय बल ही काम आता है। उसी से माया से छुटकारा प्राप्त होता है। अतः ज्ञान मार्ग परम तत्व की प्राप्ति में सर्वथा अक्षम है। क्योंकि भक्ति द्वारा प्राप्त ईश्वरीय कृपा से ही मुक्ति मिलती है।

इसी प्रकार का भाव संत कृपालु जी महाराज ने अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार स्पष्ट किया है। जैसे 'जीव का लक्ष्य' प्रवचन श्रृंखला में ज्ञान मार्ग की कमी को उल्लेखित किया है।

"कोई भी ज्ञानी माया से उत्तीर्ण नहीं हो सकता। मैंने आपको बार-बार बताया है कि कोई ज्ञान, कोई योग, कोई तपश्चर्या माया से उत्तीर्ण नहीं करा सकती। वो तो भगवान की कृपा से ही जा सकती है और ज्ञानी भगवान को मानता ही नहीं वो तो ब्रह्म का उपासक है और ब्रह्म कुछ करता नहीं तो कृपा कैसे करेगा ? शंकराचार्य ने स्वयं कहा- **उदासीनः स्तब्धः सततमगुणः सङ्ग रहितो।** *शंकराचार्य*

हे ब्रह्म! महाराज! तुम तो उदासीन हो कुछ नहीं करते। तो कृपा तो कर नहीं सकते तुम और बिना भगवान की कृपा के माया से निवृत्ति हो ही नहीं सकती। तो फिर कैसे शंकराचार्य तुम्हारा उद्धार होगा ? अब मैं जा रहा हूँ, श्री कृष्ण की शरणागति में

गये। भाष्य लिखने के बाद श्री कृष्ण की शरणागति में गए। और कहा– **कथं त्वत् कटाक्षं बिना तत्व बोधः।(शंकराचार्य)** बिना आपकी कृपा के माया से कोई उत्तीर्ण नहीं हो सकता। शंकराचार्य ने कहा– **तदनुग्रह हेतु के नैव च विज्ञनिन मोक्षसिद्धिर्भवितु मर्हति।** (शांकर भाष्य) ये शंकराचार्य का वाक्य है। "भगवान की कृपापूर्वक जो ज्ञान मिलेगा उससे मोक्ष होगा अपनी कमाई वाले ज्ञान से आत्म ज्ञान होगा, ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता। x x x x तो ज्ञानी–ब्रह्म का उपासक उसकी स्वरूपावरिका माया समाप्त हो गई फिर भगवान की शरणागति करके और गुणावरिका माया तो समाप्त करता हूँ तब ब्रह्म ज्ञान होता है तब भगवान में उसका लय होता है।"

जीव का लक्ष्य : (भाग –05) पृ.सं.–81–83

इस प्रकार भगवत्प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने वाला ज्ञान मार्ग कठिन एवं दुष्कर है तथा इसका फलदायी परिणाम भी परम सार्थक नहीं है।"

(ग) भक्ति मार्ग–

संत कृपालु जी महाराज ने भक्ति मार्ग को ही भगवत्प्राप्ति का एक मात्र साधन माना है। अपने सभी ग्रंथों में उन्होंने भक्ति मार्ग का विशद विवचेन किया है। भक्ति मार्ग सम्पूर्ण साधन सम्पन्न सरल एवं सर्व समर्थ मार्ग है। कलियुग में विशेषकर भक्ति ही एक मात्र मार्ग है, भव सागर के दुःखों से पार होने का। भक्ति का सर्वांग निरुपण उनकी रचनाओं में हमें मिलता है। कर्म, योग, ज्ञान आदि मार्ग बिना भक्ति के सहयोग के अधूरे और निष्प्रभ हैं। जबकि भक्ति मार्ग पूर्ण रूप से स्वयं सिद्ध है। **लखत रहत नित भक्ति मुख, कर्म, योग अरु ज्ञान।**

अति स्वतंत्र है भक्ति पथ, वेद पुराण बखान। (44) *भक्ति शतक*

कर्म, योग, ज्ञान जितने भी मार्ग बने हैं वे सभी भक्ति के बिना मृत देह के समान हैं। भक्ति सब साधनों की आत्मा है।

कर्म, योग अरु ज्ञान सब, साधन यद्यपि बखान।
पै बिनु भक्ति सबै जनु, मृतक देह बिनु प्रान।। (08) *भक्ति शतक*

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' भाग-01 में संत कृपालु जी महाराज ने भक्ति पथ को वेदानुसार सार रूप में निरुपित किया है। वेद, पुराण, शास्त्र, गीता, रामायण आदि में भक्ति का ही अवलम्ब सर्व समर्थ माना है।

ब्रह्म ने तीन बार गोविन्द राधे। वेदों को मथा सार भक्ति बता दे। (3674)
श्रुति रूपा माता भी गोविन्द राधे। श्री कृष्ण भक्ति ही सार बता दे। (3675)
भगिनी गीता आदि गोविन्द राधे। श्री कृष्ण भक्ति ही सार बता दे। (3676)

राधा गोविंद गीत भाग-01

सभी शास्त्रों का निचोड़ यही है कि कुटिलता को त्याग कर मन निरन्तर हरि में लगाना ही भक्ति है।

छहों शास्त्र सार यह गोविन्द राधे। आठों याम मन हरि गुरु में लगा दे। (3679)

राधा गोविंद गीत

संत कृपालु जी महाराज ने 'प्रेम रस सिद्धान्त' ग्रंथ में निम्न शब्दों में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ से बताया है-

"आपने आम का फल देखा होगा। यदि केवल देखने मात्र को आम का फल मिले तो समझिये यह ज्ञानियों का आनन्द है। यदि देखने एवं सूँघने को भी मिले तो समझिए योगियों का आनन्द है यदि देखने, सूँघने एवं चूसने को भी मिले तो यह भक्तों का प्रेमानन्द है।" *प्रेम रस सिद्धान्त : पृ.सं.-195*

भक्ति किसे कहते हैं ? भक्ति का तात्पर्य क्या है ? भक्ति हेतु क्या करना होगा ? इन प्रश्नों का उत्तर श्री संत कृपालु जी महाराज ने 'राधा गोविन्द गीत' में सुन्दर रूप से निरुपित किया है।

जीव का कृष्ण ते जो गोविन्द राधे। मिलन करा दे सोई भक्ति बता दे।। (3682)
भज् धातु अर्थ सेवा गोविन्द राधे। याते भक्ति शब्द अर्थ सेवा बता दे। (3727)

राधा गोविंद गीत

अर्थात भक्ति शब्द की उत्पत्ति भज् धातु से हुई है जिसका अर्थ है सेवा। सेवा अर्थात मन से अपने इष्ट की सेवा वासना बढ़ाना ही भक्ति है। भक्ति एक ऐसी शक्ति

है जो सर्व समर्थ भगवान को अपने अधीन कर देती है। भगवान भक्त के पीछे–पीछे चलते हैं ताकि भक्त के चरणों की धूलि मुझ पर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ। जैसा कि 'राधा गोविन्द गीत' में संत कृपालु जी महाराज ने निरुपित किया है।

समर्थ हो के भी गोविन्द राधे। भक्त हित हों असमर्थ बता दें। (3764)
भक्ति जीव को स्वतंत्र गोविंद राधे। कृष्ण को पूर्ण परतंत्र बना दे। (3766)

राधा गोविंद गीत

सभी साधनों का एक मात्र फल यही है कि उसे कृष्ण भगवान से प्रेम हो जाए।

सब साधनों का फल गोविंद राधे। एक मात्र श्री कृष्ण भक्ति बता दे। (3775)

राधा गोविंद गीत

आध्यात्मिक मार्ग में रिद्धि सिद्धि मिले या मोक्ष मिले यह सब अज्ञान ही है। सच्चा ज्ञान और फल तो ईश्वरीय प्रेम ही है। संत कृपालु महाराज ने 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ में कृष्ण प्रेम को ही सर्वप्रधान माना है–

रिद्धि सिद्धि मिले मिले मोक्ष धामा।सब है अज्ञान ज्ञान प्रेम श्याम श्यामा। (10)

श्यामा श्याम गीत

जो भगवान के शरणागत हो जाता है, कृष्ण भगवान उसके हाथ बिक जाते हैं और उसके भूत, भविष्य, वर्तमान के संरक्षक हो जाते हैं।

शरणागत हाथ बिके श्याम अरु श्यामा। औरों की लिखा पढ़ी करें उर धामा। (15)
भक्तों का योगक्षेम वहन करें श्यामा। पतितों का पाप लिखें बैठि उर धामा। (21)

श्यामा श्याम गीत

सभी साधनों का अवलम्ब छोड़कर जो जीव भगवान का भजन करते हैं उस स्थिति में वास्तव में भगवान उस जीव की भक्ति कर रहे होते हैं।

सब तजि जोइ भज श्याम अरु श्यामा। श्यामा श्याम भी भजें वाको आठु यामा। (20)

श्यामा श्याम गीत

ज्ञान, कर्म, भक्ति मार्ग के प्राप्तव्य में भी अन्तर बताते हुए संत कृपालु जी महाराज ने श्यामा श्याम गीत में लिखा है कि मूर्ख व्यक्ति कर्म करके स्वर्ग को प्राप्त करता है जो कि नश्वर है ज्ञानी साधना करके मुक्ति को प्राप्त करता है किन्तु हरि भक्त भक्ति करके ईश्वर के धाम को प्राप्त कर उनका प्रेम प्राप्त करता है।

मूर्ख कर्म करे स्वर्ग हित कह बामा।
ज्ञानी मुक्ति धाम पाये, भक्त हरि धामा। (48) *श्यामा श्याम गीत*

भक्ति मार्ग इतना सरल, सहज और निष्कंटक है कि इसमें कोई भी नियम, शर्तें नहीं है केवल भगवान से निष्काम एवं सरल प्रेम ही इसका आधार है। भक्ति शतक के निम्न दोहे में लिखा है–

देशकाल नहिं नियम कछु, नहिं कछु शिष्टाचार।
सरल हृदय नहिं छल कपट, प्रेम पंथ बलिहार। (41) *श्यामा श्याम गीत*

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज ने कई प्रकार से अपनी विविध रचनाओं में भक्ति पथ को निरूपित किया है। एक मात्र भक्ति मार्ग ही भगवत्प्राप्ति के प्रयोजन को सिद्ध करने में समर्थ है। अपनी 'प्रेम रस मदिरा' रचना में उन्होंने निम्न पद में भक्ति मार्ग की सर्वसिद्धा शक्ति को स्पष्ट किया है।

अमोलक रतन मिलत बिनु मोल।
प्रेम रतन याचत ज्ञानी जन, सुन लो कानहिं खोल।
श्याम प्रेम बिनु ब्रह्मसमाधिहुँ, मनहुँ निंब रस घोल।
तेहि बिनु कर्म, योग सब छूछो, लेहु तराजुहिं तोल।
स्वर्ग कर्म ते, सिद्धि योग ते, प्रेम बोल हरि बोल।
रतन 'कृपालु' अमोलक पायो, हमहुँ बजावत ढ़ोल।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–05

अर्थात ईश्वर रूपी रत्न प्रेम से बिना किसी मोल के सरलता से मिल जाता है। ज्ञानी, कर्मी जिसे पाने के लिए अनेक यत्न करके भी खाली हाथ रह जाते हैं उसे कृपालु जी महाराज कहते हैं कि मैंने तो मुफ्त में केवल प्रेम करके प्राप्त किया है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार संत कृपालु जी महाराज के साहित्य लेखन की प्रयोजनशीलता का एक कारण स्वतः ही स्पष्ट है कि वे मानव के चरम लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट कर जीवों के कल्याण में सहायता करना चाहते हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य जीव कल्याण के लक्ष्य पर ही आधारित है साथ ही साहित्य प्रेमियों को भी तृप्त करने में सक्षम है तथा काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार जैसा कि आचार्य भरतमुनि एवं आचार्य भामह ने काव्यप्रयोजनों की चर्चा में धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति तथा जनसामान्य में ज्ञान की अभिवृद्धि को काव्य प्रयोजन माना। इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य का प्रस्तुत प्रयोजन, पाठक को वास्तविक धर्म एवं ज्ञान की प्राप्ति के साथ मोक्ष प्राप्ति अर्थात भगवत्प्राप्ति की ओर उन्मुख करता है। लोक मंगल की कामना उनके प्रस्तुत काव्य प्रयोजन का आधार है।

• गुरु तत्त्व का वास्तविक स्वरूप

संत कृपालु महाराज के साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उनके साहित्य लेखन का एक उद्देश्य है गुरु तत्व को स्पष्ट करना। काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार उनके साहित्य लेखन का प्रस्तुत प्रयोजन संसार में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर पाठक वर्ग (सामाजिक) को उन्मुख करना है। जैसा कि 'काव्यादर्श' ग्रंथ में आचार्य दण्डी ने वाणी के महत्त्व को निरूपित करते हुए तीनों लोकों में ज्ञान का प्रकाश फैलाना, काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना है–

इदयंमधं तयः कृतस्नं जाएत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाहव्यं ज्योतिश संसाराद्ध दीप्यते। *काव्यादर्श (प्रथम परिच्छेद)*

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन या प्रस्तुत प्रयोजन संसार में गुरु तत्व से संबंधित भ्रांतियों का निराकरण करते हुए गुरु तत्व के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्रदान करना है। उक्त प्रयोजन के मूल में भी लोकहित की भावना प्रमुख रूप से विद्यमान है।

भारत एक आध्यात्मिक परम्परानुगामी देश है तथा यहाँ गुरु परम्परा सदियों से रही है। वास्तव में गुरु तत्व कौन हैं ? गुरु तत्व क्यों आवश्यक है ?, गुरु की वास्तविक परिभाषा क्या है ? गुरु की प्राप्ति कैसे संभव है ? गुरु का कार्य क्या है ? गुरु का वैदिक रहस्य क्या है ? गुरु परम लक्ष्य की प्राप्ति में किस प्रकार सहायक है ? गुरु परम्परा का वास्तविक स्वरूप क्या है ? गुरु और ब्रह्म में बड़ा कौन है और क्यों ? गुरु के बिना लक्ष्य प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती ? आदि जिज्ञासाओं का उत्तर संत कृपालु जी महाराज ने अपने साहित्य में विभिन्न रूपों में दिया है। संत कृपालु महाराज द्वारा रचित उनका मूल गद्यात्मक सैद्धान्तिक ग्रंथ 'प्रेम रस सिद्धान्त' में महापुरुष अध्याय के अन्तर्गत विस्तार से उन्होंने महापुरुष तत्व जो कि गुरु पद का अधिष्ठा होता है पर चर्चा की है। उन्होंने वैदिक शास्त्र पुराणों के उदाहरण स्वरूप महापुरुष तत्व को निरुपित किया है। संत कृपालु जी महाराज ने भगवत्प्राप्ति के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु गुरु अर्थात महापुरुष तत्व को परम अनिवार्य बताया है। संसार में तीन व्यक्तित्व हैं। एक पुरुष दूसरा महापुरुष तीसरा परम पुरुष। इसमें प्रथम प्रकार तो संसारी मायिक जीवात्मा है दूसरा माया मुक्त ईश्वर प्राप्त व्यक्तित्व है जिसने अपने परम आनन्द प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है और जिसका अन्तःकरण विशुद्ध होकर ईश्वरीय आनन्द से सरोबार हो चुका है जो ईश्वर तो नहीं किन्तु ईश्वर तुल्य हो चुका है और तीसरा प्रकार है परम पुरुष अर्थात पूर्णतम पुरुषोत्तम व्यक्तित्व अर्थात भगवान। इन्हीं तीनों प्रकारों में महापुरुष ही गुरु रूप का कार्य करता है। महापुरुष अर्थात गुरु वह मध्यस्थ कड़ी है जो पुरुष को परम पुरुष की प्राप्ति करवाती है। संत कृपालु जी महाराज ने जीव के परम लक्ष्य की प्राप्ति में गुरु तत्व को अनिवार्य बताया है। बिना गुरु के ईश्वर प्राप्ति असंभव है क्यों ? क्योंकि जीव मायाधीन है और ईश्वर मायाधीश। उस परम तत्व को समझाने, उस तक पहुँचने का मार्ग बताने और साधना करवाने वाले तत्व के रूप में गुरु की आवश्यकता है। भगवत्प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं, समस्याओं का निराकरण भी गुरु ही करता है। गुरु शब्द का अर्थ ही है जो माया के अज्ञान अंधकार से ईश्वरीय ज्ञान स्वरूप प्रकाश की ओर ले जाए। गुरु की महिमा में संत कृपालु जी महाराज ने अनेक पदों की रचना की है। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के सद्गुरु माधुरी अध्याय का निम्न पद प्रस्तुत है– **अरे मन! सुनु गुरु तत्व विचार।**

'गुं रौतीति गुरुः', व्युत्पत्तिहिं, गुरु मेटत अंधियार।
यद्यपि गुरु गोविन्द, दोउ इक, कह वेदादि पुकार।
दोउन महँ कोउन मिलइ मिलइ तब, प्रेम सुधा रस सार।
यद्यपि रहस्य सुनहु मन! गुरु बिन, मिलइ न नंद कुमार।
पै 'कृपालु' बिनु हरिहिं मिलइ गुरु, जय सद्गुरु सरकार।

प्रेम रस मदिरा : सद्गुरु माधुरी, पद–03

अर्थात् जो अज्ञानान्धकार को मिटा दे वही गुरु है। यद्यपि वेदादि के अनुसार गुरु एवं हरि दोनों एक ही हैं एवं दोनों में कोई भी कृपा कर दे तो प्रेम सुधा रस मिल जाता है। फिर भी एक रहस्य है वह यह कि बिना गुरु के हरि की प्राप्ति असंभव है, कृपालु कहते हैं जबकि बिना हरि के ही गुरु की प्राप्ति एवं प्रेमानन्द की प्राप्ति संभव है। ऐसे सद्गुरु को बार–बार नमस्कार है।

इसी प्रकार एक अन्य पद में उन्होंने ईश्वरीय मार्ग में गुरु के कार्यों को इंगित करते हुए हरि और गुरु में अभेद बताकर भी गुरु को अधिक महत्त्वपूर्ण कहा है–

जाउँ गुरु, चरण कमल बलिहार।
जिन चरनन की शरण गहत मन, पावत युगल विहार।
जिन चरनन को ध्यान धरत मन मिटत जगत अंधियार।
जिन चरनन अनुकंपा जग महँ, रहत न रह संसार।
जिन चरनन रज आँजि चराचर, दीखत नन्द कुमार।
यद्यपि 'कृपालु' भेद नहीं हरि गुरु तदपि गुरुहिं आभार।

प्रेम रस मदिरा : सद्गुरु माधुरी, पद–4

अर्थात जीवात्मा कहती है कि मैं गुरु महाराज के चरण कमलों पर बलिहार जाती हूँ। उनके चरणों की शरण ग्रहण करके मन श्याम श्याम का रास विहार रस पाता है एवं उन चरणों की कृपा से ही अज्ञानाधंकार सदा को समाप्त हो जाता है। उन चरणों की धूलि को श्रद्धापूर्वक आँखों में लगाने से श्यामसुन्दर का दिव्य दर्शन प्राप्त होता है। कृपालु कहते हैं कि गुरु एवं हरि में यद्यपि भेद नहीं तथापि गुरु द्वारा ही हरि की प्राप्ति होने के कारण गुरु के प्रति विशेष आभार है।

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज ने 'राधा गोविन्द गीत' भाग 01 के महापुरुष अध्याय में भी विस्तार से महापुरुष अर्थात गुरु तत्व का निरुपण किया है। गुरु कौन है ? और उसका कार्य क्या है ? इसी संदर्भ को निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है–

गुरु है महात्मा गोविन्द राधे। आत्मा को परमात्मा ते मिला दे। 1771

'गु' का अर्थ माया तम गोविंद राधे। 'रु' का अर्थ नाश करे सब को बता दे। 1772

राधा गोविन्द गीत : 01, महापुरुष, पृ.सं.–13

अर्थात गुरु शब्द का अर्थ ही है जो आत्मा पर छाए मायिक अंधकार को दूर कर परम आनन्द रूपी उजाले की ओर ले जाए गुरु वह महात्मा है जो आत्मा को परमात्मा से मिलाता है। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' रचना में भी इसी तत्व को निम्न रूप से निरुपित किया है।

'गिरत्याज्ञानमिति' गुरु कह बामा। अज्ञान नासे दे दे ज्ञान श्याम श्यामा। 81

'ज्ञानं गृणाति' गुरु सोइ कह बामा। जो तत्व ज्ञान दे दे कौन श्याम श्यामा। ।82

श्यामा श्यामा गीत : पृ.सं.–23

अर्थात 'गुम' शब्द का अर्थ है, जो शिष्य के हृदय के अज्ञान को दूर कर श्यामा–श्याम का ज्ञान प्रदान करे वही गुरु है तथा **'ज्ञानं' इति गृणाति गुरुः'** – गुरु शब्द की इस व्याख्या के अनुसार श्यामा श्याम के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने वाला ही गुरु है।

संत कृपालु जी महाराज ने भगवत्प्राप्ति अर्थात आनन्द प्राप्ति के दिव्य लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एक क्षोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की आवश्यकता पर जोर दिया है। वे गुरु को अर्थात महापुरुष तत्व को आत्मा और परमात्मा के मिलन हेतु बीच की कड़ी मानते हैं। जीवात्मा को या किसी भी व्यक्ति को इस उच्च लक्ष्य के मार्ग में चलने से पूर्व ही एक सच्चे गुरु की शरण लेनी होगी जो उसे इस पथ का सम्पूर्ण तत्व ज्ञान करवाए तथा उक्त पथ में आने वाली बाधाओं का निराकरण करे। किन्तु इसके लिए संत कृपालु महाराज ने जिस शरणागति की बात कही है वह केवल शारीरिक नमन

या शरण नहीं है अपितु मन बुद्धि की सम्पूर्ण शरणागति है। गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान से अपने ज्ञान को जोड़ा जाए। अपनी बुद्धि को गुरु की बुद्धि से जोड़ा जाए तथा हरि गुरु में भेद किए बिना गुरु के वचनों का अनुकरण किया जाए तथा उसकी बताई साधना को प्रैक्टिकल किया जाए तो सहज ही शीघ्रता से उस परम आनन्द तत्व को प्राप्त किया जा सकता है। इसी सम्प्रत्यय को संत कृपालु महाराज ने अपनी विभिन्न रचनाओं में विभिन्न छन्दों एवं शैली में स्पष्ट किया है।

संत कृपालु महाराज द्वारा प्रणीत 'श्यामा श्याम गीत' रचना में गुरु शरणागति पर निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

गुरु की शरण गहो जाय गुरु धामा।हरि नाम गुण गावो बनो निष्कामा। (96)

श्यामा श्यामा गीत

अर्थात गुरु के पास जाकर गुरु की शरणागति ग्रहण करते हुए निष्काम भावना से युक्त होकर निरन्तर हरि गुण गान करना चाहिए।

आदेश पालन हो सदा गुरु धामा। आदेश पालन ते मिले श्याम श्यामा।(98)

श्यामा श्यामा गीत : पृ.सं.–28

अर्थात साधक को बड़ी सावधानी से सद्‌गुरु के आदेश का सदा पालन करना चाहिए। गुरु आदेश पालन से ही श्यामा श्याम की प्राप्ति होगी।

गुरु की बुद्धि ते बुद्धि जोड़े रहो बामा। उसी बुद्धि ते चलाओ मन आठु यामा।(99)

श्यामा श्यामा गीत

अर्थात साधक को अपनी बुद्धि गुरु की बुद्धि से जोड़ देनी चाहिए। पुनः गुरु से तादात्म्य प्राप्त अपनी उसी बुद्धि द्वारा मन को नियंत्रित करना चाहिए।

हरि गुरु एक मानो रहो गुरु धामा। अनुकूल चिन्तन करो आठु यामा। (101)

श्यामा श्यामा गीत

अर्थात हरि गुरु को एक मानते हुए गुरु धाम में निवास करो। सदैव गुरु के अनुकूल ही चिन्तन करो।

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' रचना में भी गुरु की शरणागति विषय पर अत्यन्त सुन्दर सार गर्भित पंक्तियाँ प्रस्तुत है। जिनमें संत कृपालु महाराज ने ईश्वरीय ज्ञान हेतु गुरु की शरणागति को परम आवश्यक बताया है।

ईश्वरीय ज्ञान तो है गोविन्द राधे।मन बुद्धि को गुरु शरण करा दे। (1774)
हरि गुरु दोनों एक गोविन्द राधे। पिता माता-पति जैसे एक बता दे। (1832)
हरि गुरु दोनों मेरे गोविन्द राधे। प्रमुख है गुरु पता हरि का बता दे। (1837)
गुरु की शरण गहो गोविन्द राधे। गुरु की मुट्ठी में हरि हैं बता दे। (1865)

राधा गोविन्द गीत : 01, महापुरुष

अर्थात हरि और गुरु दोनों समान तत्व हैं क्योंकि हरि को प्राप्त करने वाला भी हरि ही बन जाता है किन्तु लक्ष्य प्राप्ति एवं साधना की दृष्टि से एवं साधक के लाभ की दृष्टि से गुरु का स्थान हरि से भी उच्च है क्योंकि गुरु ही परम तत्व की साधना करवा कर मन, अन्तःकरण शुद्ध करवाता है तथा दिव्य प्रेम/आनन्द की प्राप्ति करवाता है।

गुरु का स्थान हरि से भी उच्च क्यों है ? इसका उत्तर भी संत कृपालु महाराज ने 'राधा गोविन्द गीत' में दिया है। श्रीमद्भागवत में स्वयं भगवान कृष्ण ने उद्धव को गुरु की श्रेष्ठता पर उपदेश दिया है।

हरि कह ऊधो मेरी गोविन्द राधे। पूजा ते श्रेष्ठ गुरुपूजा बता दे। (1868)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

अर्थात स्वयं भगवान की पूजा से भी श्रेष्ठ है गुरु पूजा। क्यों ? इसके उत्तर में संत कृपालु जी महाराज ने लिखा है-

गुरु पाछे हरि चले गोविन्द राधे। गुरु पद रज उड़ि पावन बना दे। (1869)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

अर्थात भगवान स्वयं अपने भक्त अर्थात गुरु के पीछे चलते रहते हैं क्योंकि वे गुरु चरणों से उड़ने वाली पदरज से स्वयं को शुद्ध एवं पवित्र बनाना चाहते हैं। वेदों शास्त्रों में यह घोषित है कि हरि से अर्थात भगवान से बड़ा कोई तत्व नहीं होता।

लेकिन वास्तव में हरि, भक्त अर्थात गुरु को स्वयं अपने से अधिक सम्मान देते हैं तथा गुरु भक्ति से वे बहुत प्रसन्न होते हैं।

न तो हरि सम कोउ गोविन्द राधे। न तो है अधिक कोउ वेद बता दे। (1870)
किन्तु हरि भक्त गोविन्द राधे। हरि को भी भक्तों ते छोटा बना दे। (1871)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

इतिहास में भी देखें तो विभिन्न प्रसंगों से यही सिद्ध होता है कि जब–जब भगवान और भक्त में होड़ हुई है तो भगवान जानबूझ कर गुरु के सम्मान हेतु स्वयं हार मान लेते हैं।

भक्त भगवान में तो गोविन्द राधे। जब जब होती है होड़ बता दे। (1872)
तब तब भगवान गोविन्द राधे। भक्त सुख हित हार माने बता दे। (1873)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

साथ ही यदि कोई ईश्वर के प्रति अपराध करता है तो गुरु के पास तो शक्ति और अधिकार है कि वह भक्त को क्षमा करवा दे। किन्तु यदि कोई गुरु के प्रति नामा पराध कर दे तो उसे भगवान भी क्षमा नहीं कर सकते, उसे तो वह गुरु ही क्षमा कर सकता है।

हरि रूठ जाए तो गोविन्द राधे। हरि भक्त ही है ऐसा क्षमा करवा दे। (1874)
हरि भक्त रूठे तो गोविन्द राधे। कोई शक्ति ऐसी नहिं क्षमा करवा दे। (1875)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

संत कृपालु जी महाराज ने गुरु के प्रति नामापराध को नरकगामी बताया है। गुरु के प्रति किया गया अपराध नरक की ओर प्रेषित करता है।

नाम अपराध जनि करो गुरु धामा। अन्यथा नरक में भी मिले नांहि ठामा। (97)

श्यामा श्यामा गीत

अर्थात गुरु धाम में जाकर नामापराध से सावधान रहना चाहिए अन्यथा नरक में भी स्थान नहीं प्राप्त होगा। ईश्वर को प्राप्त करने का सबसे सरल और एक

मात्र उपाय है गुरु की आज्ञा पालन और उनकी बुद्धि से अपनी बुद्धि को जोड़ना तथा सदा गुरु के प्रति अनुकूल भाव बनाए रखना। ऐसा करके जीव तुरन्त अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

आदेश पालन हो सदा गुरु धामा। आदेश पालन ते मिलें श्याम श्यामा। (98)

श्यामा श्यामा गीत

अर्थात साधक को बड़ी सावधानी से सद्गुरु के आदेश का सदा पालन करना चाहिए। गुरु आदेश पालन से ही श्यामा श्याम की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार अन्य पंक्ति में उन्होंने लिखा–

गुरु की बुद्धि ते बुद्धि जोड़े रहो बामा। उसी बुद्धि ते चलाओ मन आठु यामा। (99)

श्यामा श्यामा गीत

अर्थात साधक को अपनी बुद्धि गुरु की बुद्धि से जोड़ देनी चाहिए। पुनः गुरु से तादात्म्य प्राप्त कर अपनी उसी बुद्धि द्वारा मन को नियंत्रित करना चाहिए। हरि और गुरु को सदा एक मानकर और सदा अनुकूल भाव रखकर साधना करते रहना चाहिए। वास्तव में साधक द्वारा जो भक्ति की जाती है उससे तो मात्र चित्त की शुद्धि होती है। विशुद्ध भक्ति तो गुरु की कृपा से ही प्राप्त होती है और वो भी क्षोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु। जैसा कि 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में उन्होंने स्पष्ट किया है–

प्रथम साधना भक्ति करु, तब मन निर्मल होय।
मिलइ विशुद्धा भक्ति तव, गुरु अनुकम्पा तोय।(09) *भक्ति शतक*

जैसे ही सच्चे सद्गुरु की प्राप्ति होती है तो जग से वैराग्य होने लगता है और सच्चे सद्गुरु के सतत् सत्संग से जीवात्मा हरि के सन्मुख होने लगती है। जैसा कि 'भक्ति शतक' ग्रंथ के निम्न दोहे में उन्होंने उक्त वक्तव्य को निरुपित किया है–

जग सों विमुख होय जब, साँचो सद्गुरु पाय।
करत सतत सतसंग तब, हरि सनमुख ह्वै जाय। (13) *भक्ति शतक*

जीव के परम चरम लक्ष्य की प्राप्ति बिना गुरु के असंभव है। संत कृपालु महाराज ने लक्ष्य प्राप्ति में गुरु के महत्व का कारण भी बताया है कि गुरु क्यों

आवश्यक है ? जीवात्मा की लक्ष्य यात्रा में गुरु किस प्रकार सहायक है ? जैसा कि 'युगल माधुरी' ग्रंथ के प्रथम छन्द में उन्होंने बड़े सुन्दर शब्दों में निरुपित किया है–

गुरुदेव शरण में आई, अब तो लो मोहिँ अपनाई।
कछु भेंट संग नहिँ लाई, खाली झोली लै आई।
माया ने हरि बिसराई, गुरुवर ने याद दिलाई।
माया ने मार लगाई, गुरुवर ने कण्ठ लगाई।
माया ने प्यास बढ़ाई, गुरुवर ने प्यास बुझाई।
भवसागर थाह न पाई, गुरु ने भव सिंधु सुखाई।
शरणागति राह दिखाई, गुरुवर पर बलि बलि जाई।
जग जनमि जनमि दुख पाई, अब गुरु की लइ शरणाई।
तू जा 'कृपालु' शरणाई, हरि परखत भुज फैलाई।

युगल माधुरी : पद–01

अर्थात भक्त गुरु से अनुनय विनय करता है कि हे गुरुदेव! आपकी शरण में आ गया हूँ, अब तो आप मुझे अपनाइए, मैं सर्वथा रिक्त होकर आपकी शरण में आया हूँ, कृपया आप ही मेरी इस रिक्तता को पूर्ण कीजिए। भक्त गुरु की महिमा का गान करते हुए कहता है कि इस माया ने ऐसा जाल बिछाया कि जीवात्मा ने हरि को भुला दिया। किन्तु गुरु ने जीवात्मा को हरि की स्मृति की ओर उन्मुख किया। माया ने अपने भौतिक एवं कृत्रिम आकर्षण से जीव को दुखी कर रखा है किन्तु गुरु ने माया की मार से त्रस्त दुखी जीव को प्यार से हृदय से लगाया है। जीव इस भव सागर के दुःखों से दुःखी था किन्तु गुरु ने अपने कृपा प्रताप से भव सागर को ही सुखा दिया। भक्त कहता है कि गुरु ही वह तत्व है जिसने भव दुःखों से निवृत्त होने का मार्ग बताया, हरि शरणागति का ज्ञान दिया है। जीवात्मा अनन्त जन्मों से दुःख पा रही है अब गुरु की शरण में जाकर ही इस जीवात्मा को अपना परम चरम आनन्द प्राप्त होगा।

संत कृपालु महाराज सच्चे क्षोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरु में और भगवान में भेद नहीं मानते। जैसा कि 'युगल माधुरी' ग्रंथ के निम्न छन्द में उन्होंने व्यक्त किया है–

हरि गुरु है समान, वेद वाणी है प्रमान।
'यस्य देवे परा भक्तिः' यह मंत्र धरु ध्यान।
हरि में ही रह गुरु, गुरु में ही हरि जान।
हरि का ही दास गुरु, गुरु दास हरि जान।
हरि कृपा मिले गुरु, गुरु कृपा हरि जान।
हरि प्राण गुरु जान, गुरु प्राण हरि मान।
हरि तो है परोक्ष, प्रत्यक्ष गुरु जान।
जीव को तो दे प्रथम, गुरु ही तत्व ज्ञान।
गुरु साधना करावे, करे दिव्य प्रेमदान।

युगल माधुरी : पद–04

अर्थात वेदों में यह निरुपित है कि हरि व गुरु में किसी प्रकार का भेद नहीं है क्योंकि भगवत् प्राप्ति के बाद जीवात्मा भी परम शुद्ध हरि के गुणों से सम्पन्न हो जाती है। फिर गुरु हरि के दास होते हैं तो कभी गुरु हरि का दास बनता है। हरि को प्राप्त करने के बाद गुरु भी परम तत्व स्वरूप बन जाता है जैसा कि एक अन्य छन्द में संत कृपालु महाराज ने लिखा है–

जयति गुरुवर जयति गुरुवर, जयति गुरुवर प्यारे।
तू ही ब्रह्मा तू ही विष्णु, तू ही शंकर प्यारे।
तेरे पाछे चलत नटवर, चहत पदरज प्यारे।
जयति गुरुवर जयति गुरुवर, जयति गुरुवर प्यारे।

युगल माधुरी : पद–02

अर्थात ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों रूपों में गुरु ही विराजते हैं यहाँ तक कि स्वयं कृष्ण भगवान भी गुरु के पीछे–पीछे चलते हैं ताकि उसकी पदरज से पवित्र हो जाएँ। संत कृपालु महाराज ने इस पद में कारण को भी स्पष्ट किया है कि गुरु ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समान क्यों है ?

जयति गुरुवर जयति गुरुवर, जयति गुरुवर प्यारे।
गुरु न कर कछु कर्म गुरु को, कर्म कर हरि प्यारे।
गुरु को हरि का रूप मानहु, मानु नर नहिं प्यारे।
गुरु को तनु जनि देख मन तू, देखु मन गुरु प्यारे।

सत्य श्रद्धा सत्य सद्गुरु, सत्य फल मिल प्यारे।

युगल माधुरी : पद–02

अर्थात गुरु जो भी कर्म करता है, वास्तव में वह कर्म करता हुआ तो दिखाई देता है किन्तु उसके कर्म स्वयं भगवान ही करते हैं। वास्तव में गुरु का रूप नर नहीं अपितु स्वयं हरि रूप है। आगे इसी छन्द में संत कृपालु महाराज ने हरि एवं गुरु को समान बताते हुए दोनों में अन्तर भी बताया है–

रूठे हरि तो गुरु क्षमा कर, शास्त्र कह अस प्यारे।
रूठे गुरु तो हरि क्षमा नहिं, करि सकत टुक प्यारे।
पतित प्रिय गुरु, भक्त प्रिय हरि, भेद है बड़ प्यारे।

युगल माधुरी : पद–02

अर्थात हरि गुरु में यह भेद है कि शास्त्रों में लिखा है– यदि हरि रूठ जाए तो गुरु क्षमा कर सकते हैं किन्तु यदि गुरु के प्रति अपराध हो जाए तो हरि क्षमा नहीं कर सकते तथा गुरु तो पतित जीवात्माओं को अपनाकर उन्हें शुद्ध करने का काम करता है किन्तु हरि तो शुद्ध जीवात्माओं से ही प्रेम करते हैं। इस प्रकार दोनों समान होते हुए भी दोनों में भेद है।

हरि और गुरु में वास्तविक भेद किसी प्रकार का नहीं है। जो गुण भगवान में होते हैं वही गुण गुरु को भी भगवत्प्राप्ति पर मिल जाते हैं। केवल एक शक्ति है जो हरि अपने पास रखते हैं वो है सृष्टि निर्माण की शक्ति। उसी से केवल हरि गुरु में कुछ भेद हो सकता है, अन्य गुणों में नहीं। जैसा कि 'भक्ति शतक' के निम्न दोहे में उन्होंने उक्त तथ्य को स्पष्ट किया है–

यद्यपि हरि गुरु एक हैं, एक ज्ञान आनन्द।
तदपि सृष्टि कर केवल, ब्रह्म सच्चिदानन्द। (85) *भक्ति शतक*

इसी बात को 'युगल माधुरी' में भी हरि गुरु की शक्तियों में भेद को निरुपित किया है– **जयति गुरुवर जयति गुरुवर, जयति गुरुवर प्यारे।**
वेद कह हरि आठ गुण तेहि, दे गुरुहिं हरि प्यारे।
सृष्टि आदिक कर्म हरि कर, गुरुहिं ना दे प्यारे।

युगल माधुरी : पद–02

इस प्रकार जीव अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जिस भी साधना पथ का अनुसरण करेगा, उसमें उसे गुरु की शरण तो लेनी ही होगी। साधना मार्ग में गुरु की आवश्यकता को उन्होंने निम्न छन्द में अभिव्यक्त किया है–

साधना करु साधना करु साधना करु प्यारे।
साधना ते ही मिले तोहिं, साध्य हरि रति प्यारे।
प्रथम श्रद्धा युक्त हो जा, शरण गुरु पद प्यारे।
गुरु की बुधि में जोड़ निज बुधि, है शरण यह प्यारे।
सेव्य सों सम्बन्ध अपनो, जानु गुरु सों प्यारे।
हरि में गुरु में भेद जनि, लवलेश मानहु प्यारे।

युगल माधुरी : पद–062

अर्थात संत कृपालु महाराज वास्तविक साधना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि साधना से ही साध्य मिलता है और उस साध्य को पाने के लिए सबसे पहले श्रद्धा युक्त होकर गुरु की शरण में जाना होगा तथा अपनी बुद्धि को गुरु की बुद्धि से जोड़ना होगा जीव एवं ब्रह्म के संबंध को गुरु से ही जानना होगा तथा हरि गुरु को समान मानते हुए भक्ति साधना करनी होगी। ऐसी साधना से ही साध्य की प्राप्ति होगी।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' में भी उन्होंने गुरु महिमा को निम्न रूप में शब्दबद्ध किया है–

गुरु चरण कमल बलिहार, गुरु पर तन मन धन वार।
गुरु चरण धूरि सिर धार, गुरु महिमा अपरंपार।
सद्‌गुरु भज नंदकुमार, हरि भज सद्‌गुरु सरकार।
दोउ कह दोउ प्राण हमार, गुरु महिमा अपरंपार।
गुरु रह उर नन्द कुमार, गुरु उर रह हरि रिझवार।
दोउ करुणा को भण्डार, गुरु महिमा अपरंपार।
जो समझा दे श्रुति सार, उर भरा प्रेम रिझवार।
सोइ है सद्‌गुरु सरकार, गुरु सोइ 'कृपालु' सरकार।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद–01

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि मैं गुरु चरण कमलों पर बलिहार जाता हूँ। उन पर मैं अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण करता हूँ क्योंकि गुरु की महिमा अपरम्पार है। गुरु और भगवान में कोई भेद नहीं है। गुरु तो स्वयं भगवान के ही ह्रदय में रहता है। गुरु ईश्वर के समान ही करुणा का भण्डार है तथा वही है जो चारों वेदों के सार तत्व को समझाता है, ह्रदय से प्रेम करता है, ऐसे कृपा के भण्डार गुरु के प्रति मैं बलिहार जाता हूँ।

निम्न पद में संत कृपालु महाराज लिखते हैं कि जो केवल गुरु की भक्ति करते हैं, भगवान उनसे अधिक प्रसन्न होते हैं। भगवान को स्वयं की भक्ति की अपेक्षा अपने भक्त की भक्ति अधिक पसन्द है क्योंकि जीवात्मा के समस्त दोषों का निवारण एवं पग–पग पर सहयोग तो केवल गुरु ही करता है। भगवान तो केवल बने–बने के ही साथी है–

बलिहारी है तिहारी गुरु बलिहारी।
तो पै तन मन धन प्रानन वारी।
तू तो है इक रूप ब्रह्म बनवारी।
तेरी भक्ति से प्रसन्न होवें बनवारी।

x x x x

तेरे सर्व कर्म करे आपु बनवारी।
तेरे दिए पत्र पुष्प खायँ बनवारी।
तेरी भक्ति आगे शक्ति भूलें बनवारी
तेरी कृपा ते 'कृपालु' पावें बनवारी।

ब्रज रस माधुरी : पद संख्या 3

अर्थात संत कृपालु महाराज गुरु तत्व की महिमा को ईश तत्व से भी अधिक अपरम्पार मानते हैं। स्वयं भगवान गुरु के समक्ष अपने आपको निम्न मानते हैं। ब्रह्म स्वयं अपनी समस्त शक्तियाँ गुरु के चरणों में समर्पित कर देता है। भगवान स्वयं गुरु के पीछे–पीछे डोलते हैं ताकि गुरु की पवित्र पदरज से वे पवित्र हो जाएँ। भगवान स्वयं गुरु के तन, मन में विराजित होते हैं। गुरु द्वारा किए गए समस्त कृत्य केवल

भगवान के ही होते हैं क्योंकि गुरु तो निरन्तर भगवान से जुड़ा हुआ होता है। भगवान स्वयं शिष्य बनकर गुरु की शरणागति करते हैं। गुरु की कृपा एवं शरणागति के बिना हरि को पाना असंभव है। क्योंकि गुरु तो प्रत्यक्ष है और भगवान परोक्ष। जीव को सदा गुरु का ही सान्निध्य मिलेगा उसकी ही सेवा मिलेगी। भगवान तो उसे शुद्ध होने के बाद मिलेंगे। अतः जीव की समस्त बिगड़ी बनाने वाले तो गुरु ही हैं और भगवान स्वयं वेदों पुराणों में गुरु को स्वयं का दूसरा रूप घोषित करते हैं। गुरु की सेवा, उपासना, शरणागति वास्तव में प्रभु की ही उपासना है।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज भगवत्प्राप्ति के लक्ष्य हेतु गुरु तत्व को अनिवार्य मानते हैं। गुरु के महत्व को उन्होंने कई बार अपने प्रवचन साहित्य में भी उल्लेखित कियाहै – जैसे 'सुनहु साधक प्यारे',पद की व्याख्या प्रवचन में उन्होंने गुरु के महत्व को निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है–

'गुरु बिनु होई कि ज्ञान।' (रामायण)

"बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता। शास्त्र वेद पढ़कर के तो तुम और शंका से युक्त हो जाओगे। ठीक। तो अब एक गुरु चाहिए हमको। नं. 01 भगवान की भूख पैदा हो, तो उसके लिए सबसे पहले गुरु चाहिए। हमको ईंग्लिश पढ़ना है, हिन्दी पढ़ना है, कोई भाषा पढ़ना है तो एक टीचर चाहिए। अपने आप हम कैसे पढ़ लेंगे। हम बीमार हैं हमको एक डॉक्टर चाहिए जो हमारे रोग को समझे और दवा बतावे। हाँ करना हम ही को है दवा ये ठीक है लेकिन मालूम तो हो क्या दवा है। कैसे करेंगे उसको ? तो इसके लिए सर्वप्रथम गुरु चाहिए। लेकिन गुरु मिल भी जाए तो हमारा काम नहीं बनेगा। क्यों ? गुरु मिले और हम गुरु से मिलें तब काम बनेगा। (ध्यान दो) आपके आँख हैं ? हाँ। इससे दिखाई पड़ता है ? हाँ, हाँ। अच्छा लाइट ऑफ कर दो। दिखाई पड़ रहा है कुछ ? नहीं। आप तो कह रहे थे सब दिखाई पड़ता है। जी लाइट हो तब दिखाई पड़ता है। जिस चीज को देखना है वह चीज लाइट में हो तब आँख काम करेगी। नहीं तो जैसे अंधा वैसे ही आँख वाला। ऐसे ही गुरु भी ठीक हो और हम उसको सरैण्डर करें, शरणागत हों, हमारी शरणागति भी ठीक हो। ये दोनों बातें ठीक हों तो समझो आधी भगवत्प्राप्ति हो गई। अब तुम पहुँच जाओगे देर सवेर, गिरते

पड़ते कैसे भी। अगर इन दोनों में एक भी गड़बड़ हो, बड़ी भावना, बड़ी भूख है और उसने कह दिया कि तुम चारों धाम कर आओ बैकुण्ठ मिल जाएगा। हम चारों धाम दौड़ते रहे और हालत फटीचर रही उसी प्रकार की। यानी उसने मार्ग गलत बता दिया अथवा हमारी भूख नहीं है और जगद्‌गुरु का बाप आके बता रहा है हमको सही मार्ग। हाँ बहुत विद्वान हैं, बहुत काबिल हैं। मैं मानता हूँ। बात भी बहुत ठीक कही उन्होंने। लेकिन ऐसा है कि हम तो गृहस्थी हैं। बस एक लेकिन लगा दिया और अपनी जगह खड़े रहे। ये ही किया हमने। सन्त अनन्त बार तमाम जन्मों में मिले होंगे और हमने समझा भी होगा लेकिन प्रैक्टिकल नहीं किया। क्योंकि भूख नहीं थी उस भूख का नाम है श्रद्धा– x x x x अगर ये बनाव किसी का बन जाये (ध्यान दो) अन्दर से भूख हो, श्रद्धा हो और वास्तविक महापुरुष मिल जाए, फिर उससे हम समझ ले कि क्या करना है, फिर हम करके भगवत्प्राप्ति कर लेंगे।"

प्रवचन : सुनहु साधक प्यारे, पृ.सं.–44–41

गुरु तत्व महिमा प्रसंग में एक यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संत कृपालु महाराज ने वर्तमान में विभिन्न धर्मगुरुओं द्वारा कान में मंत्र फूँक कर गुरु एवं शिष्य बनाए जाने की परम्परा का विरोध एवं खण्डन किया है। उन्होंने इस सम्प्रत्यय को स्पष्ट किया कि पूर्व समय में गुरु द्वारा मंत्र देने की प्रथा का आधार शिष्य की पात्रता था। जब साधना करते–करते जीव के अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती थी तो तब गुरु उस जीव को मंत्र दान करके अपना शिष्य बनाता था। किन्तु अब उस परम्परा का गलत तरीके से प्रयोग हो रहा है। विभिन्न धर्म गुरु व्यावसायिक एवं प्रतिष्ठा के दृष्टिकोण से योग्यता, अयोग्यता को नजर अंदाज करते हुए विपुल मात्रा में लोगों के कान फूँकते हैं, यहाँ तक की एक–एक वर्ष के बच्चों के कान भी फूँके जा रहे हैं तथा अधिक संख्या में होने पर हॉल में बैठा कर लाउड स्पीकर से सामूहिक रूप से मंत्र को देने का नाटक किया जा रहा है, संत कृपालु महाराज ने इस कुप्रथा का खुलकर विरोध किया तथा अपने साहित्य में इस आडम्बर पर पुरजोर से प्रहार किया।

गुरु करे उसे जिसे मिले श्याम श्यामा।
कान फुँकवाने ते ना बने कभु कामा।। (83) *श्यामा श्याम गीत*

अर्थात गुरु उसे ही बनाएँ जिसे श्यामाश्याम के दर्शन हो चुके हों, बाह्य आडम्बर युक्त छापा तिलकधारी कपटी साधु को कभी गुरु न बनाएँ जो केवल कान फूँककर तुम्हें चेला बनाए।

इसी सम्प्रत्यय को, 'राधा गोविंद गीत' में उन्होंने और अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि किसी भी धर्म गुरु द्वारा दिए गए मंत्र को किसी को भी न बताने की परम्परा है, इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि मंत्र किसी को बता दिया जाए तो उसकी पावर कम हो जाती है, इस तर्क को संत कृपालु महाराज ने बेतर्क साबित करते हुए लिखा है कि जो शक्ति हरि नाम में है चाहे भगवान का कोई भी नाम लिया जाए सबमें समान शक्ति का निवास है क्योंकि नाम में सदा ही नामी का वास होता है। विशेष रूप से मंत्र देकर लोगों को भ्रमित करना महा पाप है, जैसा कि 'राधा गोविंद गीत' में उन्होंने स्पष्ट किया है–

नाम में है सर्वशक्ति गोविंद राधे। मंत्र दान दीक्षा की अपेक्षा ना बता दे। (2120)
मंत्रदान लै के करे गोविंद राधे। घोर पाप वाय नामापराध बता दे।(2121)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार मंत्र देकर कान फुंकवाने की आडम्बर युक्त भ्रमित प्रथा का उन्होंने खुलकर विरोध किया तथा स्वयं जगद्‌गुरु होकर भी उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी का कान नहीं फूँका और न किसी को अपना शिष्य बनाया। गुरु मंत्र के भ्रामक तथ्य को उन्होंने अपने गुरु पूर्णिमा जुलाई–2011 पर दिए गए प्रवचन में भी स्पष्ट किया–

"गुरु लोग चेला बनाते हैं कान फूँक–फूँक के, इन्होंने और बरबाद कर दिया संसार को। बड़े–बड़े काबिल लोग आँख बंद करके गुरु जी के पास गये, उन्होंने कान में मंत्र दे दिया। क्या है मंत्र ये ? अरे ये ही, 'रामाय नमः', 'कृष्णाय नमः', 'नमो भगवते वासु देवाय'। क्या मतलब ? हे भगवान आपको नमस्कार है, हे भगवान हम आपकी शरण में हैं। ये दो अर्थ हैं सारे मंत्रों के जितने सम्प्रदाय हैं दुनिया में– ये दो मतलब है उसका, 'हे भगवान हम आपकी शरण में हैं, 'हे भगवान आपको नमस्कार है' क्यों जी भाषावाद भगवान के यहाँ भी है क्या ? अगर हम हिन्दी में कहें यही बात,

संस्कृत में कहें, गुजराती, मराठी, बंगाली में कहें तो कोई अन्तर है क्या ? अरे! कोई खास बात है तुम्हारे मंत्र में ? हाँ हमारा मंत्र सिद्ध मंत्र है। ये गुरु परम्परा से आया है। अच्छा! तो इसमें पावर होगी ? हाँ, इसमें पावर होती है। अच्छा, क्योंकि एक मामूली से तार को जिसमें इलेक्ट्रीसिटी आ रही है, हम छूते हैं तो आSSS......ऐसा करते हैं। यानी इतनी बड़ी फीलिंग होती है और आपके मंत्र में स्प्रिचुअल पॉवर है, आप कहते हैं, गुरु परम्परा से यह मंत्र चला आ रहा है। तो जब आपके कान में दिया तो हमको तो उस समय कुछ फीलिंग नहीं हुई, न बाद में हुई और संसार में आसक्त हो गये। दो वर्ष के बच्चे के, चार वर्ष के बच्चे के कान फूँक देते हैं। तब तो वह बेचारा काफी शुद्ध था, संसारी अटैचमेन्ट से। और बड़ा हुआ, और बड़ा हुआ घोर संसारी, काम, क्रोध, लोभ, मोह का अंबार आ गया, उसके अंदर। ये क्या हो रहा है जी, आपका मंत्र कहाँ गया। अजी हमको फुर्सत नहीं थी पूछने की गुरु जी से , कि आप क्या देना चाहते हैं कान में, पहले बताइये। उसका असर क्या होगा ? बताइये।"

साधन साध्य : अंक-2, जुलाई-2011, पृ.सं.-09

इसी प्रकार गलत दम्भी गुरु तो स्वयं का भी विनाश करता है साथ ही अपने शिष्य को भी पतन के गर्त धकेलता है। जो गुरु वास्तव में ईश्वर प्राप्त न हो केवल रटे रटाए शब्द ज्ञान से स्वयं को गुरु बनाकर लोगों को मूर्ख बनाए, ऐसा गुरु सर्वथा नरकगामी तथा निन्दनीय है। इस सम्प्रत्यय को संत कृपालु महाराज ने 'राधा गोविंद गीत' में विस्तार से निरुपित किया है-

केवल शब्द ज्ञानी गोविंद राधे। कोरा उपदेश ही दे दिव्य प्रेम ना दे। (1779)
जैसे दीप की लौ गोविंद राधे। दे प्रकाश नीचे हो अंधेरा बता दे। (1780)
ऐसे शब्द ज्ञानी भी गोविंद राधे। ज्ञान दे आपु रहे कोरा बता दे। (1781)

राधा गोविन्द गीत

आगे उन्होंने गलत गुरु बनाने के परिणाम को भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि गलत गुरु स्वयं के साथ-साथ शिष्य का भी बंटाधार करता है-

प्रेम प्राप्त गुरु करो गोविंद राधे। दम्भी गुरु तो तेरा पतन करा दे। (2125)
अंधा कहे अंधे ते गोविंद राधे। आजा अंधे हौं तोहिं घर पहुँचा दे। (2126)

गुरु तो हो अंधा अरु गोविंद राधे। शिष्य हो बधिर दोनों गर्त में गिरा दे। (2127)

गुरु यदि दम्भी हो तो गोविंद राधे। गुरु शिष्य साथ जायें नरक बता दे। (2129)

राधा गोविन्द गीत

इस प्रकार संत कृपालु महाराज गलत दम्भी गुरु को बहुत खतरनाक बताते हैं साथ में दम्भी गुरु के लक्षण भी उन्होंने बताए हैं–

कंठी तिलक धारे गोविंद राधे। हरि उर धारे नहिं दम्भी बता दे। (2130)

तन पूजा पाठ करे गोविंद राधे। मन जग भक्ति करे दम्भी बता दे। (2131)

x x x x x x x

बिना भाव नाचे कूदे गोविंद राधे। लोकरंजन करे दंभी बता दे। (2136)

दोष छुपावे निज गोविंद राधे। झूठा निज गुण गावे दंभी बता दे। (2137)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

दम्भी गुरु के स्वरूप को उन्होंने 'प्रेम रस मदिरा' के निम्न पद में भी स्पष्ट किया है–

तजो रे मन! उन संतन को संग।

जिनको लक्ष्य लोकरंजन को, रंगि रंग रंग बिरंग।
बात बघारत ब्रज रसिकन की, पिये विषय रस भंग।
शिष्यन कान फूँकि बनि स्वामी, ठगत ठगिन के ढंग।
हरिजन बनि हरिजनहुँ न मानत, चढ़ि अभिमान तुरंग।
वरु 'कृपालु' वनचर बनि रहियो, लखु जनि दंभिन अंग।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद सं.–05

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे मन! उन पाखंडी संतों का संग छोड़ दे, जिनका लक्ष्य रंग–बिरंगे रंगों से कपड़ें रंग कर संसार को खुश करना मात्र है तथा जो ब्रज रसिकों की बातें करते हैं किन्तु स्वयं सांसारिक विषयों में लीन हैं। स्वार्थ पूर्ति के लिए लोगों के कान फूँक–फूँककर लोगों को मूर्ख बनाते हैं तथा भाँति–भाँति प्रकार से भोले जीवों को ठगते हैं तथा सच्चे संतों की निन्दा करते हैं। संत कृपालु महाराज ऐसे ढोंगी गुरु संतों से दूर रहने की हिदायत देते हैं क्योंकि वे बहुत खतरनाक हैं।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने गलत गुरु बनाने एवं कान में मंत्र फुंकवाने की प्रथा का जमकर विरोध किया। अब प्रश्न यह उठता है कि कैसे पहचाना जाए कि

वास्तविक महापुरुष कौन है ? तथा किसे गुरु बनाया जाए ? वास्तविक गुरु की पहचान क्या है ? इस तथ्य का निरुपण भी संत कृपालु महाराज ने बखूबी किया है। सच्चे संत एवं गुरु की पहचान के लक्षण इस प्रकार बताए हैं–

गुरु वेदवित हो गोविंद राधे। दिव्य प्रेम युक्त भी हो हरि ते मिला दे। (1783)
पर उपकार ही है गोविंद राधे। संतों का सहज स्वभाव बता दे। (1781)
भोज पत्र सम सन्त गोविंद राधे। पर हित निज सर्वस्त लुटा दे। (1792)

राधा गोविन्द गीत

अर्थात सच्चा गुरु क्षोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ होने के साथ–साथ दिव्य प्रेम युक्त भी होता है तथा सदा परोपकार के भाव से युक्त होता है। सच्चा गुरु सांसारिक वस्तु कभी नहीं देता, सच्चा गुरु कभी मिथ्या आशीर्वाद नहीं देता एवं शाप भी नहीं देता, उसके दर्शन सत्संग आदि से स्वाभाविक रूप से मन हरि में लगने लगता है। सच्चे संत में सहज ईश्वरीय प्रेम दृष्टिगोचर होगा तथा उसमें हमें अष्ट सात्विक भावों का भी दर्शन होगा। सच्चा गुरु कभी चमत्कार, सिद्धि आदि का प्रदर्शन नहीं करता।

5.1.6 निष्कर्ष

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य का एक विशेष प्रयोजन गुरु के वास्तविक स्वरूप एवं उसके महत्व का निरुपण करना है। आज के युग में सच्चे गुरु को पहचान कर शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए उन्होंने चेतना जाग्रत की है तथा गुरु को जाँच परख कर, शरणागति लेने की ओर उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से संकेत किया है।

गुरु करे जानि के गोविंद राधे। पानी पिये छानि के ज्ञानी बता दे। (2118)

राधा गोविन्द गीत : महापुरुष

काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार आचार्य दण्डी ने काव्य का जो प्रयोजन बताया है कि काव्य तीनों लोकों में ज्ञान का प्रकाश फैलाता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का प्रस्तुत प्रयोजन ज्ञान प्रकाश से सामाजिक (सहृदय, पाठक) को आलोकित करना तथा अज्ञान तिमिर से निवृत्त करना परिलक्षित होता है।

❖❖❖

षष्ठम् अध्याय

संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

षष्ठम् अध्याय

संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

6.1.0 प्रस्तावना

साहित्य एवं संस्कृति का घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्य संस्कृति का संपोषक तत्त्व माना जाता है। साहित्य एवं संस्कृति की घनिष्ठता का आधार समाज एवं जनमानस है। समाज की संरचना की एक महत्त्वपूर्ण इकाई संस्कृति होती है। संस्कृति से ही समाज अपनी पहचान बनाता है तथा अपने जीवन मूल्यों एवं प्रतिमानों का निर्माण करता है। जैसा कि 'यजुर्वेद' में संस्कृति को सदाचार वाहक बताया गया है–
"संस्क्रियते मानवः अनया इति संस्कृतिः"। *यजुर्वेद :11/5 मन्त्रांश*

इसी प्रकार 'ऐतरेय ब्राह्मण' ग्रंथ में भी संस्कृति को मानव के व्यक्तिगत एवं समष्टिगत उन्नयन के लिए आवश्यक माना है। *ऐतरेय : ब्राह्मण 6–5–9*

इसी प्रकार 'छान्दोग्योपनिषद्' में संस्कृति को समस्त आदर्शों की समष्टि कहकर उसे मानवतावादी स्वीकार किया है।

"कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्न जीवन व्यापारेषु सामाजिक सम्बंधेषु वा मानवीयत्व दृष्टया प्रेरणाप्रदानां तत्तदादर्शानां समष्टिरेव संस्कृति'।"

छोन्छोग्योपनिषद् : 8–4–1

संस्कृति समाज को आकार और दिशा प्रदान करती है। साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने समाज एवं संस्कृति के मध्य रहकर ही साहित्य निर्माण करता है। समाज एवं संस्कृति से दूर साहित्य रचना की कल्पना नहीं की जा सकती। उसका साहित्य समाज एवं संस्कृति को ही प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्बित करता है चाहे वो साहित्य आदिकालीन हो, भक्तिकालीन हो, रीतिकालीन हो या फिर आधुनिक कालीन। साहित्य संस्कृति का संवाहक ही नहीं अपितु उसका संवर्धक एवं संपोषक होता है।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज का साहित्य भी सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण है। उनके साहित्य में भी भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि उनका सम्पूर्ण साहित्य भारतीय सनातन, वैदिक, समन्वयात्मक, कलात्मक संस्कृति को ही अभिव्यक्त करता प्रतीत होता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में सन्निहित सांस्कृतिक चेतना को निम्न रूप से देख सकते हैं।

6.1.1 संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय दार्शनिक संस्कृति

संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय दार्शनिक संस्कृति गहराई से अन्तर्निहित है। भारतीय संस्कृति दार्शनिक है। इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज का समस्त गद्य–पद्य–प्रवचन एवं नाट्य (अभिनय) साहित्य दार्शनिकता से आबद्ध है। उन्होंने भारत की संस्कृति में व्याप्त समस्त दर्शनों जैसे निराकार ब्रह्म दर्शन, साकार ब्रह्म दर्शन, ज्ञान मार्गी दर्शन, कर्म मार्गी दर्शन, भक्ति दर्शन, आत्मा दर्शन, परमात्मा दर्शन, वैदिक दर्शन, अवैदिक दर्शन आदि समस्त पक्षों को अपने साहित्य में झलकित किया है। न केवल भारतीय अपितु विश्व के समस्त ग्यारह दर्शन–बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, शिन्तो दर्शन, वैदिक दर्शन, ईसाई दर्शन, मुस्लिम दर्शन आदि का संदर्भ लेकर उन्होंने अपने साहित्य में दर्शन संस्कृति को समाहित किया है। पूर्व के अध्यायों में हम ज्ञान, कर्म, भक्ति, धर्म आदि समन्वयात्मक दृष्टिकोण से इस दार्शनिक संस्कृति का भली–भाँति अध्ययन कर चुके हैं। अतः पुनरुक्ति न करते हुए उनके साहित्य में निम्न रूप में भारतीय दार्शनिक संस्कृति को देख सकते हैं–

भारतीय हिन्दू वैदिक धर्म दर्शन – भारतीय दार्शनिक संस्कृति से पूरित उनके काव्य में वैदिक दर्शन का एक उदाहरण निम्नानुसार देख सकते हैं। जिसमें ब्रह्म, जीव, माया के तत्व पर प्रकाश डाला गया है।

वेदन तीन तत्व बतलाय।
ब्रह्म जीव माया कहलाय।
तीन हुँ तत्व अनादि बताय।
ब्रह्म शक्ति श्रुति तीन बताय।
परा स्वरूप शक्ति कहलाय।
अपरा जीव शक्ति बतलाय।

जड़ शक्तिहिं माया कहलाय।

जीव शक्ति चेतन बतलाय।

जीव अर्थ द्वै बुध बतलाय।

जीव सदा अक्लेज बताय।

जीव 'कृपालु' शरण बलभाय।

ब्रज रस माधुरी :02, छन्द–15

भारतीय मुस्लिम धर्म दर्शन – संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय मुस्लिम दर्शन की झलकी भी देखने को मिलती है। जहाँ पर बंदा स्वयं को फ़क़ीर मानते हुए अपने खुदा के दर पर (कृपा) करम की याचना करता है।

तेरा नाम सुन के दाता दर पर फ़क़ीर आया।

उस नाम के मुताबिक कर दे करम खुदाया।

सुनते हैं जो भी आया, भर–भर के झोली पाया।

पर यह फ़क़ीर मौला झोली न संग लाया।

गर खाली हाथ लौटा तो कान खोल कर सुन।

हो जाएगा जहाँ से तेरे नाम का सफ़ाया।

ब्रज रस माधुरी : 01, परिशिष्ट–4

उनकी उर्दू रचनाओं में भारतीय मुस्लिम धर्म दर्शन परिलक्षित है।

भारतीय सिक्ख धर्म दर्शन – भारत में प्रचलित सिक्ख सम्प्रदाय की सिक्ख दार्शनिक संस्कृति को हम संत कृपालु महाराज के साहित्य में देख सकते हैं। गुरू व ब्रह्म की एकता एवं गुरू पूजा सिक्ख दर्शन को अभिव्यक्त करती है। गुरू एवं परमात्मा के एकत्व के सिक्ख दर्शन का एक उदाहरण निम्न रूप से देख सकते हैं–

गुरु चरण कमल बलिहार, गुरु पर तन मन धन वार।

गुरु चरण धूरि सिर धार, गुरु महिमा अपरंपार।।

जो समझा दे श्रुति सार, उर भरा प्रेम रिझवार।

सोइ है सद्‌गुरु सरकार, गुरु सोइ 'कृपालु' सरकार।।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद–01

भारतीय आनन्द दर्शन – संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य आनन्दवाद के दर्शन पर ही आधारित है। आनन्द ही सर्वोच्च तत्व है। उसी आनन्द का अंश जीव है और उसी आनन्द की प्राप्ति प्रत्येक जीव का उद्देश्य है। इसी दर्शन को उनकी निम्न रचना में देख सकते हैं–

जीव तो सदा ते ही गोविंद राधे। आनन्द दास था है रहेगा बता दे। (668)

जीव अंश आनन्द गोविंद राधे। याते जीव चाहे आनन्द बता दे। (687)

जीव चाहे आनन्द गोविंद राधे। याते तदर्थ सब कर्म करा दे। (688)

राधा गोविंद गीत

भारतीय आत्मा परमात्मा दर्शन – संत कृपालु महाराज के साहित्य में आत्मा परमात्मा दर्शन का भी निरूपण है। इसका एक उदाहरण निम्न रूप से देख सकते हैं जिसमें आत्मा एवं देह के स्वरूप को स्पष्ट किया है साथ ही आत्मा के स्वामी परमात्मा तत्त्व पर भी प्रकाश डाला है–

'हम' जीवात्मा का गोविंद राधे। एक है हमारा परमात्मा बता दे। (802)

आत्मा की आदि नहिं गोविंद राधे। याते आत्मा तो है नित्य बता दे। (825)

ब्रह्म, जीव, माया, वेद गोविंद राधे। चारों हैं अनादि अनन्त बता दे। (828)

राधा गोविंद गीत

भारतीय मानव दर्शन – संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में मानव देह के महत्त्व को सुन्दर रूप में निरुपित किया है। मानव जीवन अत्यंत दुर्लभ है। देवता भी देह दुर्लभ मानव जीवन के लिए लालायित रहते हैं। क्योंकि इसी देह में कर्म करके लक्ष्य को पाया जा सकता है। मानव देह ईश्वर प्रदत्त अनुपम उपहार है। समस्त चौरासी लाख योनियों में मानव योनि ही कर्म प्रधान है। यह मानव देह ईश्वर की अनन्त अनुकम्पा से प्राप्त होती है। अतः मानव जीवन प्राप्त करते ही बालक, युवा, वृद्ध सभी अवस्थाओं में जीवन को हरि भजन में लगाना चाहिए, अहंकार आदि दुर्गुणों से दूर रहते हुए अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति में अनुरक्त होना चाहिए। इसी मानव दर्शन को उनके निम्न छन्द में देख सकते हैं–

लख चौरासी में गोविंद राधे। नर योनि ही कर्म योनि है बता दे। (840)

बाल युवा वृद्ध सब गोविंद राधे। हरि भजु जाने कब तनु धोखा दे। (887)

x x x x x

मन मानी खाया सोया गोविंद राधे। भूत सब खोया अब भावी बना दे। (929)

अवसर बीत्यो जात गोविंद राधे। इस नर तनु में तो बिगरी बना दे। (937)

राधा गोविंद गीत

भारतीय नारी दर्शन – भारत में नारी को परम शक्ति के रूप में पूजा जाता है। नारी परम ब्रह्म की शक्ति स्वरूपा मानी जाती है। भारत में देवी पूजा, नारी को सर्वोच्च पद पर आसीन करती है। भारत का यही नारी दर्शन हमें संत कृपालु महाराज के साहित्य में परिलक्षित होता है। उनके गद्य–पद्य प्रवचन साहित्य में नारी शक्ति की सर्वोच्चता एवं दिव्यता का निरूपण राधा तत्त्व के निरूपण में है। साथ ही यशोदा, गोपी आदि नारी प्रेम निरूपण में भी संत कृपालु महाराज भारतीय नारी दर्शन की ओर ही संकेत करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यशोदा एवं ब्रज की अन्य गोपियों के प्रेम के आगे परम ब्रह्म कृष्ण भी नतमस्तक हो जाते हैं। राधा को तो उन्होंने अपनी स्वामिनी के रूप में ही माना है। जैसा कि उदाहरण स्वरूप निम्न छन्द देख सकते हैं जिसमें राधा तत्त्व के निरूपण में नारी दर्शन झलक रहा है कि नारी की शक्ति के समक्ष परम ब्रह्म भी नतमस्तक है–

सुर नर मुनि की कौन कहे श्यामा। विधि हरि हर भी पखारे तव पामा। (185)

सबसे बड़े हैं ब्रह्म श्याम पूर्ण कामा। वे भी बुहारी देने आवें तव धामा। (186)

श्यामा श्याम गीत

इसी प्रकार निम्न पद को भी देखा जा सकता है जिसमें माँ यशोदा को धन्य मानते हुए नारी की प्रेम (वात्सल्य भाव) शक्ति की ओर संकेत करते हुए नारी दर्शन को अभिव्यक्त किया है–

धन्य सो मातु यशोमति भाम।

श्री कृष्णहिं 'कनुवा', कहि टेरत 'बलुवा' कहि बलराम।

'पूर्व जनम रह शूकर' कह लखि, धूरि धूसरित श्याम।

'पूर्व जनम रह मच्छ' कहत लखि, जल विहार अभिराम।
मुख माटी लखि लेकर साँटी, बाँधति ऊखल दाम।
बन्यो 'कृपालु' पूत यशुमति को, जगत पिता नन्द गाम।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुर्य, पद–11

इसी प्रकार नारी प्रेम शक्ति की प्रतीक श्री राधा तत्त्व की महिमा से आपूरित निम्न पद भी नारी दर्शन को इंगित करता है–जिसमें सर्वशक्ति युक्त तत्त्व भी नारी शक्ति (राधा) के वन्दन हेतु लालायित है–

किशोरी मोरी, सरस प्रेम रस खान।
जग आराध्य ब्रह्मा–आराधित, रति रस चतुर सुजान।
लखि ललितहिं लालिहिं पग चापत, लाल मनहिं ललचान।
मनिहारिनि लिलिहारिनि बनि बनि, ललिहिं रिझावत कान्ह।
गहवर–गलिन अलिन संग हिलिमिलि, विहरति कुंज लतान।
बसे 'कृपालु' जनकादिक लतन तरु, लखत त्यागि निज ध्यान।

प्रेम रस मदिरा : श्री राधा माधुरी, पद–12

इस प्रकार यशोदा, राधा एवं गापियों के प्रेम निरूपण एवं महिमा निरूपण में भारतीय नारी दर्शन ही परिलक्षित होता है जिसमें नारी को शक्ति एवं प्रेम का साकार रूप निरूपित किया है।

भारतीय गुरु महिमा दर्शन – भारतीय संस्कृति गुरु तत्त्व को महत्त्वपूर्ण मानती है। प्रारम्भिक वैदिककाल से ही गुरु को ज्ञान प्रदाता माना गया है। गुरु ही वह तत्त्व है जो जीव को अज्ञान रूपी अंधकार से बाहर निकालकर ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर ले जाता है। गुरु महिमा तत्त्व पर पूर्व अध्याय में विस्तार से अध्ययन किया गया है। अतः पुनरुक्ति दोष से बचते हुए संक्षिप्त में इतना कह सकते हैं कि गुरु महिमा निरूपण में संत कृपालु महाराज ने भारतीय संस्कृति को ही परिलक्षित किया है। इसका एक उदाहरण निम्न रूप में देख सकते हैं–

बलि श्री गुरूदेव कृपालु की।
जिनके दिव्य वचन सुनि छूटत, ग्रंथि अविद्या–जाल की।
जिनके वरद हस्त के सन्मुख, चल न चाल कलिकाल की।

जिनके बनत बिगारि सकत नहिं, माया शक्ति गुपाल की।
जिनके युगल चरन परसत मन, पावत रति नन्दलाल की।
लखत 'कृपालु' अनुग्रह गुरु के लीला लाड़लि लाल की।

प्रेम रस मदिरा : सद्‌गुरु माधुरी

इस प्रकार दर्शन क्षेत्र संस्कृति एवं साहित्य का अभिन्न अंग है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में संस्कृति निरूपण के संदर्भ में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं जैसे अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टद्वैतवाद द्वैताद्वैतवाद आदि को भी देखा जा सकता है। जिसक अध्ययन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है।

संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय संस्कृति के अन्य पक्षों को भी देखा जा सकता है।

भारतीय परम्परा दर्शन – संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय परम्पराओं के निरूपण में भी भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है। परम्पराएँ समाज की संस्कृति का दर्पण होती हैं। परम्पराएँ, तीज़, त्योहार आदि किसी भी समाज की संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं। संत कृपालु महाराज ने राधा-कृष्ण-गोपी लीला चित्रण में यत्र-तत्र भारतीय संस्कृति की परम्पराओं एवं तीज़ त्योहारों का निरूपण करते हुए भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्त किया है। उदाहरण स्वरूप निम्न पद देखा जा सकता है जिसमें उत्सव परम्परा को निरूपित किया है। भारत देश में संतानोत्पत्ति को एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है–

नंद-महर-घर बजत बधाई।
जायो पूत आजु नंदरानी,
नाचत गावत लोग लुगाई।
दूध दही माखन की काँदौ,
सब मिलि भादौं मास मचाई।
बाजत झांझ मृदंग उपंगहिं
वीना वेनु शंख शहनाई।
छिरकत चोवा चन्दन थिरकत,
करि जयकार कुसुम बरसाई। *प्रे.र.म.श्रीकृ.बा.मा.-02*

हमारा रहन सहन, वस्त्र आभूषण, खान पान सभी हमारी संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं इसी संदर्भ में सौन्दर्य वर्धक आभूषणों को धारण करना भी भारतीय संस्कृति है इसी संस्कृति का चित्रण भी संत कृपालु महाराज के साहित्य में मिल जाता है। यथा–

श्यामा जू की, छवि पर छवि बलिहार।
सिर पर कनक मुकुट मणि मण्डित, बहुरंगी छविदार।
चारु चन्द्रिका चम चम चमकति, स्वामिनि गौर लिलार।
बिंदी भाल लाल श्रुति कुण्डल, झलमल झलक निहार।
नासा मुक्ताहल नथ बेसर, गल मुकतन मणि हार।
चिबुक श्याम तिल मुख मृदु मुसकनि, कटि किंकिन झनकार।
अरुण कंचुकी नीलाम्बर दुति, सुवरन जरिन किनार।
कह 'कृपालु' मिलि गौर देह दुति, करति रंग बौछार।

श्री राधा त्रयोदशी : 13

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग तीज़ त्योहारों का निरूपण भी संत कृपालु महाराज के साहित्य में देख सकते हैं। जैसे– होली त्योहार का चित्रण जिसमें होली के त्योहार की मस्ती का निरूपण है–

करत हरि, होरी महँ हुरदंग।
देखु सखी! जनु ताण्डव-गति सों, निरतत शत्रु-अनंग।
बाजत वीणा, वेणु, ढोल, ढ़प, चंग, मृदंग, उपंग।
रंग बिरंग रंग पिचकारिन, मारत तकि तकि अंग।
सखिन समेत श्याम-सुन्दर को, इन्द्र धनुष सों रंग।
एतिक उड़त गुलाल लाल भये, भू-अंबर इक संग।
लाल-गुलालन लखि न परत पुनि, बूड़ी प्रेम-तरंग।
सखि मुख हरि-मुख जानि मलति सखि, रोरिहिं गति अड़बंग।
सुधि नहिं भूषण वसन काहु कहँ, पिये मनहुँ सब भंग।

प्रेम रस मदिरा : होरी माधुरी, पद–3

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में गौ चारण, गौ पूजा (ग्वाल संस्कृति) की पारम्परिक संस्कृति को भी देख सकते हैं। संत कृपालु महाराज का साहित्य कृष्ण भक्ति आधारित काव्य है। कृष्ण लीला प्रसंग में उन्होंने ब्रज प्रदेश की गोचारण (ग्वाल) संस्कृति के कुछ सांस्कृतिक रंग बिखेरे हैं इसके कुछ उदाहरण निम्न रूप से देख सकते हैं।

सुनहु कान्ह करि कान जात हम, गोचारण कह राम।
सुनि 'कृपालु' बल वचन उठे हरि, अरबराइ धरि पाम।

प्रेम रस मदिरा : श्री बाल कृष्ण लीला माधुरी, पद – 39

ग्वाल संग गोचारत गोपाल।
कोउ गावत कोउ वेनु बजावत, कोउ नाचत दै ताल। *वही : पद –65*

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय समाज में व्याप्त परम्पराओं, तीज त्योहारों एवं उत्सवों का यथा प्रसंग निरूपण भारतीय संस्कृति को परिलक्षित करता है।

6.1.2 संत कृपालु महाराज के साहित्य में प्रकृति चित्रण

प्रकृति मानव संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। संत कृपालु महाराज की काव्य रचनाओं में हमें प्रकृति सौन्दर्य के भी दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। लीला निरूपण में यथेष्ट स्थानों पर उन्होंने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। जैसे उदाहरण के तौर पर 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें वृन्दावन की महिमा गायन के साथ–साथ वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण है।

लखो रे मन, वृंदा विपिन–बहार।
जहँ विहरति वृषभानुनन्दिनी, छविनिधि नंदकुमार।
जहँ चिन्मय सब जीव चराचर, जहँ राधे सरकार।
जहँ बसंत ऋतु वास करत नित, भ्रमर करत गुंजार।
जहँ विकसत नित कुंद केवड़ा, कर्णिकार कचनार।
जहँ केकी कोकिला कीर नित, राधे नाम उचार।
जहँ 'कृपालु' जलजा–प्रवेश नहिं, निगम न पावत पार।

प्रेम रस मदिरा : धाम माधुरी, पद–3

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अरे मन दिव्य वृन्दावन की अलौकिक बहार देख, जहाँ पर प्रिया-प्रियतम नित्य ही विहार करते हैं। जहाँ जड़-जंगम समस्त जीव चिन्मय हैं, जहाँ की महारानी राधा ठकुरानी हैं, जहाँ नित्य ही बसंत ऋतु का निवास है तथा जहाँ खिले हुए कुन्द, केवड़ा, कर्णिकार, कचनार आदि फूलों पर भौंरे गुंजार किया करते हैं। जहाँ मोर, कोयल, तोते आदि भी निरन्तर 'राधे-राधे' पुकारा करते हैं। जहाँ महालक्ष्मी का भी प्रवेश नहीं है एवं जहाँ वेदों की भी गति नहीं हैं

प्रकृति चित्रण के एक अन्य उदाहरण स्वरूप 'ब्रज रस माधुरी' का निम्न छन्द प्रस्तुत है जिसमें सावन मास का सुन्दर चित्रण है-

सखि लखु सावन मास बहार।
हरियाली हरियाली आली निहार।
मंद सुगंधित बहत बयार।
उमड़ि घुमड़ि धन गरज निहार।
रिमझिम रिमझिम परम फुहार।
धन विच दामिनि दमक निहार।
फूलें फूल लतन बलिहार।
झूलें अलि तरु झूला डार।
चलु अति मिलि ढिंग भानु दुलार।
कहु चलिए झूलन सरकार।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद सं.-134

अर्थात् संत कृपालु महाराज सावन के माह में ब्रज के प्राकृतिक सौन्दर्य का बखान करते हुए गोपियों द्वारा राधा-कृष्ण को झूला झूलने हेतु आमंत्रित करने का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे सखि! देखो सावन मास में प्रकृति कितनी सुन्दर लग रही है। चारों ओर हरियाली छायी हुई है। मन्द-मन्द सुगंधित हवा बह रही है। आकाश में चारों ओर काले बादल घूम-घूम कर गर्जना कर रहे हैं। रिमझिम-रिमझिम सुन्दर फुहार हो रही है। आकाश में काले बादलों के मध्य बिजली चमक रही है। लताओं में सुन्दर फूल खिले हुए हैं। ऐसे समय में चलो राधा रानी के पास उन्हें झूला झूलने हेतु आमंत्रित करें।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज के काव्य में प्रकृति चित्रण की विशेषता सांस्कृतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में परिलक्षित है।

6.1.3 संत कृपालु महाराज के साहित्य में कला संस्कृति

मानव समाज में प्रचलित कलाएँ, समाज की संस्कृति को अभिव्यक्त करती हैं। भारतीय संस्कृति तो सदा से ही कला प्रधान संस्कृति रही है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में दार्शनिक संस्कृति निरुपण के साथ भारतीय कला संस्कृति भी परिलक्षित होती है। उनके साहित्य में व्याप्त कला संस्कृति को निम्न रूपों में देख सकते हैं–

संगीत एवं नृत्य कला संस्कृति – संगीत एवं नृत्य कला भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य कला का एक रूप संत कृपालु महाराज के साहित्य में निम्नानुसार देख सकते हैं जब बाल कृष्ण गोपियों को रिझाने के लिए ब्रज में नृत्य करते हैं।

नाचे नन्दनन्दन थेई थेई थेई थेई।
ता थेई ता थेई थेई थेई थेई थेई थेई।
तत्ता थेई तत्ता थेई थेई थेई थेई थेई।
नाचे मन मोहन थेई थोई थेई थेई।... *युगल माधुरी : पद– 10*

इसी प्रकार नन्द के महल में नन्द कुमार श्री कृष्ण की नृत्य लीला निरूपण में भी भारतीय नृत्य कला संस्कृति परिलक्षित होती है।

नंदघर निरतत नन्द कुमार।
ताण्डव नृत्य करत जनु शंकर, यशुमति अजिक मझार।
जानि 'कृपालु' दिगंबर शंकर, डरपत मदन निहार।

प्रे.र.म.ःश्री.कृ.बा.मा., पद–25

इस प्रकार नृत्य कला संस्कृति के साथ–साथ संगीत कला से तो संत कृपालु महाराज का साहित्य सर्वथा परिपूर्ण है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की जितनी भी राग रागनियाँ हैं जैसे यमन बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी तोड़ी आदि में उनके पद निरूपित हैं। अपने स्वरचित छन्दों को वे स्वयं संगीत बद्ध किया करते थे। आज भी भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गायकों जैसे–मन्ना डे, सुरेश

वाडेकर, साधन सरगम, अनूप जलोटा, अनुराध पोड़वाल, कविता कृष्ण मूर्ति आदि के द्वारा भी उनके पदों का गायन किया जा रहा है।

दृश्य काव्य कला संस्कृति (अभिनय कला) संस्कृति – श्रव्य काव्य के साथ–साथ संत कृपालु महाराज ने नाट्य कला को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। उन्होंने न केवल नाट्य मंचन करवाया अपितु स्वयं भी पात्र बनकर अभिनय कला में सम्मिलित हुए। विभिन्न पौराणिक कथा प्रसंगों जैसे राम–जानकी विवाह, शिव–पार्वती–विवाह, गोपी–दुर्वासा संवाद, शंकर–यशोदा संवाद, मल्लाह लीला, तुलसी विवाह, श्री गौरांग–विष्णु प्रिया विवाह आदि प्रसंगों का नाट्य मंचन किया तथा स्वयं भी पात्र बनकर उक्त कला में अभिनयात्मक रूप से सम्मिलित हुए। (उक्त नाट्य मंचन की सी.डी. देखने हेतु उपलब्ध है)।

इस प्रकार उनके साहित्य में अभिनय कला संस्कृति को देखा जा सकता है।

स्थापत्य (शिल्प) कला संस्कृति – संत कृपालु महाराज ने साहित्य लेखन के साथ–साथ शिल्प कला के प्रति भी अपनी रूचि अभिव्यक्त की है। संत कृपालु महाराज ने अपने जीवन काल में स्वयं के निर्देशन में अनेक शिल्प कलात्मक साधना भवनों, मन्दिरों, आश्रमों का निर्माण करवाया है। उनके निर्देशन में बने मनगढ़ ग्राम (उनकी जन्मस्थली) में निर्मित भक्ति मन्दिर, वृन्दावन धाम में निर्मित प्रेम मन्दिर, मनगढ़ साधना भवन, बरसाना साधना भवन, वृन्दावन में निर्मित श्यामा श्याम धाम, वृन्दावन में ही निर्मित जगद्गुरू धाम आदि अनेक ऐसे निर्माण हैं जो भारतीय आध्यात्मिक शिल्प कला को और धनी बनाते हैं।

शिल्प एवं स्थापत्य कला की दृष्टि से मनगढ़ धाम में निर्मित भक्ति मन्दिर एवं साधना भवन तथा वृन्दावन में निर्मित प्रेम मन्दिर शिल्प कला के सुन्दर और अनूठे रूप बनकर उभरे हैं। इनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये भवन आने वाली सदियों तक भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते रहेंगे। इन भवनों की स्थापत्य (शिल्प) विशेषताओं को निम्न रूप से देख सकते हैं–

मनगढ़ भक्ति मन्दिर – यह मन्दिर गुलाबी एवं सफेद पत्थर के साथ काले ग्रेनाइट पत्थर से बनाया गया है। प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर मनगढ़ ग्राम में यह एक ऐसा

स्मारक है जैसा सम्पूर्ण विश्व में मिलना दुर्लभ है। मन्दिर की दीवारों पर बहुमूल्यवान पत्थर से 'भक्ति शतक' के सौ दोहे लिखे गए हैं। मन्दिर का मुख्य आकर्षण श्री राधा कृष्ण का मनोहारी स्वरूप है। साथ में अष्ट महासखियों की छवि अत्यन्त अनुपम है। पहली बार श्री राधा–कृष्ण के ऐसे स्वरूप को स्थापित किया गया है।

वृन्दावन प्रेम मन्दिर – वृन्दावन का प्रेम मन्दिर शिल्प कला का बेजोड़ नमूना बनकर उभरा है। विश्व की ऐतिहासिक धरोहर बनने जा रहा यह भव्य मन्दिर जो कि 20 एकड़ जमीन पर इटली के श्वेत पत्थर से निर्मित किया गया है, आज समस्त विश्व में भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का प्रतीक बनता जा रहा है। समस्त विश्व से लाखों पर्यटक, यात्री विशेष रूप से इस मन्दिर के दर्शनार्थ वृन्दावन धाम आते हैं। इनके साथ–साथ अनेक साधना भवन एवं आश्रम भी इनके निर्देशन में बनाए गए हैं।

निष्कर्ष –

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का साहित्य लेखन के साथ–साथ भारतीय स्थापत्य संस्कृति की ओर भी विशेष रुझान था। उनके निर्देशन में निर्मित इन मन्दिरों, साधना भवनों एवं आश्रम की दीवारों पर कलात्मक रूप में उनकी साहित्यिक रचनाओं को अंकित किया गया है। अतः संत कृपालु महाराज का सम्पूर्ण साहित्य, दर्शन एवं कला दोनों ही दृष्टियों से भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। उनका साहित्य भारतीय संस्कृति का पूरक बनकर उभरा है।

❖❖❖

सप्तम् अध्याय

संत कृपालु महाराज के साहित्य में शैल्पिक वैशिष्ट्य

सप्तम् अध्याय

संत कृपालु महाराज के साहित्य में शैल्पिक वैशिष्ट्य

7.1.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध के पूर्व अध्याय में संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत वैदिक हिन्दू धर्म दर्शन, भारतीय मुस्लिम धर्म दर्शन, भारतीय सिक्ख धर्म दर्शन, भारतीय नारी दर्शन, भारतीय गुरूमहिमा दर्शन, भारतीय परम्परा दर्शन, प्रकृति चित्रण, कला संस्कृति आदि का अध्ययन किया गया।

प्रस्तुत अध्याय में संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित काव्यगत प्रवृत्तियों (शैल्पिक वैशिष्ट्य) का अध्ययन किया गया है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित शैल्पिक वैशिष्ट्य निम्नानुसार प्रस्तुत है–

7.1.1 संत कृपालु महाराज के साहित्य में भाषा सौष्ठव

संत कृपालु महाराज का साहित्य भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से सबल एवं परिपुष्ट है। संत कृपालु महाराज समन्वय प्रवृत्ति के संत एवं साहित्यकार रहे हैं। यही समन्वयात्मक प्रवृत्ति हमें उनकी भाषा में भी देखने को मिलती है। उनका समस्त गद्य साहित्य खड़ी बोली हिन्दी में रचित है तथा पद्य साहित्य ब्रज भाषा एवं खड़ी बोली हिन्दी मिश्रित है साथ ही संस्कृत के तत्सम, तद्भव एवं अरबी–फारसी युक्त उर्दू शब्दावली के साथ–साथ अन्य प्रान्तीय बोलियाँ जैसे पंजाबी, बंगाली, राजस्थानी शब्दों का प्रयोग भी उनकी पद्य भाषा में मिलता है। जहाँ उन्होंने पद्य साहित्य में प्रसाद एवं माधुर्य गुण से युक्त सरल भाषा में रचनाएँ की है वहीं क्लिष्ट भाषा के उदाहरण भी उनके काव्य में मिल जाते हैं।

उनकी काव्य भाषा की कुछ विशेषताओं के उदाहरण निम्नानुसार देख सकते हैं–

भाषा में सरलता – उनके काव्य में व्याप्त सरल भाषा का एक उदाहरण निम्नानुसार प्रस्तुत है– **कब देखूँ नैनन छवि घनश्याम।**

कब सुनूँ कानन मृदु बैन श्याम।

कब लउँ रस अधरामृत श्याम।
कब करूँ आलिंगन तनु श्याम।
कब सूंघूँ दिव्य तनु धन श्याम।
कब ध्यावूँ दिव्य मन दिव्य श्याम।
कब चापूँ कर चरनन श्याम।
कब नित्य वास करुँ धाम श्याम।

ब्रज रस माधुरी : (02), पद सं.-18

भाषा में कोमलता -कोमलता एवं रस से परिपूर्ण भाषा का एक उदाहरण निम्न है-

सजीले छैल छबीले श्याम।
रसिक रंगीले, गुन गर्वीले, चटकीले छवि धाम।
नीले तन पर अम्बर पीले, चमकीले अभिराम।
सरस रसीले दृगन गँसीले, सी ले मन ब्रज बाम।
चलि लचकीले सखि मन की ले, मुरली ले तिन नाम।
अस पी ले 'कृपालु' रस पी ले ही ले धरि अविराम।

प्रेम रस मदिरा : कृष्ण माधुरी, पद-36

भाषा में क्लिष्टता - यद्यपि संत कृपालु महाराज का साहित्य सरलता, कोमलता मधुरता प्रधान काव्य है किंतु कहीं-कहीं पर क्लिष्ट भाषा के उदाहरण भी मिल जाते हैं। यथा -

प्यारी तोरी, अरुण अधर-छवि न्यारी।
विकसित जनु बंधूक कुसुम वर, अधर ओष्ठ-लेखा री।
प्रकट साथ मुख शशि संध्या सम, शैशव यौवन प्यारी।
उदित मुखेंदु अधर पियूष-भू, बिंब बिम्ब अनुहारी।
ह्लादिन्यादि-शक्ति-गणना-मिस, अधर सुरेख सँवारी।
हम 'कृपालु' उपमान बिंबफल, राधा अधर विचारी।

प्रेम रस मदिरा : राधा माधुरी, पद-22

भाषा में उर्दू की रवानगी - संत कृपालु महाराज के काव्य में हमें कई जगह उर्दू की रवानगी भी दृष्टिगत होती है-यथा-

1. इक नज़र उनको देखा गज़ब हो गया।
हाले दिल अब तो मेरा अज़ब हो गया।

ब्रज रस माधुरी : 01, परिशिष्ट 01

2. सुन के आया हूँ सरकार तेरे कूचे में,
बख्शे जाते हैं गुनहगार तेरे कूचे में।
सारे आलम की है बहार तेरे कूचे में,
मुझे तो मिलता है बस प्यार तेरे कूचे में।....

ब्रज रस माधुरी : 01, परिशिष्ट 6

3. सरकार माफ हो गुस्ताखी, कुछ खोटी खरी सुनाता हूँ।
मैं तेरा हूँ तेरा होकर, दर दर की ठोकर खाता हूँ।.....

ब्रज रस माधुरी : 01, परिशिष्ट 7

4. साकी लुटा रहा है मयखाना ए जमाना।
भर भर के पी ले मय पर पैमाना साथ लाना।

ब्रज रस माधुरी : 01, परिशिष्ट 8

5. हम तो तेरी अदा पर फिदा हो गये।
दीनों दुनिया सभी अलविदा हो गए।

ब्रज रस माधुरी : 01, परिशिष्ट 9

भाषा में चित्रात्मकता – 'प्रेम रस मदिरा' का निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें राधा द्वारा कृष्ण को छलने का सुन्दर चित्रात्मक निरूपण है–

चलीं ललि, आजु छलन नन्दलाल।
मुकुट मयूर–पुच्छ–गुच्छन सिर, खौरि तिलक दिय भाल।
दुपटी, पीतपटी, लकुटी कर, गर–गुंजन–वनमाल।
छूटी लट, कानन कुण्डल मुख, मुरली शब्द रसाल।
काछनि काछे कटितट अटपट, नटखट सों चलि चाल।
गोरे ग्वाल भानुपुर के बनि, गइँ 'कृपालु' ढिंग लाल।

प्रेम रस मदिरा : लीला माधुरी, पद 8

भाषा में शब्द शक्ति प्रयोग – संत कृपालु महाराज के साहित्य में भाषा की तीनों शब्द शक्ति प्रयोग के उदाहरण हमें मिलते हैं–

(क) अभिधा शब्द शक्ति – उनकी कई रचनाओं में सहज सरल अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग है जिसमें भाषागत अर्थ सहज ग्राह्य हो जाता है। इस शब्द शक्ति से कवि मुख्य सांकेतित अर्थ को ही अभिव्यक्त करना चाहता है।

भज मन राधा रमन घनश्याम।
कर अरपन तन मन धन धाम।
जग का सुख अल्प सुख परिणाम।
जग सुख नश्वर दुख परिणाम।
इन्द्रिय विषय बढ़ावत काम।
ब्रह्महूँ ते बड़ इन्द्रिन काम।
धृत सम भोग अग्नि सम काम।
तजि दे इन्द्रिन पाँचन काम।

ब्रज रस माधुरी : 02, पद–32

(ख) लक्षणा शब्द शक्ति – संत कृपालु महाराज के साहित्य में लाक्षणिकता का गुण भी प्रचुर रूप में है। जहाँ पर कवि मुख्यार्थ के बाधित होने पर लक्ष्यार्थ को ही अभिव्यक्त करना चाहता है–

या कारे ने, करे करतब कारे।
सुनु गोरी होरी खेलन मिस, हाय! हाय करोर जुलुम ढारे।
मलत गुलाल गाल कहि 'प्यारी' मोहूँ कह 'तू कह प्यारे'।
बरबस नैनन नैन मिलावत, पुनि तकि–तकि सैनन मारे।
कहत लजात बात औरन सखि, करत न का, रे दैया रे।
कह 'कृपालु' तू तो अबला सखि! याते विधि हरि, हर, हारे।।

प्रेम रस मदिरा : होरी माधुरी, पद 15

(ग) व्यंजना शब्द शक्ति – जब न तो मुख्यार्थ से, न ही लक्ष्यार्थ से अभिप्रेरित अर्थ अभिव्यक्त हो बल्कि कथन के संदर्भ के अनुसार व्यंग्यार्थ प्रकट होता है वहाँ व्यंजना

शब्द शक्ति कार्य करती है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमें उक्त शब्द शक्ति भी दृष्टिगत होती है, यथा–

ब्रह्म निरंजन जनि भनो, सुनहु खोलि निज कान।
अंजन बनि डोलै सदा, पाछे ब्रज बनितान। (92)*भक्ति शतक*

उपर्युक्त दोहे में निराकार ब्रह्म के स्थान पर साकार ब्रह्म की उपासना का संदेश है, व्यंजना अंजन बनि डालने शब्द में है क्योंकि यहाँ मुख्यार्थ लक्ष्यार्थ के स्थान पर व्यंग्यार्थ से ही अर्थ अभिव्यक्त हो रहा है।

जाके अगनित गुनन को, गावत वेद ऋचान।
दारी के, गारी सुनन, सोइ छेड़त सखियन। (94) *भक्ति शतक*

उपर्युक्त दोहे में व्यंजना यह है कि जिस ब्रह्म की गुण गाथा वेद की ऋचाएँ करती हैं वही ब्रह्म ब्रज गोपियों की गालियाँ सुनने के लिए बार–बार उन्हें छेड़ता है। इन दोहों के अर्थ में व्यंजना है।

भाषा में अलंकारों का सहज प्रयोग – भारतीय काव्य शास्त्रीय परम्परा में अलंकार को मुख्य काव्य तत्त्व ही नहीं अपितु, सिद्धान्त के रूप में महत्त्व दिया गया है। काव्य शास्त्रीय मंथन में अलंकार काव्य सौन्दर्य का विशेष धर्म एवं गुण बनकर उभरे हैं। कई काव्यशास्त्रियों ने तो अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में निरूपित किया है। अलंकार काव्य की मात्र बाहरी शोभा को ही नहीं बढ़ाते अपितु अलंकारों से काव्य का उत्कर्ष द्विगुणित होता है। काव्य में अलंकारों के महत्त्व पर अनेक काव्यशास्त्रियों ने लिखा है– यथा आचार्य दण्डी–

'काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।' *आचार्य दण्डी*

अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म ही अलंकार है। आचार्य वामन के अनुसार– **"काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः।**
तदतिशयहेतस्वलंकाराः।" *आचार्य वामन*

अर्थात काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाले धर्म गुण कहलाते हैं तथा उनकी अतिशयता अलंकार है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशयिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेङ्ग दादिवत्। *साहित्य दर्पण : 10.9*

अर्थात अलंकार काव्य शरीर के अस्थिर धर्म के रूप में उसकी अतिशय शोभा बढ़ाते हुए रसादि का उपकार करते हैं।

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले इस अद्वितीय काव्य तत्त्व अर्थात अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हमें संत कृपालु जी महाराज के काव्य में मिलता है। उनके काव्य में अलंकार स्वतः ही विचरण करते हुए प्रतीत होते हैं। उन्होंने अलंकारों को अपनी रचनाओं में थोपा नहीं अपितु सहज रूप में गृहणीय हैं। जैसे निम्न अलंकारों को उनके काव्य में देखा जा सकता है–

अनुप्रास अलंकार – संत कृपालु महाराज के काव्य में अनुप्रास की अनूठी छटा देखने को मिलती है–उनके काव्य में अनुप्रास के सभी रूप विद्यमान हैं यथा–छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास, लाटानुप्रास।

धनि धनि अवनि 'कृपालु' जननि धनि, धनि गोकुल ग्राम की।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण बाल माधुरी, 13

कछु कर कछु मुख कछु तनु लेपित, कछु मुख दे बलराम। *वही : पद 17*

समुझ! समुझ सों श्याम को, समुझ सका नहिं कोय।

समुझ मिलइ जब श्याम की, समुझ सकै बस सोय। (32) *भक्ति शतक*

अलक की हलक, पलक की छलक, कलक की झलक

ललक देखन छवि प्यारी की।

प्रेम रस मदिरा : आरती माधुरी, –पद1

उपमा अलंकार – जहाँ पर किसी वस्तु को समानता के आधार पर दूसरे के समान बताया जाए वहाँ उपमा अलंकार होता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में उपमा अलंकार प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुआ है–

ब्रह्म श्याम हैं सूर्य सम, जीव किरन अनुहार। (73)

ब्रह्म एक मधु रूप है, एक भ्रमर उनयान। (52) *भक्ति शतक*

दाड़िम बीज सरिस दशनन दुति, दमकनि श्वेत निहार। *श्री कृष्ण द्वादशी–3*

प्रीति सखि नागिनि सी बल खाय। *प्रेम रस माधुरी : प्रेम माधुरी, पद–5*

रूपक अलंकार – जब कवि उपमान एवं उपमेय में किसी प्रकार का भेद नहीं मानता। उपमेय में उपमान का अभेद आरोप करता है तो रूपक अलंकार माना जाता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में रूपक अलंकार को निम्न रूप से देख सकते हैं–

इनहिंन सुत, पति, बनितनि कारन, अगनित जनम नसान रे।
जब लौं रह तरु फल ये पक्षिन, चहकत करि गुनगान रे।
पै 'कृपालु' फल गिरत लेत सब, लंबी गगन उड़ान रे।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी–02

कह 'कृपालु' मम उर सम्पुट मणि, महँ विरहंरहु सुकुमार।

श्री राधा त्रयोदशी : 04

मधुर मिलन रस सुधा माधुरी, पियत सबै बौराय।

प्रेम रस माधुरी : प्रेम माधुरी, पद 5

उत्प्रेक्षा अलंकार – जब उपमेय में उपमान की संभावना प्रकट की जाती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में उत्प्रेक्षा अलंकार अनेक स्थानों पर दर्शनीय है–

छके युगल रस रास सरस जनु, मूर्तिमान रस राज।

प्रेम रस मदिरा : सद्‌गुरु माधुरी, 03

कर्म, योग, अरु ज्ञान सब, साधन यदपि बखान।
पै बिनु भक्ति सबै जनु, मृतक देह बिनु प्रान। (8) *भक्ति शतक*
कह 'कृपालु' सब दुति मिलि मानहुँ, दुति मूरति साकार। *श्री रा.त्र.8*
विकसित आनंद मोद पुष्प जनु, श्री मुख भानु दुलार। *श्री रा.त्र.10*

यमक अलंकार – जब काव्य में एक शब्द अनेक बार प्रयुक्त होता है और उस शब्द का हर बार अलग अर्थ होता है तो यमक अलंकार होता है। संत कृपालु महाराज के काव्य में यमक अलंकार सुन्दर रूप में दर्शनीय है–

भानु–सुता–तट भानु–सुता गइ, कालि आलि लाली। *प्रे.र.म. : मि.मा., 14*

एक भानु सुता का अर्थ यमुना नदी एवं भानु सुता का अर्थ भानु पुत्री राधा से है।

विरोधाभास अलंकार – जब वास्तविकता में तो विरोध न हो किंतु साधारण दृष्टि से सोचने पर विरोध दृष्टिगोचर हो तो विरोधाभास अलंकार होता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में विरोधाभास अलंकार को निम्न रूप में देख सकते हैं।

अधम उधारन नाम सुनि, उर आशा बढ़ि जात।
भक्ति वश्य सुनि नाम पै, मन महँ अति डरपात। (90) *भक्ति शतक*

इस दोहे में साधारण दृष्टि में विरोध दृष्टिगोचर हो रहा है किंतु गहराई से अर्थ ग्रहण करने पर विरोध नहीं है।

उठे हरि नैनन नींद भरे। *प्रे.र.म. : श्री कृ.बा.ली.मा.,पद–22*

विभावना अलंकार – जब वास्तविक कारण के बिना ही किसी कार्य का होना पाया जाए वहाँ विभावना अलंकार माना जाता है।

कर्म, ज्ञान अरु योग को, जो भी फल श्रुतिगाय।
अनायास बिनु माँगे, भगत सकल फल पाय। (64) *भक्ति शतक*
मन मन मोहन भजन कर, सजन सनेही मान।
बिनुहिं बुलाये आहहैं, जग विराग अरु ज्ञान। (75) *भक्ति शतक*
बिनु कारण करुणाकर जाकर, अस स्वभाव भल भ्राज।
प्रेम रस मदिरा : सद्‌गुरु माधुरी, 03

यथासंख्यक्रम अलंकार – जब किसी पद में परस्पर संबंधित शब्दों को एक निश्चित क्रमानुसार स्थान दिया जाता है एवं उसी क्रम के अनुसार उनका अर्थग्रहण किया जाता है। तो वहाँ यथासंख्य क्रम अलंकार होता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में उक्त अलंकार भी दर्शनीय है–

सबै सरस रस द्वारिका, मथुरा अरु ब्रज माहिं।
मधुर, मधुरतर, मधुरतम, रस ब्रजरस सम नांहि। (70) *भक्ति शतक*

प्रतिवस्तुपमा अलंकार – जब दो प्रकार के वाक्यों में एक ही भाव वाला साधारण धर्म प्रकट हो रहा हो परन्तु पुनरुक्ति प्रभाव से बचने के लिए उस साधारण धर्म को भिन्न–भिन्न शब्दों से प्रकट किया जाता है तो वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार माना जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है।

जो हरि सेवा हेतु हो, सोई कर्म बखान।
जो हरि भगति बढ़ावे, सोई समुझिए ज्ञान। (66) (भक्ति शतक)

उक्त दोहे में दोनों वाक्यों में साधारण धर्म भाव एक है किंतु पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए अलग–अलग शब्द प्रयोग में लाए गए हैं।

मानवीकरण अलंकार – जब किसी जड़ अमूर्त या प्राकृतिक वस्तुओं, पदार्थों पर मानवीय क्रियाओं का आरोपण किया जाता है तो प्राकृतिक जड़ या अमूर्त पदार्थ भी मानव जैसी क्रियायें करते दिखाई पड़ते हैं। वहाँ मानवीकरण अलंकार माना जाता है।

निज कुल महँ निज पितु कहँ लखि जनु, निशि मुसकात मयंक।

श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी : पद–10

मयंक पर मुस्कराने की क्रिया पर आरोपण किया गया है।

आई भानु–किरन लखु मोहन, चंद्र किरन गई भाग रे। *वही : पद –2*

चन्द्र किरण पर भागने की क्रिया का आरोपण किया गया है।

उदाहरण अलंकार – जब एक वाक्य कहकर उसके उदाहरण के रूप में दूसरा वाक्यांश कहा जाए तथा दोनों वाक्यों का साधारण धर्म भिन्न होने पर भी उनमें वाचक शब्द के द्वारा समानता दिखाई जाए तो वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। ये वाचक शब्द जैसे, ज्यों, जिमि, इव आदि हैं।

जिमि जलनिधि महँ जल कहत, अरु जलनिधि जल रूप।
तिमि हरि मधि आनन्द अरु, हरि आनन्द स्वरूप। (71) *भक्ति शतक*

अर्थात जिस प्रकार सागर (जलनिधि) में जल है, ऐसा कहा जाता है जबकि जलनिधि ही जल होता है ऐसा जलनिधि कोई पात्र नहीं है जिसमें जल हो। उसी प्रकार ब्रह्म आनन्द सिंधु है, कहने में कहा जाता है कि भगवान में आनन्द है।

गुंफित सुमन सुधर वेणी की, लटकनि छवि छविदार।
गिरि जमुनोत्री से जैसे गिर, जमुना जू की धार।

प्रे.र.म. : श्री.कृ.बा.ली.मा.,पद–24

दृष्टान्त अलंकार – प्रतिबिम्ब भाव होने पर, उपमेय वाक्य में जो बात कही जाती है, उसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए उसी से मिलता–जुलता दूसरा उपवाक्य कहा जाता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार माना जाता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में दृष्टान्त अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

सत्य अहिंसा आदि मन! बिनु हरि भजन न पाय।

जल ते धृत निकले नहीं, कोटिन करिय उपाय। (35) *भक्ति शतक*

पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार – अर्थ में रोचकता लाने के लिए किसी शब्द की पुनरावृत्ति लाना पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है। संत कृपालु महाराज के काव्य में उक्त अलंकार सुन्दर रूप में प्रयुक्त हुआ है।

हरि संयोग वियोग महँ, बड़ो वियोग बताए ।
कारण यह कि वियोग महँ, कण–कण श्याम लखाय। (78) *भक्ति शतक*
जाको कहि निर्लेप अस, पुनि पुनि वेद पुकार। (95) *भक्ति शतक*
जगमग जगमग जगमगात अति, कनक मुकुट रिझवार। *श्री.रा.ज.–9*

व्यतिरेक अलंकार – जब किसी पद में उपमान की अपेक्षा उपमेय को अधिक बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है। अर्थात् उपमेय का उत्कर्षपूर्ण वर्णन किया जाता है वहाँ व्यतिरेक अलंकार माना जाता है।

तनु दुति तप्त स्वर्ण दुति ते हूँ, अति उद्दीप्त निहार। (श्री राधा त्रयोदशी–03)

प्रस्तुत उदाहरण में राधा के तन की चमक को स्वर्ण की चमक के भी अधिक बताया गया है।

छवि प्रतिबिंब 'कृपालु' देखि हौं, चन्द्र अमित दउँ वार। *श्री राधा त्रयोदशी :03*

प्रतीप अलंकार– प्रतीप का शाब्दिक अर्थ है 'उलटा या विपरीत'। यह उपमा का विपरीत अलंकार माना जाता है। जब पद में उपमान को उपमेय बना दिया जाता हे तो प्रतीप अलंकार माना जाता है।

दृग खंजन चकोर मद गंजन, चितवनि उर हरषावनी। *प्रे.र.म. : श्री.रा.मा.*
गवनि हंस रिझवार। *श्री राधा त्रयोदशी :3*
सुंदर कंध सुडौल सिंहहूँ, कंध लजावन हार। *श्री कृष्ण द्वा. :08*
खंजन मीन चकोर ठगे से, देखत नैन खरे। *प्रे.र.मा.:श्री.कृ.बा.ली.मा, पद–22*

मीलित अलंकार – जब कोई वस्तु अपने अनुरूप किसी दूसरी वस्तु में इस प्रकार मिल जाती है कि उसका स्वरूप अलग दिखलाई नहीं पड़ता है तो वहाँ मीलित अलंकार माना जाता है। जैसे–

मुख अरु कुण्डल कान्ति मिलित छवि, चंद्र सूर्य अनुहार। *श्री रा.त्र.–10*

प्रस्तुत उदाहरण में राधा के मुख की कांति एवं उनके कुण्डलों से झलकती कांति दोनों इस प्रकार मिल गई हैं कि वे सूर्य एवं चन्द्र की कांति के जैसे परिलक्षित हो रही है।

तद्गुण अलंकार – जब कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के संपर्क में आने पर अपना गुण त्यागकर उत्कृष्ट गुण वाली अन्य वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है। तब वहाँ तद्गुण अलंकार माना जाता है–

दाड़िम बीज सरिस दशनन दुति, दमकनि श्वेत निहार।
सो दुति अधर अरुणिमा ते मिलि, श्वेतारुण रंगधार।
पुनि श्वेतारुण रंग में तनु रंग, नीलो मिलि इक सार।
लखि 'कृपालु' मुख रंग त्रिवेणी, विधि हरि हर मन हार।

श्री कृष्ण द्वादशी : 3

प्रस्तुत उदाहरणों में तद्गुण अलंकार है। क्योंकि दाँतों का श्वेत रंग अधरों के लाल रंग की आभा से श्वेतारुण हो गया है।

संदेह अलंकार – जब किसी पद में समानता के कारण उपमेय में उपमान का संदेह उत्पन्न हो जाता है और यह संदेह अन्त तक बना रहता है तो वहाँ संदेह अलंकार माना जाता है। **अनुपम नीलो तनु सरकार।**

कोउ कह इन्द्रनील मणि सम कोउ, नील जलद अनुहार।
कोउ कह नीलकमल सम नील, तुनु छवि नन्दकुमार। *श्री.कृ.द्वा. : 2*

उक्त उदाहरण में संशय बना हुआ है कि कृष्ण के शरीर का रंग किस प्रकार का है।

वक्रोक्ति अलंकार – वक्रोक्ति शब्द 'वक्र+उक्ति' के योग से बना है, जिसका अर्थ है टेढ़ा कथन अर्थात जब वक्ता के द्वारा कहे गये किसी वाक्य या कथन का श्रोता द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण कर लिया जाता है तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार माना जाता है।

तुम तो जोगी। 'अलख अलख', कह, पुनि किमि लख करतार'।
'भैया! अलख न कह्यों कह्यों हौं, आ लख नंद कुमार।

प्रेम रस मदिरा : श्रीकृष्ण बाल लीला माधुरी, पद–6

उक्त उदाहरण में यशोदा एवं योगी शंकर के मध्य संवाद है जिसमें भगवान शंकर द्वारा कहे गये 'अलख' शब्द पर वक्रोक्ति अलंकार है।

श्लेष अलंकार – जब किसी पद में प्रयुक्त एक ही शब्द के अलग-अलग संदर्भ के अनुसार अलग-अलग अर्थ प्रयुक्त हो जाते हैं तो वहाँ श्लेष अलंकार माना जाता है।

सुनु मैया! यह दास आदि जग, तव सुत-सुत-सुत आय।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी, पद-7

उक्त पंक्ति में 'सुत' शब्द के तीन अर्थ हैं- प्रथम सुत यशोदा पुत्र कृष्ण के लिए दूसरा सुत कृष्ण पुत्र ब्रह्मा के लिए तीसरा पुत्र ब्रह्मा पुत्र शिव के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भ्रांतिमान अलंकार – जब किसी पद में किसी सादृश्य विशेष के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम उत्पन्न हो जाता है तो वहाँ भ्रांतिमान अलंकार माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब किसी पदार्थ को देखकर हम उसे उसके समान गुणों या विशेषताओं वाले किसी अन्य पदार्थ के रूप में मान लेते हैं तो भ्रांतिमान अलंकार माना जाता है। **धूरि धूसरित अंग रंग लखि, भयहु अनंगहिं शंक।**

श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी :10

बाल कृष्ण के धूल से सने हुए श्वेत रंग को देखकर काम देव को यह भय हो गया कि यह कहीं भगवान शंकर तो नहीं हैं।

जानि 'कृपालु' दिगंबर शंकर, डरपत मदन निहार।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी, पद-25

अपह्नुति अलंकार – अपह्नुति का शाब्दिक अर्थ होता है- 'छिपाना' अर्थात जब किसी पद में 'उपमेय' का निषेध करके 'उपमान' को स्थापित किया जाता है, तब वहाँ अपह्नुति अलंकार माना जाता है।

यह 'कृपालु' पर पुरुष नांहि सखि, परम पुरुष अवतारि।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी, पद-25

उपर्युक्त उदाहरण में उपमेय का निषेध कर अन्य की स्थापना की गई है।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का साहित्य आलंकारिक दृष्टि से सम्पन्न है। उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य कई अलंकार उनकी भाषा को सुशोभित एवं उनके काव्यगत भाव सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं।

भाषा में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग – किसी भी साहित्य की समृद्धि उसकी भाव एवं भाषा शैली पर निर्भर करती है। लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग भाषा को धनवान बनाता है साथ ही भावों को भी सुसज्जित करता है। संत कृपालु महाराज की साहित्यिक भाषा लोकोक्ति एवं मुहावरों से सुसम्पन्न है। उनकी काव्य भाषा में प्रयुक्त कुछ लोकोक्ति मुहावरों को निम्न रूप से देख सकते हैं।

1. मेरे नैनन तारे जाग रे। *–प्रे.र.म. : श्री कृ. बा.ली.मा., 21*
2. हरि हर दृग भये चार। *–प्रे.र.म. : श्री कृ. बा.ली.मा., पद 6*
3. ओ जोगी! मम केश श्वेत भये, कहि योहिं पढ़ाय। *–वही : पद सं.–7*
4. भोरिन गोरिन गोप किशोरिन, करत रहत दृग चार। *–प्रे.र.म. : श्री कृ. बा.ली.मा., पद 49*
5. हम जानति तुम चोर–चारे दोउ, मौसियाउतहिं भाय। *–प्रे.र.म.मा.मा. : 8*
6. बिनु इक बातहिं सात बनावत, कुटनिन यह व्यापार। *–प्रे.र.म.मा.मा. : 10*
7. जावो जी, न जल बिच आग लगावो। *–प्रे.र.म.मा.मा.–21*
8. चारू चाँदनी चार दिना की, पुनि होइहिं अंधियार। *–प्रे.र.म.सि.मा.–19*
9. तब पछिताने का पैहौ जब, खग चुगि जैहैं खेत रे। *–प्रे.र.म.सि.मा.–29*
10. तन यौवन धन दिन चार रे। *–प्रे.र.म.सि.मा.–53*

भाषा में संगीतात्मकता – संत कृपालु महाराज के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति संगीत तत्त्व है। उनके द्वारा प्रणीत समस्त काव्य रचनाएँ संगीत तत्त्व से आबद्ध हैं। वे स्वयं, स्वरचित रचनाओं को संगीत के कलेवर में निबद्ध करते थे। उनके द्वारा रचित छन्दों को नियमित रूप से साधक जन गाया करते हैं। उनका संगीतबद्ध काव्य–अत्यंत कर्ण प्रिय रहा है। संत कृपालु महाराज को संगीत की गहरी समझ थी। संगीत की विभिन्न राग रागनियों जैसे–यमन, बिलावल, खमाज, भैरव पूर्वी, मारता, काफी, आसावरी,

भैरवी, तोड़ी आदि का व्यापक ज्ञान था। सरगम की स्वर लिपि पर आधारित उनके पदों के कुछ उदाहरण निम्न अनुसार देख सकते हैं। 'युगल माधुरी' ग्रंथ का निम्न छन्द प्रस्तुत है–

ध नि	म म ध ध	नि नि रे रे	ग ग ग ग	ग ग ग ग
ज य	नँ द नँ S	द न सु ख	धा S म ह	रे S गो S
3	x	2	0	3

रे रे नि़ नि़	रे रे ग रे	नि़ नि़ नि नि	ध ध ध ध
पी S ज न	ब ल्ल भ	श्या S म ह	रे S S S
x	2	0	3

जय नंद नन्दन सुख धाम हरे,
गोपी जन वल्लभ श्याम हरे।
जय नंद यशोमति बाम हरे,
चेरे 'कृपालु' बिनु दाम हरे। *युगल माधुरी : पद–6*

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' ग्रंथ के निम्न छन्द की सरगम स्वर लिपि से उनके काव्य गत संगीत तत्त्व को समझ सकते हैं।

प्राण प्रियतम, प्राणधन मम, प्राण वल्लभ पाहि माम्।
पूतना कब शरण आई, दिय 'कृपालु' जु दिव्य धाम।

ब्रज रस माधुरी : 01, पद–62

ध नि़ रे	रे रे रे रे	नि रे रे नि	नि़ नि़ नि नि
S प्रा S ण	प्रि य त म	S प्रा S ण	ध न म म
x	2	0	3
ध नि नि रे	रे रे रे रे रे नि़	नि़ रे नि नि	नि नि नि नि
S प्रा S ण	व S ल्ल भS	S पा Sहि	पा S S म्
x	2	0	3

7.1.2 संत कृपालु महाराज के साहित्य में काव्य गुण –

जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में शूरवीरता, सच्चरित्रता, करुणा, परोपकार आदि मानवीय गुण होते हैं, ठीक उसी प्रकार काव्य में भी प्रसाद, ओज, माधुर्य गुण होते हैं। अतएव जैसे चारित्रिक गुणों के कारण मनुष्य की शोभा बढ़ती है वैसे ही काव्य में भी इन गुणों का संचार होने से उसके आत्म तत्त्व या रस में दिव्य चमक सी आ जाती है। संस्कृत हिंदी काव्यशास्त्र में आचार्य वामन ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में काव्य गुणों को काव्य का शोभा कारक धर्म कहा है–

काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।।

वामन के अनुसार 'गुण' काव्य के नित्य धर्म हैं। इनकी अनुपस्थिति में काव्य का अस्तित्व असंभव है। भरतमुनि, भामह, दण्डी, वामन आदि आचार्यों ने 10 गुणों को स्वीकार किया है किंतु मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में मुख्य रूप से तीन गुणों को स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ ने भी 'साहित्य दर्पण' में निम्न तीन गुणों को ही काव्य के मुख्य गुणों में गिना है। संत कृपालु महाराज के काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य गुणों में से प्रसाद एवं माधुर्य गुण सहज सुलभ है। संत कृपालु महाराज का समस्त काव्य प्रसाद एवं माधुर्य गुण से परिपूर्ण है।

(क) माधुर्य गुण – हृदय को आनन्द उल्लास से द्रवित करने वाली कोमल कांत पदावली से युक्त रचना माधुर्य गुण सम्पन्न होती है। अर्थात ऐसी काव्य रचना जिसको पढ़कर चित्त में शृंगार, करुणा या शांति के भाव उत्पन्न होते हैं, वह माधुर्य गुण युक्त रचना मानी जाती है।

संत कृपालु महाराज की समस्त काव्य रचनाओं में माधुर्य गुण प्रचुर रूप में है। जैसे– 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद माधुर्य काव्य गुण से परिपूर्ण है–

गई मैं, गिरिधर पर बलिहार।
कालि आलि वनमालिहिं देख्यों, मंजु निकुंज मझार।
लखि त्रिभुवन संपति भइ खारी, खारी मुक्तिहुँ चार।

लोक वेद के विधि निषेध सब, दिये भार महँ डार।
ललित त्रिभंग अंग प्रत्यंगनि, कोटि ब्रह्म सुख वार।
मूकास्वादनवत् 'कृपालु' बस, रसिकहिं जाननिहार।

प्रेम रस मदिरा : मिलन माधुरी, पद–18

(ख) प्रसाद गुण – ऐसी काव्य रचना जिसको पढ़ते ही अर्थ ग्रहण हो जाता है, वह प्रसाद गुण से युक्त मानी जाती है। अर्थात जब बिना किसी विशेष प्रयास के काव्य का अर्थ स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है, उसे प्रसाद गुण युक्त काव्य कहते हैं। संत कृपालु महाराज की काव्य रचनाएँ प्रसाद गुण से परिपूर्ण हैं। प्रसाद गुण से युक्त एक उदाहरण निम्न रूप से प्रस्तुत है–

कृपा करु बरसाने वारी, तेरी कृपा का भरोसा भारी।
तेरा मन है कृपा का प्यारी, तेरा तन है कृपा का प्यारी।
तेरी कृपा तो कृपा है प्यारी, तेरा कोप भी कृपा है प्यारी।
तेरी कृपा चह बनवारी, तेरी कृपा की है बलिहारी।

ब्रज रस माधुरी : 03, पद–04

(ग) ओज गुण – ऐसी काव्य रचना जिसको पढ़ने से चित्त में जोश, वीरता, उल्लास आदि की भावना उत्पन्न हो जाती है, वह ओज गुण युक्त काव्य रचना मानी जाती है। वीर, रौद्र, भयानक रस व्यंजना में ओज गुण की व्याप्ति होती है।

संत कृपालु महाराज की काव्य रचनाओं में मुख्य रूप से प्रसाद एवं माधुर्य गुण की ही व्याप्ति है किंतु यत्र–तत्र हमें अपवाद स्वरूप ओज गुण भी मिलता है जैसे निम्न पद जिसमें कृष्ण को सीता के अपहरण की बात सुनकर राम का आवेश आ जाता है और उनमें ओज गुण उद्दीप्त होता सा प्रतीत होता है।

वन महँ रावण हर्‌यो जानकिहिं, लै गयो गगन उड़ाय।
यह सुनि कहत चल्यो 'हा सीते'! हा वैदेही 'हाय'।
यह लखि सभय माय कर पकर्‌यो, मुरछित भये बलभाय।
माय 'कृपालु' लगाय कंठ कह, करु भगवान सहाय।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी

7.1.3 संत कृपालु महाराज के काव्य में कल्पना सौन्दर्य

रूप सृष्टि करने वाली शक्ति कल्पना है। निराकार भावों व वस्तुओं को आकार देना, तथ्य को चित्रमय बनाना, चरित्र या पात्र के व्यक्तित्व को साक्षात् करना, घटना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना, भाव को जगाने वाले चित्र अंकित करना कल्पना के द्वारा ही संभव होता है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में कल्पना सौन्दर्य विशेष रूप से निखर कर उभरा है। साथ ही राधा–कृष्ण के सांगोपांग निरूपण में भी साहित्यकार की अद्‌भुत कल्पना प्रस्फुटित हुई है। उदाहरण के तौर पर निम्न पद देख सकते हैं जिसमें कृष्ण के नेत्रों के अद्‌भुत सौन्दर्य निरूपण में कल्पना खुलकर अपने पंख पसार रही है।

नीलमणि नैनन पर बलिहार।
इन नैनन रस जानति नीके, श्री वृषभानु दुलार।
तीन रंग श्वेतिमा अरुणिमा, अरु कालिमा निहार।
डूब न जाय रसिक नैनन रस, याते पलक विहार।
पलकनि अपर अटपट नटखट, भृकुटि काम–धनु–धार।
जब तिरछे नैनन बानन सों, मारत नन्दकुमार।
तब 'कृपालु' शिव बने शिवानी, कह 'हा प्राणाधार'।

श्री कृष्ण द्वादशी : 07

7.1.4 संत कृपालु महाराज के साहित्य में व्यंग्यात्मकता

संत कृपालु महाराज के साहित्य में व्यंग्यात्मकता की प्रवृत्ति भी सन्निहित है। उन्होंने अपने पद्य साहित्य, गद्य साहित्य तथा प्रवचन साहित्य में कई धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक विद्रुपताओं पर व्यंग्य किए हैं। जैसे वर्तमान समय में गुरु शिष्य परम्परा में कान फूंकने की प्रक्रिया पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है–

तजो रे मन! उन संतन को संग।
जिनको लक्ष्य लोकरंजन को, रँगि रंग रंग बिरंग।
बात बघारत ब्रज रसिकन की, पिये विषय रस भंग।
शिष्यन कान फूँकि बनि स्वामी, ठगत ठगिन के ढंग।

हरिजन बनि हरिजनहुँ न मानत, चढ़ि अभिमान तुरंग।
वरु 'कृपालु' वनचर बनि रहियो, लखु जनि दंभिन दंभ।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–51

इसी प्रकार संसार में व्याप्त अज्ञान पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है कि मरते वक्त श्मशान जाते समय सभी राम नाम सत्य है का नारा लगाते हैं किन्तु लौटते समय कोई नहीं बोलता–

राम नाम सब सत्य कह, जब लौं जात मसान।
लौटत ही पुनि जगत कहँ, सत्य मान धनि ज्ञान।(20) *भक्ति शतक*

इसी प्रकार संसार की स्वार्थपरक प्रवृत्ति एवं आडम्बरपरकता पर भी सटीक व्यंग्य किये हैं। जैसे

अनोखो लख्यौं जगत व्यवहार।
जब लौं स्वारथ सिद्ध होत रह, तब लौं नात हजार।
जब ही स्वारथ–हानि निज देखत, अरि–सम ताहि निहार।
निशि–दिन यह कौतुक जग देखत, तदपि न करत विचार।
संतन सभा यदपि सिर झूमत, मन रह विषय मझार।
कहत 'कृपालु' भागवत गीता, उर अभिमान अपार।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी, पद–03

इस प्रकार उनके काव्य में व्यंग्यात्मकता का गुण सुन्दर रूप से सन्निहित है।

7.1.5 रस निरूपण

काव्य शास्त्रानुसार साहित्य को पढ़ने सुनने अथवा देखने से जिस अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है उसे ही रस कहते हैं। जैसा कि संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने रस को परिभाषित करते हुए कहा है– **"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।"** अर्थात जिसका आस्वादन किया जाता है या स्वाद लिया जाता है, उसे ही रस कहते हैं।

इसी संदर्भ में रस शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में रस का सूत्र प्रस्तुत किया है। **"विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पतिः"** *(नाट्यशास्त्र : षष्ठ अध्याय)* अर्थात विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी (संचारी) भाव के संयोग से 'रस'

की निष्पत्ति होती है। काव्यशास्त्र आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता दी है। रसोद्रेक की क्षमता से परिपूर्ण काव्य ही श्रेष्ठ माना गया है। काव्यशास्त्र आचार्यों ने ग्यारह रसों को मान्यता प्रदान की है।

इसी संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में प्रवाहित रस निरूपण को निम्न रूप में देख सकते हैं।

शृंगार रस – शृंगार रस को भारतीय काव्यशास्त्र परम्परा में रस राज कहा गया है। शृंगार रस के दोनों रूपों का सुन्दर उद्रेक संत कृपालु महाराज के साहित्य में हुआ है। उदाहरण स्वरूप संत कृपालु महाराज द्वारा रचित 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद देख सकते हैं जिसमें शृंगार रस का संयोग पक्ष निरूपित है।

आजु सखि! ह्वै गये नैना चार।
हौं दधि बेचन जाति वृंदावन, देख्यों नंदकुमार।
सो छवि लखत बनत, नहिं वरनत, रूप माधुरी–सार।
तन–मन–प्रान निछावरि करि मैं, लियो मोल रिझवार।
पुनि–पुनि कह्यो 'हमारी प्यारी' सुनि–सुनि गइ बलिहार।
कत 'कृपालु' बलि जात नन्द को, कै गयो बंटाढार।

प्रेम रस मदिरा : मिलन माधुरी, पद–03

प्रस्तुत पद में गोपी आश्रय है। कृष्ण का गोपी को प्यारी कहना उद्दीपन है। कृष्ण को देखना, तन–मन–प्राण न्यौछावर करने की भावना की जागृति अनुभाव हैं। स्तम्भ और रोमांच सात्विक अनुभाव हैं। हर्ष, व्रीड़ा, उत्सुकता, उन्माद, मद, मोह, चपलता, आवेग आदि संचारी भाव हैं और रति आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत पद में संयोग शृंगार रस का उद्रेक है।

वियोग शृंगार निरूपण – संत कृपालु महाराज कृत 'प्रेम रस मदिरा' के 'विरह माधुरी' का निम्न पद प्रस्तुत है। जिसमें कृष्ण वियोग में विरहिणी गोपी के प्रेम भाव का निरूपण है।

अँखियाँ झर–झर लागीं बरसन।
पल छिन कैसेहुँ कल न पिया बिनु,
जाय कहो कोउ श्याम–सुन्दर सन।

उठति करेजे हूक छिनहिं छिन,
पिय हिय तरस न, हम लागीं तरसन।
परसों आवन कहि गये अबहूँ,
आये न, बीत गये सखि बरसन।
प्रान पयान करत नहिं, नैनन,
यह आशा 'पिय देइहैं दरसन'।
अब 'कृपालु' भरि अंक मिलो, या,
निज-कर देहु चलाय सुदर्शन।।

प्रेम रस मदिरा : विरह माधुरी-01

प्रस्तुत उदाहरण में गोपी आश्रय है। कृष्ण आलम्बन हैं। कृष्ण का छोड़कर चले जाना उद्दीपन है। कृष्ण के वियोग में रोना, अश्रुपात एवं कलेजे से हूक उठना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता विषाद, उग्रता, उत्सुकता, उन्माद, मोह, स्मृति आदि संचारी भाव हैं और रति आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है।

शांत रस – शांत रस का स्थायी भाव शम, निर्वेद माना गया है अर्थात संसार से वैराग्य का भाव एवं तत्त्व ज्ञान की स्थिति। संत कृपालु महाराज के साहित्य में शांत रस का उद्रेक भी है यथा–'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के 'सिद्धांत माधुरी' अध्याय का निम्न पद देख सकते हैं–

ओ मन! मूरख अब चेत रे।
तोहिं लखि परत न, रहत विषयरत, करत न हरि सों हेत रे।
नित्य बनावत महल कल्पनहिं, जासु नींव लखु रेत रे।
लै जैहैं विषयन हमहूँ कहँ, यमपुर तोहिं समेत रे।
तब पछिताने का पैहों जब, खग चुगि जैहैं खेत रे।
याते करहु 'कृपालु' भजन उन, जो हैं कृपा निकेत रे।।

प्रेम रस मदिरा : सिद्धान्त माधुरी-29

प्रस्तुत उदाहरण में वक्ता स्वयं आश्रय है। सांसारिक विषय रस आलम्बन है, सांसारिक इच्छाओं की अतृप्ति उद्दीपन है, पछताना, स्वयं को समझाना, भजन करना आदि अनुभाव हैं। शम, विबोध, वितर्क, विषाद, मति आदि संचारी भाव हैं एवं निर्वेद (शम) आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में शांत रस का सुन्दर उद्रेक परिलक्षित है।

भक्ति रस – सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने 'भक्ति' को स्वतंत्र रस के रूप में प्रतिष्ठित किया था। भक्ति रस का स्थायी भाव 'ईश्वरीय प्रेम' है। भक्त द्वारा अपने शरण्य के प्रति भक्ति से पूर्ण भाव जब अभिव्यक्त होते हैं तो भक्ति रस का उद्रेक होता है। संत कृपालु महाराज के पद्य साहित्य में भक्ति रस की अजस्त्र धारा प्रवाहित है। 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के 'दैन्य माधुरी' अध्याय का निम्न पद भक्ति रस के उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं–

दयामय! अब तो दया करो।

बानि अकारन–करुन जानि निज, अवगुन चित न धरो।
हम अमान मन–बुधि–अतीत पुनि, तुम अरु जन तुम्हरो।
याते संतन कह्यो न मानत, उर अभिमान खरो।
सुन्यो कान अभिमान अशन तव, पुनि काहे जू डरो।
देहु 'कृपालु' चरण कमल रति, जात त्रिताप जरो।

प्रेम रस मदिरा : दैन्य माधुरी, पद–43

प्रस्तुत पद में ईश्वर भक्त अर्थात कवि स्वयं आश्रय है। ईश्वर आलम्बन है। ईश्वर की दयालुता, अकारण करुणा का गुण उद्दीपन है। भक्त की दीनता, स्वयं के अवगुणों को कहना आदि अनुभाव हैं। दैन्य, चिन्ता, गर्व, धृति, निर्वेद विबोध आदि संचारी भाव हैं एवं ईश्वरीय प्रेम आश्रम के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत पद में भक्ति रस की निष्पत्ति परिलक्षित है।

वात्सल्य रस – चौदहवीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने दसवें रस के रूप में वात्सल्य रस को मान्यता प्रदान की। 'ममत्व भाव' इस रस का स्थायी भाव है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में हमें यत्र–तत्र वात्सल्य रस का भी निरूपण मिलता है।

भोर भई जागो सुन्दरश्याम।
झुकि झुकि झूमि झूमि मुख चूमति, मातु यशोमति
लै लै नाम पुकार द्वार पर, मधु मंगल श्रीदाम
बछरन पियत नाहिं थन सुरभिन, परखत तोहिं सुखधाम।
ऊँ, ऊँ, करत तानि पीताम्बर, सो छवि अति अभिराम।

सुनहु कान्ह करि कान जात हम, गो चरण कह राम।

सुनि 'कृपालु' बल-वचन उठे हरि, अरबराइ धरि पाम।

प्रेम रस मदिरा, श्री कृष्ण बाल लीला माधुरी-39

प्रस्तुत पद में माँ यशोदा आश्रय है। बाल कृष्ण आलम्बन हैं, कृष्ण का सोना, ऊँ ऊँ करके पुनः सोना उद्दीपन हैं। बाल कृष्ण को झुक कर चूमना, प्यार करना, प्यार से उठाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष संचारी भाव है तथा संतान प्रेम स्थायी भाव है आश्रय के हृदय का। इस प्रकार प्रस्तुत पद में वात्सल्य रस की तरंगे हिलोरे ले रही हैं।

अद्भुत रस - संत कृपालु महाराज के साहित्य में प्रवाहित अद्भुत रस को 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ के निम्न पद में देख सकते हैं।

अचंभो वीर! अहीर निहार।

बह अनुकूल धार सब पै हौं बहि गइ उल्टी धार।

जाति रही पनघट सिर धरि घट, घूंघट पट मुख डार।

मंजुल कुंज-लतान छेड़ दर, तान मुरलि रिझवार।

मुरलि तान सुनि कान, बही हौं, गइ ढिंग नंदकुमार।

मुरलिहिं धार 'कृपालु' शिवहुँ बहि आये रास मझार।

प्रेम रस मदिरा : श्री कृष्ण माधुरी, पद-03

प्रस्तुत उदाहरण में गोपी आश्रय है। कृष्ण आलम्बन हैं। कृष्ण की मुरली की तान उद्दीपन है। पनघट के स्थान पर कृष्ण की ओर जाना अनुभाव है। मति, विबोध रोमांच, आवेग आदि संचारी भाव हैं एवं विस्मय आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में अद्भुत रस का सुन्दर परिपाक है।

वीर रस - हिंदी काव्य शास्त्र में वीर रस को प्रधान रसों में गिना गया है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है। वीर रस के चार रूप काव्य शास्त्र में गिनाये गये हैं। युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर, दानवीर। संत कृपालु महाराज के साहित्य में कृष्ण के ध ार्मवीर, दानवीर एवं दयावीर रूपों का निरूपण है। कृष्ण के दयावीर स्वरूप में दयावीर रस के उद्रेक का निम्न उदाहरण प्रस्तुत है-

(क) दयावीर – तुझसा दयालु नहिं प्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे।

पूतना गरल पिलाया तोहिं प्यारे,
वाउ दीनी गति धनि प्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे।
अघासुर, बकासुर असुरन प्यारे,
मारे पुनि तारे सब प्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे।
तुम 'कृपालु' प्रेमिन वश प्यारे,
अब हौं जान्यो प्यारे, प्यारे प्यारे प्यारे।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद–10

प्रस्तुत उदाहरण में कृष्ण आश्रय हैं। पूतना, अघासुर, बकासुर आलम्बन हैं। पूतना का ज़हर पिलाना, अघासुर बकासुर का अपराध उद्‌दीपन हैं। पूतना का उद्धार करना, अघासुर बकासुर को तारना आदि अनुभाव हैं। चिंता, हर्ष, चपलता आदि संचारी भाव हैं और उत्साह आश्रम के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में वीर रस (दयावीर) ध्वनित है।

(ख) दानवीर – समस्त संसार में श्री कृष्ण ही एक मात्र परम दानी है।

सुनु दाता नन्द कुमार, हौं पतितन को सरदार।
तू पतितन सुनत पुकार, चह भीख प्रेम सरकार।
रिरियात परो तव द्वार, तू प्रेम रूप साकार।
टुक हमरिहुँ निहार, चह भीख प्रेम साकार।

युगल शतक : श्री कृष्ण माधुरी, पद–21

प्रस्तुत उदाहरण में भक्त आश्रय है। श्री कृष्ण आलम्बन हैं। कृष्ण की दानवीर महिमा, भक्त का अति पतित होना आदि उद्‌दीपन हैं। कृष्ण से प्रेम की भीख मांगना अनुभाव है। हर्ष, विबोध, उत्सुकता, दैन्य आदि संचारी भाव हैं एवं उत्साह आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में वीर रस (दानवीर) का उद्रेक है।

हास्य रस – हिंदी काव्य शास्त्र में हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' माना गया है। संत कृपालु महाराज के पद्य साहित्य में हास्य रस के उद्रेक का एक उदाहरण निम्न रूप से देख सकते हैं–

देखो देखो री, ठिठोरी होरी की।

परम पुरुष को नारि बनायो, छवि जनु श्यामा गोरी की।
अटपट पट भूषन पहिरायो, चुनरी पीत पिछोरी की।
सेंदुर, काजर, मेहँदी, मिहावरि, माथे बिंदी कोरी की।
बारम्बार उचार सखिन सब, जय-जयकार किशोरी की।
करत विविध परिहास कहति, कित 'बानि', गई बरजोरी की?
कोउ कह याय नचावन लै चलु, कुंजनि गहवर खोरी की।
कह 'कृपालु' बलि-बलि होरी की बलि बलि बलि छोरी की।

प्रेम रस मदिरा : होरी माधुरी, पद-07

प्रस्तुत पद में गोपियाँ आश्रय हैं। श्री कृष्ण आलम्बन हैं। कृष्ण को स्त्री का रूप देना, स्त्रियों के वस्त्र पहनाना स्त्रियों का श्रृंगार करना, उन्हें स्त्री बनाकर नचाना आदि उद्दीपन हैं। हँसना, जय-जयकार करना अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता आदि संचारी भाव हैं एवं हास आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत पद में हास्य रस की निष्पत्ति है।

रौद्र रस – रौद्र रस का स्थायी भाव-क्रोध है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में रौद्र रस के उद्रेक का एक उदाहरण निम्न रूप में देख सकते हैं-

सुनि सुनि उरहन खीझी माय।
अति रिस भरी यशोमति माय।
लै साँटी कर परखत माय।
कब आवें नटखट बलभाय।
इतने में नटखट झट आय।
भाज्यो लखि कर साँटी माय।
पाछे पाछे भाजीं माय।
पुनि पुनि लख पाछे बलभाय।
आजु न छोड़ूँ तोहिं कह माय।
दोउ भाजत तनु सुधि बिसराय।
लथपथ भईं पसीना माय।
अब औरहुँ रिस भइ तनु माय।

ब्रजरस माधुरी : 02, पद-89

प्रस्तुत उदाहरण में यशोदा आश्रय है। चंचल कृष्ण आलम्बन हैं। कृष्ण का नटखटपना, गोपियों के उलाहने आदि उद्दीपन हैं। माता का खीजना, हाथ में सांटी लेकर मारने दौड़ना, स्वेदरत होना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, श्रम, चिंता, आवेग, त्रास, उग्रता आदि संचारी भाव हैं एवं क्रोध आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में रौद्र रस प्रवाहित है।

भयानक रस – भयानक रस का स्थायी भाव 'भय' माना गया है। विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से भयानक रस की निष्पत्ति होती है। भय उत्पन्न करने वाली वस्तु या व्यक्ति को देखने सुनने से भय की सृष्टि होती है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में यत्र–तत्र भयानक रस भी उद्रित हुआ है। यथा –

मोहिं मारे जनि मैं न माटी खायो मैया।
जेहि डर डर डर डर डर मैया।
तनु काँपे थर थर लखि साँटी मैया।
तनु निकसे पसीना लखि साँटी मैया।
दृग अँसुवन जल लखि साँटी मैया।

ब्रज रस माधुरी :02, पद–87

प्रस्तुत उदाहरण में बाल कृष्ण आश्रय हैं। क्रोधित यशोदा माता आलम्बन हैं। माता का क्रोधित होना, हाथ में सांटी लेकर यशोदा का मारने दौड़ना आदि उद्दीपन हैं। सात्विक अनुभाव, मारने से मना करना, सफाई देना आदि अनुभाव हैं। त्रास, व्याधि, चिंता, शंका आदि संचारी भाव हैं एवं भय आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इसप्रकार प्रस्तुत उदाहरण में भयानक रस की उत्पत्ति है।

करुण रस – सहृदय के हृदय में स्थित 'शोक' नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव संचारी भाव के साथ संयोग हो जाता है तो वह करुण रस का रूप ले लेता है। इस रस की उत्पत्ति बंधु विनाश, अमंगल घटना एवं अनिष्ट से होती है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में करुण रस का उदाहरण निम्न रूप से प्रस्तुत है–

अरी मैं, मरी हरी बिनु हाय।
विरह न रहन देत अब प्रानन, कोउ बचावहु धाय।

बिनुहिं अनल हौं जरी जात हौं, रहे नैन झरि लाय।
कहा करूँ? कित जाउँ? एक छिन, उन बिनु रह्यो न जाय।
तुम प्राणन-ईश्वर प्राणेश्वर!, पुनि कत बेर लगाय।
अब 'कृपालु' पिय बोगि मिलहु न तु हौं ही मिलि हौं आय।

प्रेम रस मदिरा : विरह माधुरी, पद-8

प्रस्तुत पद में गोपी आश्रय है। वियोगी कृष्ण आलम्बन हैं। कृष्ण का विरह, हरि की स्मृति आदि उद्दीपन हैं। अश्रुपात, प्रलय, विरह में जलन, प्राणों का प्रयाण आदि अनुभाव हैं। चिंता, उद्वेग, मरण, व्याधि, विषाद, स्मृति आदि संचारी भाव हैं एवं शोक आश्रय के हृदय का स्थायी भाव है। इस प्रकार प्रस्तुत पद में करुण रस (स्वनिष्ठ) का उद्रेक है।

7.1.6 निष्कर्ष

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों दृष्टियों से परिपूर्ण परिलक्षित होता है। काव्यशास्त्री आचार्यों ने जिन काव्य तत्वों को श्रेष्ठ काव्य का आधार माना है वे सभी तत्व जैसे-भाषा, शब्द, अर्थ, रस, अलंकार, गुण आदि संत कृपालु महाराज के साहित्य में सर्वथा सुलभ हैं। काव्यात्मक कला पक्ष की दृष्टि से उनका साहित्य रसमय एवं सारगर्भित परिलक्षित होता है।

❖❖❖

अष्टम् अध्याय

शोध सारांश एवं निहितार्थ

अष्टम् अध्याय
सारांश एवं निहितार्थ

8.1.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध कार्य की भूमिका में संस्कृत, हिंदी एवं पाश्चात्य आचार्यों के मतानुसार काव्य के लक्षणों एवं स्वरूप का अध्ययन किया गया। शोध के द्वितीय अध्याय में काव्यशास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभमि की विवेचना के अन्तर्गत काव्यशास्त्र से अभिप्राय, काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा, काव्य शास्त्र के प्रतिपादन युग एवं काव्य शास्त्र की उपयोगिता एवं आवश्यकता का अध्ययन किया गया। शोध के तृतीय अध्याय में काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के अन्तर्गत संस्कृत, हिंदी एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों के मतानुसार काव्य प्रयोजन की अवधारणा का अध्ययन किया गया। शोध के चतुर्थ अध्याय में संत कृपालु महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन किया गया। शोध के पंचम् अध्याय में संत कृपालु महाराज के साहित्य की प्रयोजनशीलता के संदर्भ में समन्वयवादी विचारधारा, विशुद्ध भक्ति तत्व, वैदिक दार्शनिक तत्व, लीला माधुर्य एवं राधा तत्व की महिमा के निरूपण का अध्ययन किया गया। शोध के षष्ठम् अध्याय में संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित सांस्कृतिक चेतना के संदर्भ में भारतीय दर्शन कला एवं प्रकृति चित्रण संस्कृति का अध्ययन किया गया। शोध के सप्तम् अध्याय में संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित शैल्पिक वैशिष्ट्य के अन्तर्गत भाषा सौष्ठव, अलंकार सौष्ठव, संगीत तत्व, कल्पना तत्व, काव्य गुण, शब्द शक्ति एवं व्यंग्यात्मकता एवं रस निरूपण का अध्ययन किया गया।

प्रस्तुत अध्याय में उपसंहार स्वरूप प्रस्तुत शोध कार्य के सारांश एवं निहितार्थ को निम्नानुसार देख सकते हैं–

8.1.1 संत कृपालु महाराज के साहित्य में समन्वयवादी विचारधारा

अज्ञान निवृत्ति, ज्ञान प्राप्ति, समाज की एकता, लोक मंगल के प्रयोजन स्वरूप संत कृपालु महाराज द्वारा प्रणीत उनका समस्त साहित्य समन्वय की विराट

चेष्टा का प्रतिफल है। भक्तिकालीन कवि गोस्वामी तुलसीदास की समन्वयवादी विचारधारा युक्त साहित्य रचना की परम्परागत श्रृंखला स्वरूप संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का प्रमुख प्रयोजन विरोधाभासी प्रतीत होते तत्त्वों में एकत्व को सिद्ध करते हुए समन्वय करना, जिससे आज के भौतिकवादी एवं भ्रमित जनमानस को सही मार्ग दर्शन प्राप्त हो सके।

अतः काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में समन्वयवादी प्रवृत्ति अन्तर्निहित है।

8.1.2 संत कृपालु महाराज के साहित्य में विशुद्ध भक्ति तत्त्व

ज्ञान विस्तार, उपदेश प्रवृत्ति, लोकमंगल व आनन्द प्राप्ति के काव्य प्रयोजन पर आधारित हिन्दी साहित्य का भक्ति काल समस्त हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल माना गया है। संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य इसी स्वर्णिम साहित्य की परम्परा में नवीन श्रृंखला बनकर उभरा है। संत कृपालु महाराज के साहित्य लेखन का प्रधान प्रयोजन भक्ति तत्त्व का निरूपण करना है। लोक मंगल एवं आनन्द प्राप्ति के प्रयोजन स्वरूप निरूपित उनका साहित्य, भक्ति साहित्य की परम्परा का अनुगमक होते हुए भी मौलिक है। संत कृपालु महाराज ने वैदिक तत्त्व आधारित भक्ति को निरूपित किया है। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि भक्ति में रूपध्यान तत्त्व को प्राण बताते हुए निष्कामता, अनन्यता एवं निरन्तरता को भगवत्प्राप्ति की विशेष शर्तें बताना है–

हरि गुरु भजु नित गोविंद राधे।
भाव निष्काम अनन्य बना दे। *राधागोविंद गीत*

अतः काव्य प्रयोजन के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में विशुद्ध भक्ति तत्त्व अन्तर्निहित है।

8.1.3 संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा–कृष्ण लीला माधुर्य

स्वयं कवि एवं रसिक समुदाय को आनन्द प्राप्ति के प्रयोजन से निरूपित संत कृपालु महाराज का पद्य साहित्य रस का अगाध समुद्र है। राधा–कृष्ण की रसमय लीलाओं पर आधारित प्रत्येक छन्द रसिक समुदाय को सहज ही आनन्द सिंधु में

निमग्न कर देता है। उनके साहित्य में राधा–कृष्ण की बाल लीला, किशोर लीला, गोपी प्रेम लीला, मान लीला, श्रृंगार रस लीला, होली लीला एवं राधा कृष्ण का सांगोपांग निरूपण सुन्दर यप में निरूपित है।

अतः काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा–कृष्ण लीला माधुर्य अन्तर्निहित है।

8.1.4 संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा तत्त्व

'शिवेतर क्षतये' अर्थात् अनिष्ट की निवृत्ति एवं लोकमंगल के प्रयोजन से साहित्य प्रणयन की परम्परा स्वरूप संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा तत्त्व की महिमा का निरूपण किया गया है। वेदों के प्रमाण स्वरूप संत कृपालु महाराज ने राधा को समस्त जगत की अधिष्ठात्री देवी सिद्ध किया है एवं उनसे कृपा की कामना करते हुए समस्त जीवों के कल्याण के प्रयोजन से राधा तत्त्व की महिमा को उजागर किया है।

अतः काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारण के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में राधा तत्त्व की महिमा अन्तर्निहित है।

8.1.5 संत कृपालु महाराज के साहित्य में दार्शनिक तत्त्व

चतुर्वर्ग प्राप्ति के काव्य प्रयोजन पर आधारित, धर्म व मोक्ष प्राप्ति एवं ज्ञान अभिवृद्धि के उद्देश्य पर आधारित संत कृपालु महाराज के साहित्य में भारतीय वैदिक दर्शन को सरल एवं रसमय भाषा में निरूपित किया गया है। उन्होंने मानव के परम चरम दिव्य आनन्द प्राप्ति के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए विभिन्न वैदिक धर्म मार्गों जैसे ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति आदि में से भक्ति मार्ग को सबसे सरलतम मार्ग सिद्ध किया है।

अतः काव्य प्रयोजन की साहित्यिक अवधारणा के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में दार्शनिक तत्त्व अन्तर्निहित है।

8.1.6 संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार लोक मंगल के प्रयोजन पर आधारित है। इसी संदर्भ में उनके द्वारा प्रणीत साहित्य में

अन्तर्निहित सांस्कृतिक चेतना में भारतीय धर्म, दर्शन, कला सौन्दर्य आदि सहज रूप से परिलक्षित है। उनके साहित्य में अन्तर्निहित सांस्कृतिक चेतना हिन्दू वैदिक दर्शन, भारतीय मुस्लिम दर्शन, भारतीय सिक्ख दर्शन, भारतीय आनन्दवाद दर्शन, आत्मा परमात्मा दर्शन, मानव दर्शन, भारतीय नारी दर्शन, भारतीय गुरु परम्परा, भारतीय रीति रिवाज, उत्सव, प्रकृति चित्रण, स्थापत्य कला, नृत्य कला, संगीत कला आदि के रूप में दृष्टिगोचर है।

अतः काव्य प्रयोजन की अवधारणा के संदर्भ में संत कृपालु महाराज के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना अन्तर्निहित है।

8.1.7 संत कृपालु महाराज के साहित्य में (अभिव्यक्ति कौशल) शिल्प सौन्दर्य

संत कृपालु महाराज का साहित्य भाव एवं शिल्प दोनों ही दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। उनकी काव्यगत भावों की अभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त भाषा काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार काव्यगुणों जैसे माधुर्य, प्रसाद आदि से परिपूर्ण है। उनके काव्य में सभी प्रकार के शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का सहज एवं सुन्दर प्रयोग है जो सहृदय के रसास्वादन में न केवल सहायक हैं अपितु सहृदय के चित्त को चमत्कृत भी करते हैं। उनकी काव्य भाषा में कल्पना सौन्दर्य, व्यंग्यात्मकता, चित्रात्मकता एवं शब्द शक्तियों का यथा प्रसंग सुन्दर प्रयोग है। संत कृपालु महाराज की काव्यगत रस योजना पूर्णतया काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार मनोहारिणी एवं सहृदय को रसासिक्त कर देने में पूर्ण रूप से सक्षम है। उनके काव्य में वीभत्स रस को छोड़कर सभी रसों का सुन्दर परिपाक है।

अतः काव्य प्रयोजन की अवधारणा के संदर्भ में संत कृपालु महाराज का साहित्य शैल्पिक सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त मनोहारी है। उनके साहित्य में अभिव्यक्ति कौशल सुन्दर रूप में अन्तर्निहित है।

❖❖❖

परिशिष्ट 01

संत कृपालु महाराज का सामाजिक अवदान

परिशिष्ट–01

संत कृपालु महाराज का सामाजिक अवदान

संत कृपालु महाराज साहित्यकार होने के साथ–साथ संत रूप भी हैं। संत स्वभाव अनुसार साहित्य लेखन के साथ–साथ सामाजिक जन कल्याण के कार्य उनके जीवन एवं स्वभाव के अभिन्न अंग रहे। समाज कल्याण एवं सेवा भाव संत का सहज स्वभाव होता है जैसा कि संत कवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में संत की सामाजिक कल्याण की प्रवृत्ति को अभिव्यक्त किया है–

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अँजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ।।
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु।।

बालकाण्ड : दोहा–3 (क,ख)

इसी प्रकार संत कृपालु महाराज साहित्य लेखन के साथ–साथ सामाजिक सेवा कार्यों में भी निरत रहे। उन्होंने जगद्‌गुरु कृपालु परिषत् ट्रस्ट की स्थापना की है जिसका उद्‌देश्य निरंतर जनकल्याण के कार्यों में निरत रहना है। इसी संदर्भ में उनके मुख्य सामाजिक अवदान को निम्न रूप में देख सकते हैं।

वृन्दावन में प्रेम मन्दिर का निर्माण – वृन्दावन धाम भारतीय आध्यात्मिक धर्म, साहित्य व संस्कृति का मुख्य केन्द्र रहा है। संत कृपालु महाराज स्वयं कृष्ण भक्ति पथगामी एवं कृष्ण भक्ति अनुदेशक रहे हैं। युवावस्था से ही उनका संकल्प रहा कि वृन्दावन में प्रेम स्वरूप राधा–कृष्ण का ऐसा मन्दिर बनवाया जाए जो सदियों तक मानव मात्र को प्रेम तत्त्व से जोड़े।

इसी संकल्प को साकार करते हुए वृन्दावन में 14 जनवरी 2001 में इस मन्दिर का शिलान्यास किया गया तथा फरवरी 2012 में इसका उद्‌घाटन किया गया। इसे बनाने में लगभग 1000 शिल्पकारों का सहयोग रहा। 54 एकड़

क्षेत्रफल में फैले इस मन्दिर निर्माण में 30,000 टन आयातित इटालियन करारा मार्बल का प्रयोग किया गया है। 'शिल्प रत्नाकर' के सिद्धान्तों पर आधारित नागरादि शैली में प्रेम मन्दिर का निर्माण विशुद्ध वैदिक रीति व समुचित वैदिक अनुष्ठानों के साथ सम्पन्न हुआ है। नागरादि शैली में निर्मित दो मंजिला प्रेम मन्दिर गोलोक और साकेत लोक, वृन्दावन और अयोध्या का सुनहरा संगम है। सनातन वैदिक धर्म के अनुसार, यद्यपि भगवान सर्वव्यापक है तथापि हम साधारण मायिक मनुष्यों को उनका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता किन्तु मन्दिरों एवं विग्रहों में श्री सच्चिदानंदघन प्रभु की उपस्थिति में हमारा विश्वास हो ही जाता है। इसी कारण जीवों के आध्यात्मिक कल्याणार्थ और वास्तविक सिद्धान्त के प्रचार हेतु रसिकाचार्यों ने ऐसे भव्य मन्दिरों की स्थापना की है। बस इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण जगत में प्रेम तत्त्व को प्रकाशित करने के लिए संत कृपालु महाराज ने दिव्योपहार श्री वृन्दावन धाम को समर्पित किया है। यह प्रेम मन्दिर उनका सबसे सुन्दर सामाजिक अवदान है। इसका नाम 'प्रेम मन्दिर' ही क्यों रखा इसका कारण भी उन्होंने स्पष्ट किया–

"अधिकांश मन्दिरों का नाम भगवान के विभिन्न स्वरूपों पर आधारित होता है, जैसे–श्री राधा कृष्ण मन्दिर, श्री राम मन्दिर, लक्ष्मी नारायण मन्दिर, हनुमान मन्दिर इत्यादि। किंतु मैंने इसका नाम 'प्रेम मन्दिर' इसलिए रखा है कि यद्यपि भगवान सबसे बड़े हैं लेकिन प्रेम ऐसा तत्त्व है जिसके अधीन भगवान हो जाते हैं इसलिए मुख्य द्वार पर मैंने यह दोहा लिखवा दिया–

प्रेमाधीन ब्रह्म श्याम वेद ने बताया।
याते याय नाम 'प्रेम मन्दिर' धराया।"

साधन साध्य : मार्च 2012, पृ.सं.–20

मनगढ़ में भक्ति मन्दिर का निर्माण – संत कृपालु महाराज ने अपने जन्म स्थान, उत्तर प्रदेश राज्य के छोटे से ग्राम मनगढ़ में 'भक्ति मन्दिर' का निर्माण कर इस छोटे से ग्राम को ऐतिहासिक आध्यात्मिक तीर्थ बना दिया है। अद्भुत सौन्दर्य एवं दिव्य भक्ति रस का संचार करने वाला यह सुन्दर मन्दिर समाज में भक्ति तत्त्व को प्रतिष्ठित करता है। यह मन्दिर साधकों को साक्षात् भक्ति तत्त्व के दर्शन एवं ज्ञान से साक्षात्कार

करवाता है। गुलाबी सफेद पत्थर से निर्मित भक्ति मन्दिर में काले ग्रेनाइट खम्बे बनाए गए हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर मनगढ़ ग्राम में यह एक ऐसा स्मारक है जैसा सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी नहीं है। मंदिर की दीवारों पर बहुमूल्यवान पत्थर से 'भक्ति शतक' ग्रंथ के सौ दोहे लिखे गए हैं। मन्दिर का मुख्य आकर्षण श्री राधा–कृष्ण एवं राम–सीता का मनोहारी स्वरूप है। साथ में अष्ट महासखियों की छवि अनुपम है। समस्त भारत से आने वाले दर्शनार्थी मन्दिर की भव्यता, शिल्पकला तथा पच्चीकारी के काम को देखकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

संत कृपालु महाराज के निर्देशन में निर्मित यह 'भक्ति मन्दिर' समाज को विशुद्ध भक्ति तत्त्व की ओर उन्मुख करता है। बरबस ही मानव मन में भक्ति के बीज का अंकुरण होने लगता है। इस मन्दिर का निर्माण भी उनका विशेष सामाजिक अवदान है।

निःशुल्क चिकित्सालयों की स्थापना एवं व्यवस्था –

संत कृपालु महाराज मानव समाज के न केवल आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक रहे अपितु मानव के दैहिक, भौतिक दुःखों को भी वे आत्मा से महसूस करते थे। इसी करुणा एवं कृपा के स्वभाव वश उन्होंने अपने जन्म स्थान मनगढ़ ग्राम (जिला प्रतापगढ़) में निःशुल्क चिकित्सालय (कृपालु चिकित्सालय) की स्थापना की क्योंकि यहाँ निर्धन जनता इतनी समर्थ नहीं है कि उपचार हेतु सुविधाओं को तुरन्त जुटा सके। ऐसा ही निःशुल्क चिकित्सालय वृन्दावन में एवं बरसाना धाम में भी स्थापित किया है। इन चिकित्सालयों में रोगियों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता। हर प्रकार की जाँच, ऑपरेशन, सर्जरी, दवाइयों आदि पर कृपालु ट्रस्ट द्वारा ही व्यय किया जाता है। इन अस्पतालों में अत्याधुनिक उपचार एवं निदान मशीने उपलब्ध हैं। प्रत्येक रोग के विशेषज्ञ डॉ. चिकित्सा हेतु उपलब्ध होते हैं। ऐलोपैथिक के साथ–साथ होम्योपैथिक, नेचरोपैथी, आयुर्वेदिक आदि चिकित्सा पद्धतियों से उपचार की व्यवस्था है। इन अस्पतालाओं में समय–समय पर नियमित रूप से नेत्र चिकित्सा शिविर, रक्तदान शिविर आदि लगाए जाते हैं। उपचार के सभी साधन निःशुल्क उपलब्ध करवाए जाते हैं।

विधवा भोजों एवं ब्रह्म भोजों का नियमित आयोजन – संत कृपालु महाराज के निर्देशन में प्रतिवर्ष, वर्ष में अनेक अवसरों पर साधु/ब्रह्म भोज एवं मनगढ़, बरसाना, वृन्दावन में विधवा महिला भोजों का आयोजन किया जाता है जिनमें प्रत्येक आगन्तुक को अपरिमित दान दक्षिणा भी दी जाती है। दान कार्यों से संत कृपालु महाराज का विशेष लगाव रहा है। अन्न, धन, वस्तु, कम्बल, बर्तनों आदि का खुलकर दान दिया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में योगदान – संत कृपालु महाराज शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। उनके स्वयं के सत्संग में अधिकांश अनुगामी अच्छे पढ़े लिखे साधक रहे हैं। शिक्षा के महत्त्व के अनुरूप उन्होंने अपने मनगढ़ ग्राम में बेटियों को प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा सुलभ हो, इस हेतु सार्थक प्रयास करते हुए कृपालु बालिका विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना की है जहाँ हजारों छात्राएँ प्रतिवर्ष निःशुल्क शिक्षार्जन कर रही हैं। यह बहुत प्रशंसनीय है कि कुण्डा (उ.प्र.) में जो आठवीं तक विद्यालय था आज महाविद्यालय के रूप में उसका प्रसार हो गया है। उच्च शिक्षा में बी.एड., बी.एस.सी. , एम.ए. जैसे पाठ्यक्रमों की शिक्षा दी जा रही है। इन विद्यालयों में छात्राओं को अंधविश्वास, पर्दाप्रथा, रूढ़िवादिता से दूर रहकर आत्मनिर्भरता प्रेम, सहयोग, सेवा भावना, सर्वधर्म समभाव आदि भावनाओं के विकास की शिक्षा दी जा रही है। परिषद् द्वारा संचालित शिक्षा संस्थानों के अलावा अन्य शिक्षा संस्थानों को भी वे सहायतार्थ दान देते रहे हैं।

मनगढ़ बरसाना वृन्दावन में विशाल साधना भवनों का निर्माण – भगवद् भक्त साधकों की सुविधा हेतु संत कृपालु महाराज द्वारा मनगढ़ धाम में भक्ति भवन, वृन्दावन धाम में श्यामा श्याम धाम एवं बरसाना धाम में रंगीली महल साधना भवनों के निर्माण का सार्थक प्रयास किया गया है। ये साधना भवन आधुनिक सुविधाओं एवं आधुनिक तकनीकी से निर्मित विशाल भवन हैं जहाँ हजारों साधकों के एक साथ बैठ्क सुविधापूर्वक हरि नाम सत्संग करने की सुविधा उपलब्ध है। इन सभी भवनों का निर्माण संत कृपालु महाराज के अथक परिश्रम का परिणाम है। समाज की आध यात्मिक उन्नति हेतु यहाँ पर नियमित रूप से साधना शिविरों का आयोजन किया जाता है जिनमें विश्व भर से हजारों/लाखों श्रद्धालु आकर सत्संग एवं साधना का लाभ प्राप्त करते हैं।

देश की आपात् परिस्थितियों में अपार दान कार्य – संत कृपालु महाराज का राष्ट्रीय चेतना के प्रति भी विशेष रुझान रहा है। जब कभी भी देश पर किसी भी प्रकार की चाहे बाह्य या आन्तरिक आपात् स्थिति आई है तो उन्होंने यथा शक्ति स्वयं की ओर से प्रयत्न कर, देश की आर्थिक एवं मानविकी सहायता उपलब्ध करवाई है। सन् 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया था तब उन्होंने स्वयं का जगद्गुरु की उपाधि के समय प्रदत्त रजत सिंहासन रक्षा कोष में दान कर दिया। इसी प्रकार से सन् 2008 में बिहार के बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ 2 करोड़ का दान दिया। सन् 2013 में उत्तराखण्ड त्रासदी में पीड़ित जनता की सहायता हेतु करोड़ों रूपए का दान अर्पित किया। इस प्रकार ऐसे अनेक अवसर आए हैं जब उन्होंने देश के हित में अनेक कार्य किए हैं।

आधुनिक योग एवं साधना शिविरों का आयोजन –

हरि का वियोग जीव गोविंद राधे। साँचों योग सोई जो हरि से मिला दे।

राधा गोविंद गीत

संत कृपालु महाराज जन सामान्य के स्वास्थ्य के प्रति भी सचेष्ट रहे। उन्होंने वास्तविक योग का अर्थ समझाते हुए स्पष्ट किया है–

हरि से मिलावे न जो गोविंद राधे। वह योग योग न कुयोग बता दे।

राधा गोविंद गीत

केवल शारीरिक व्यायाम योग नहीं कहलाता। सच्चा योग तो वही है जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ता है तथा इस योग में तन एवं मन स्वास्थ्य युक्त होता है। योग की आठ अवस्थाओं यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायम, ध्यान, धारणा, समाधि को वास्तविक प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध करते हुए उनके सहयोगी प्रचारक स्वामी श्री मुकुन्दानन्द एवं स्वामी श्री प्रेम योगी जी के द्वारा देश–विदेश में जनकल्याण हेतु शिविर लगाए जाते रहे हैं।

प्रकृति सेवा कार्य (सघन वृक्षारोपण) कार्यक्रम – संत कृपालु महाराज द्वारा प्रकृति सेवा संबंधी सामाजिक कार्यों को भी सुन्दर रूप में किया गया है। इसका सबसे

सुन्दर उदाहरण उनकी जन्म स्थली ग्राम मनगढ़ है। जहाँ उन्होंने पिछड़े एवं उजड़ें ग्राम को हरितिमा से सुसज्जित कर हरित मनगढ़ बना दिया। हजारों–लाखों वृक्षों का बीजारोपण कर बंजर भूमि को हरी भरी कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने अपने आश्रमों में एवं अन्य अनेक स्थानों पर सघन वृक्षारोपण शिविर लगाकर–प्रकृति की भी अपार सेवा की है।

गौ शालाओं का निर्माण एवं गौ माता के सेवा कार्यों का आयोजन – संत कृपालु महाराज द्वारा गायों की सेवा हेतु मनगढ़, बरसाना एवं वृन्दावन आश्रम आदि अनेक स्थलों पर अनेक गौ शालाओं का निर्माण किया गया है। जहाँ पर सैंकड़ों की संख्या में स्वयं सेवक हजारों गायों की निष्काम सेवा करते हैं। बीमार रोगी गायों के उपचार हेतु पशु औषधालयों एवं चिकित्सालय सुविधाओं की स्थापना की गई है। स्वयं संत कृपालु महाराज द्वारा गायों की सेवा हेतु विभिन्न शिविर कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता रहा है।

इस प्रकार संत कृपालु महाराज का समस्त जीवन समाज, साहित्य एवं संस्कृति हेतु ही समर्पित रहा है। उनका सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक अवदान निश्चित रूप से न केवल वर्तमान समय में जनता को लाभान्वित कर रहा है अपितु भविष्य में भी उनका सामाजिक एवं साहित्यिक प्रदाय स्वर्ण अक्षरों में भासित होता रहेगा। मानव समाज एवं साहित्यिक जगत सदा–सदा उनके सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक अवदान से उपकृत रहेगा।

❖❖❖

परिशिष्ट 02

प्रख्यात हिन्दी साहित्यकारों द्वारा प्रेषित

कतिपय सम्मतियाँ

परिशिष्ट–02

प्रख्यात हिन्दी साहित्यकारों द्वारा प्रेषित कतिपय सम्मतियाँ

'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ पर भारत के प्रख्यात कवियों तथा विद्वानों द्वारा प्रेषित कतिपय सम्मतियाँ निम्नानुसार हैं–

डॉ. राम कुमार वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय – संत कृपालुदास की प्रस्तुत कृति सूर, मीरा, नन्ददास, रसखान, भारतेन्दु आदि समर्थ कवियों की कला कृतियों की परम्परा का एक नवीन पुष्प है, जिसका हास–विलास लोकोत्तर–भावों की सफल अभिव्यक्ति से ओत–प्रोत है। उनके पदों की कोमल पदावली संगीतात्मक है, उसमें अनुभूति की तीव्रता है और उसकी कुशल अभिव्यक्ति भी है।

डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय – भावानुभूति की सर्वत्र अभिव्यक्ति बड़े ही मार्मिक और स्वाभाविक ढंग से हुई है। कथन या भाव–प्रकाशन में यथार्थता, अकृत्रिमता और स्पष्टता है; काव्य की भी कला है और हृदयाभिव्यक्ति भी है।

श्री सुमित्रानन्दनजी पंत, डायरेक्टर, आल इण्डिया रेडियो, हिन्दी प्रोग्राम– श्री राधाकृष्ण की मधुर भक्ति से प्लावित इन सरस पदों में परम भक्त श्री कृपालुदास जी ने मानव हृदय की पवित्रतम भावना को वाणी देकर रसिक भक्तजनों का बड़ा उपकार किया है। कृपालुदास जी की स्वान्तः सुखाय वाणी में माधुर्य का सहज प्रवाह है। उनका प्रत्येक छन्द रस के समुद्र की भाँति भक्ति की तन्मयता से तरंगित है।

डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, एम.ए., डी. फिल., हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय – वर्तमान युग के अनुकूल विद्वान् भक्त कवि ने कृष्ण–भक्ति के समन्वयात्मक रूप को ग्रहण किया है। राधा–कृष्ण–भक्ति का प्रचारक होते हुए भी उसमें साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं मिलती। भक्ति धर्म में ज्ञान और कर्म की भी स्वीकृति है, जो युग के अनुकूल है। 'प्रेम–रस–मदिरा' भक्तों को प्रेमोन्मत्त बनाकर ब्रह्मानन्द देने में समर्थ हो सकेगी, ऐसी मैं कल्पना कर सकता हूँ।

श्री हृदयनारायन पाँडे, 'हृदयेश' साहित्य अलंकार, सभापति आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी परिषद्–कानपुर – मैंने संत श्री कृपालुदास जी कृत 'प्रेम–रस–मदिरा' गीत–संग्रह का अवलोकन किया, प्रेमरस से भीगे सराबोर हृदय की मधुर मदिर झनकारें इसमें प्रतिध्वनित हो रही हैं। सरल भाषा, मधुर भाव और गेय–पदावली की त्रिवेणी में मैंने अवगाहन किया; मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।

डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, एम.ए., डी. एस–सी. (लन्दन) वाइस चान्सलर, सागर विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश – 'प्रेम–रस–मदिरा' नामक पुस्तक प्राप्त हुई, पढ़ी। बड़ा आनन्द हुआ। जिस तन्मयता से आपने उसे लिखा है, लगा कि आपने भक्ति के तत्व को समझ लिया है और सचमुच आप प्रेम–रस में अवगाहन करने वाले भक्त जीव हैं।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची – (Bibliography)

संत कृपालु महाराज का मूल साहित्य

गद्य साहित्य –

1.	प्रेम रस सिद्धान्त	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 1998
2.	सेवक सेव्य सिद्धान्त	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं.1988
3.	प्रवचन माधरी–		
(क)	मैं कौन मेरा कौन	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2000
(ख)	भगवन्नाम महात्म्य	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2002
(ग)	भगवद् भक्ति I	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2002
(घ)	भगवद् भक्ति II	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2002
(ङ)	नारद भक्ति दर्शन	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2009
(च)	जीव का लक्ष्य	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2007
(छ)	महारास अधिकारी	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2009
(ज)	श्रुति सिद्धान्त	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2010
(झ)	साधना नियम	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2003
(ञ)	रूपाध्यान	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2004

(ट)	विश्व शांति	साधना भवन ट्रस्ट मानगढ़	प्र.सं. 2008
(ठ)	हरे राम	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2009
(ड)	रूपाध्यान	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2006
(ण)	गुरू कृपा	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2010
(त)	हम दो हमारे दो	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2008
(थ)	प्रेम मार्ग	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2007
(द)	साधक सावधानी	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2003
(ध)	सुनहु साधक प्यारे	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2001
(न)	गुरू कृपा	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2011
(प)	नाम महिमा	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2011
(फ)	प्रश्नोत्तरी	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2010
(ब)	श्रद्धा	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2012
(भ)	प्रेम भिक्षां देही	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2011
(म)	भक्ति की आधार शिला	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2009

(य)	गुरू मंत्र	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2012

पद्य साहित्य –

1.	प्रेम रस मदिरा	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2004
2.	ब्रज रस माधुरी	भक्ति योग प्रकाशन मनगढ़	प्र.सं. 1990
3.	श्यामा श्याम गीत	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2004
4.	राधा गोविंद गीत	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज, नई दिल्ली	प्र.सं. 2002
5.	युगल रस	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2000
6.	भक्ति शतक	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 1990
7.	श्री राधा त्रयोदशी	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2001
8.	कृष्ण द्वादशपदी	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2001
9.	युगल माधुरी	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 1998
10.	युगल शतक	साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़	प्र.सं. 2000
11.	संकीर्तन सरगम	राधा गोविन्द समिति कृष्ण कुंज नई दिल्ली	प्र.सं. 2010

प्रकाशित पत्र पत्रिकाएँ –

1.	अध्यात्म संदेश	जगद्गुरू कृपालु परिषत्
2.	भक्ति पीयूष	ब्रज गोपिका धाम

3. साधन साध्य — साधना भवन ट्रस्ट

4. भक्ति पीयूष धारा — ब्रज गापिका धाम

उपजीव्य ग्रंथ –

1. डॉ. ओम प्रकाश सिंहल — परम्परा और प्रयोग — प्र.सं. 1962
   अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली

2. कुमार विमल — मूल्य और मीमांसा — प्र.सं. 1958
   पुस्तकायन, मुंगेर

3. डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय — मूल्य मीमांसा — प्र.सं. 1973
   राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
   जयपुर

4. डॉ. देवराज — भारतीय संस्कृति — प्र.सं. 1979
   उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,
   लखनऊ

5. डॉ. धर्मवीर भारती — मानव मूल्य और साहित्य — प्र.सं. 1960
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

6. डॉ. नगेन्द्र — हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास — प्र.सं. 1976
   नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली

7. डॉ. नत्थूलाल गुप्त — मानव मूल्य, संस्कृति और साहित्य — प्र.सं. 1955
   मोहित पब्लिकेशन, दिल्ली

8. डॉ. नामवर सिंह — आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ — प्र.सं. 1977
   लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

9. डॉ. नामवर सिंह — इतिहास और आलोचना — प्र.सं. 1979
   नागरी प्रचारिणी संस्थान, वाराणसी

10. नेमिचन्द्र जैन — बदलते परिप्रेक्ष्य, राजकमल प्रकाशन, — प्र.सं. 1968
    नई दिल्ली

11.	डॉ. राधाकृष्णन्	धर्म और समाज राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	प्र.सं. 1963
12.	डॉ. राम गोपाल शर्मा 'दिनेश'	साहित्य के नये संदर्भ रिसर्च पब्लिकेशन्स, दिल्ली	प्र.सं. 1973
13.	डॉ. हुकुमचन्द राजपाल	आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली	प्र.सं. 1993
14.	प्रणव शास्त्री	लोकनायक तुलसीदास आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली	प्र.सं. 1960
15.	महेन्द्र कुमार शास्त्री	संत तुलसीदास आर्य प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 1972
16.	लेखराज शर्मा	रामचरित मानस-एक महाकाव्य आर्य प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 1971
17.	रघुनन्दन शर्मा	दशरथ नन्दन श्री राम आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली	प्र.सं. 1969
18.	रोम्यां रोला	तुलसीदास-एक कवि और संत शिक्षा प्रकाशन, नागपुर	प्र.सं. 1971
19.	रामशकल पाण्डेय	शिक्षा दर्शन विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	प्र.सं. 1976
20.	गोस्वामी तुलसीदास	रामचरित मानस गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 1996
21.	रामनाथन विनायक	'मर्यादा पुरूषोत्तम राम' प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 1959
22.	कृष्णा चौधरी	अब उसे देव जमना प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली	प्र.सं. 1968
23.	दीनानाथ दिनेश	युग निर्माता महापुरूष मानव धर्म कार्यालय, दिल्ली	प्र.सं. 1970

24.	स्वामी ज्वाला प्रसाद	चित्त शुद्धि मानव सेवा संघ	प्र.सं. 1972
25.	संत जी महाराज	मानवता के मूल सिद्धान्त मानव सेवा संघ, वृंदावन	प्र.सं. 1977
26.	काका साहब कालेकर	जीवन योग भी साधना नव जीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद	प्र.सं. 1980
27.	प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	श्री चैतन्य चरितावली गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 1982
28.	हरिकिशनदास अग्रवाल	संसार का सार तुलसी मानस प्रकाशन, बम्बई	प्र.सं. 1983
29.	मुनि श्री नाथ जी	भाव और अनुभव भारतीय ज्ञान पीठ	प्र.सं. 1985
30.	जय दयाल	मेरे पाँच महाव्रत गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं.1989
31.	ईशा दि नौ उपनिषद्	हरिकृष्णदास गोयन का गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 1998
32.	भागवत महापुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 1999
33.	विनय पत्रिका	गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 2000
34.	भगवद् गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 2001
35.	चैतन्य चरितामृत	हरिनाम प्रेस वृन्दावन	प्र.सं. 2002
36.	शंकराचार्य विरचित प्रकरण ग्रंथ	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी	प्र.सं. 2003
37.	भक्ति रसामृत सिंध	हरिनाम प्रेस, वृन्दावन	प्र.सं. 2000
38.	दोहावली	गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 2002
39.	वाल्मीकि रामायण	गीता प्रेस, गोरखपुर	प्र.सं. 2000

40.	रस और रस परम्परा	डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी जगतराम एण्ड संस, गांधी नगर–दिल्ली	प्र.सं. 1993
41.	पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास सिद्धांत और वाद	डॉ. भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी	प्र.सं. 2013
42.	भरत 'नाट्यशास्त्र'	श्री बाबू लाल शुक्ल	
43.	नया काव्यशास्त्र	डॉ. भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्र.सं. 2013
44.	रस गंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन	प्रेम स्वरूप गुप्त	
45.	काव्य रस : चिन्तन और आस्वाद	डॉ. भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी	प्र.सं. 2013
46.	आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्त्रोत	डॉ. केशरी नारायण शुक्ल सरस्वती मन्दिर, काशी	प्र.सं. 1947
47.	आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्ति तत्व	डॉ. विश्वम्भरदयाल अवस्थी ऊर्जा प्रकाशन, इलाहाबाद	प्र.सं. 1980
48.	आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. भोलानाथ प्रगति प्रकाशन आगरा	
49.	पौराणिक काव्य आधुनिक संदर्भ	डॉ. गो.रा. कुलकर्णी विद्या विहार, कानपुर	प्र.सं. 1978
50.	भारतीय दर्शन	देवराज एन.के. लखनऊ, हिन्दी संस्थान यू.पी.	प्र.सं. 1983
51.	प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	कुमार श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली	प्र.सं. 1993

52.	आधुनिक भारतीय शिक्षा	डॉ. बी.बी. अग्रवाल विनोद पुस्तक मंदिर आगरा	प्र.सं.1995
53.	भारतीय शिक्षा, विकास और समस्याएँ	कमलकांत तिवारी हॉराइज पब्लिशर्स, इलाहाबाद	प्र.सं. 1998
54.	श्री रामचरित मानस	गोस्वामी तुलसीदास गीता प्रेस गोरखपुर	प्र.सं. 2005
55.	श्रीमद् भगवद् गीता	आर. भट्ट गीता प्रेस गोरखपुर	प्र.सं. 1999
56.	सुभाषित पुष्प माला	के. मेहता भागवत विद्यापीठ अहमदाबाद	प्र.सं. 2002
57.	श्रीमद् भगवद् गीता	प्रभु पाद इस्कॉन मन्दिर, अहमदाबाद	प्र.सं. 2006
58.	धर्म नीति	गांधी साहित्य सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन	प्र.सं. 1992
59.	संस्कृति का दार्शनिक विवेचन	डॉ. देवराज प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, उ. प्रदेश	
60.	महापुरुषों के साथ	दिलीप कुमार राय राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली	
61.	हमारे महापुरुष	डॉ. शुकदेव दुबे स्मृति प्रकाशन	प्र.सं. 1974
62.	साहित्य परिचय	डॉ. रामशकल विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	प्र.सं. 1976
63.	भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	सत्यकेतु विद्यालंकार सरस्वती सदन, मसूरी	1960

64.	मैथिलीशरण गुप्त का काव्य : सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. आशा गुप्ता अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर	प्र.सं. 1979
65.	मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य	डॉ. द्वारिका प्रसाद मित्तल अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	प्र.सं. 1979
66.	रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि	वेंकट रमण राव जवाहर पुस्तकालय, मथुरा	प्र.सं. 1972
67.	हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन	डॉ. यश गुलाटी सूर्य प्रकाशन, दिल्ली	प्र.सं. 1978
68.	काव्य शास्त्र	डॉ. भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्र.सं. 2013
69.	भारतीय काव्य शास्त्र	डॉ. तारकनाथ बाली वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	प्र.सं. 2010
70.	राष्ट्र कवि दिनकर और उनकी काव्य कला	शेखर चन्द, पन्ना लाल जैन पुस्तक सदन, जयपुर	प्र.सं. 1973
71.	खड़ी बोली राम काव्यों में चित्रित समाज और संस्कृति	डॉ. मनोहर सराफ विद्या प्रकाशन, कानपुर	प्र.सं. 1994
72.	अलंकार शास्त्र का वृहद् इतिहास	रमेश चन्द्र घुसींगा रचना प्रकाशन, जयपुर	प्र.सं. 2006
73.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र	डॉ. कृष्णदेव शर्मा श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-2	2012
74.	तुलसी की काव्य भाषा	डॉ. हरिनिवास पाण्डेय विश्वविद्यालय, प्रकाशन वाराणसी	2008

75.	भारतीय काव्यशास्त्र	डॉ. निशा अग्रवाल लोक भारती, प्रकाशन इलाहबाद–1	प्र.सं. 2010
76.	हिन्दी काव्यशास्त्र के मूलाधार	योगेन्द्र प्रताप सिंह लोक भारती, प्रकाशन इलाहाबाद–01	प्र.सं. 2010
77.	पाश्चात्य काव्यशास्त्र	डॉ. तारकनाथ बाली वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	प्र.सं. 2013
78.	काव्यांग पारिजात	डॉ. लक्ष्मी नारायण चातक कॉलेज बुक डिपो, जयपुर	
79.	काव्यांग विवेचन	डॉ. हेतु भारद्वाज पंचशील बुक डिपो, जयपुर	प्र.सं. 2014
80.	संत तुलसीदास और उनका साहित्य	स्वामी आनन्द कुलश्रेष्ठ डायमण्ड बुक्स, नई दिल्ली	प्र.सं. 2014
81.	महावीर प्रसाद द्विवेदी रचना संचयन	सम्पादक (भारत यायावर) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	प्र.सं. 2006
82.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. नगेन्द्र मयूर पेपर बुक्स साहित्य, नयी दिल्ली	प्र.सं. 1991
83.	हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ. कृष्ण लाल हंस राम बाग, कानपुर	प्र.सं. 1974
84.	हिन्दी साहित्य का पुनरावलोकन	विद्यानिवास मिश्र प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली	प्र.सं. 2000
85.	हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास	डॉ. मोहनलाल अवस्थी सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद	प्र.सं. 1970
86.	हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ. राम गोपाल शर्मा राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर	प्र.सं. 1995

87.	हिन्दी साहित्य का इतिहास, भाषा, संस्कृति चित्रण	श्याम चरण दुबे लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली	प्र.सं. 1998
88.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली	प्र.सं. 1998
89.	साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य	डॉ. रघुवंश भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन	प्र.सं. 1960
90.	व्यावहारिक सामान्य हिन्दी	डॉ. राघव प्रकाश पिंकसिटी पब्लिशर्स, जयपुर	प्र.सं. 2013

अंग्रेजी ग्रंथ

1. रेल्फ फाक्स — द नॉवल एण्ड द पीपल
2. फिलिप लोरेंस — एनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइकोलाजी
3. एस.डब्ल्यू गेरोड — द स्टडी ऑफ पोयट्री
4. Encyclopedia Britanica : Vol 10-1965
5. E.F. Carelt : what is Beauty?
6. D.J. James : Sceticism and poetry
7. Lious K. Anspacher : The challenge of the unknown
8. S.C. Sen Gupta : Towards a theory of imagination
9. Herbert Read : The philosophy of modern art
10. K.W. wild : Intution
11. A.F. Powell : The Romantic theory of poetry : chap. II
12. T.N. Sreekantaiya : Imagination in Indian poetics and other litrary studies.
13. I.A. Richards : Principles of Litracy Criticism.
14. Stephan spender : The making of a poem.
15. Herbert Read : Essays in Litrary Criticism.
16. John Drinkwater : The lyric
17. A.C. Bradlay : oxferd Lectures on Poetry

18. W.H. Hudson : Introduction to the study of litrature
19. J.M. Mury : The Problem of style
20. E.D. Edmund D. Jones : English Critical Essays.
21. E.J. furlong : Imagination
22. P.J. Choudhary : studies in comparative Assthetics

मूल ग्रन्थ

1.	आचार्य भरतमुनि	नाट्यशास्त्र
2.	भामह	काव्यालंकार
3.	दण्डी	काव्यादर्श
4.	वामन	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ग्रंथ
5.	रुद्रट्	काव्यालंकार
6.	रुद्र भट्ट	श्रृंगार तिलक
7.	आनन्दवर्धन	ध्वन्यालोक
8.	महिमभट्ट	व्यक्तिविवेक
9.	भट्ट तौत्त	काव्यकौतुक
10.	क्षेमेन्द्र	औचित्य विचार चर्चा
11.	कुन्तक	वक्रोक्ति जीवितम्
12.	भट्ट नायक	सहृदय दर्पण
13.	राजशेखर	काव्यमीमांसा
14.	हेमचन्द्र	काव्यानुशासन
15.	अग्निपुराणकार	अग्निपुराण
16.	धनञ्जय	दशरूपक
17.	जयदेव	चन्द्रालोक
18.	पण्डितराज जगन्नाथ	रसगंगाधर
19.	अभिनव गुप्त	ध्वन्यालोक लोचन
20.	भोजराज	सरस्वती कण्ठाभरण
21.	विश्वनाथ	साहित्यदर्पण
22.	रामचन्द्र–गुणचन्द्र	नाट्यदर्पण

23.	उद्भट	अलंकार सार संग्रह
24.	केशवदास	कविप्रिया
25.	चिंतामणि	कवि कुलकल्पतरु
26.	कुलपति	रस रहस्य
27.	श्रीपति	काव्य सरोज
28.	महाकवि देव	काव्य रसायन
29.	सुरति मिश्र	काव्य सिद्धान्त
30.	सोमनाथ	रसपीयूष निधि
31.	भिखारीदास	काव्यनिर्णय
32.	महावीर प्रसाद द्विवेदी	रसज्ञरंजन
33.	आचार्य श्यामसुन्दर	साहित्यलोचन
34.	आ. रामचन्द्र शुक्ल	चिंतामणि भाग–01–02
35.	जयशंकर प्रसाद	काव्य और कला तथा अन्य निबंध
36.	सुमित्रानन्दन पंत	पल्लव
37.	डॉ. नगेन्द्र	काव्य चिंतन
38.	मैथिलीशरण गुप्त	भारती भारती
39.	महादेवी वर्मा	दीपशिखाः चिंतन के कुछ क्षण

कोश ग्रन्थ

1.	डॉ. धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोश
2.	रामचन्द्र वर्मा	मानक हिन्दी कोश
3.	डॉ. हरदेव बाहरी	वृहद् अंग्रेजी हिन्दी कोश

अन्य पत्र पत्रिकाएँ

1. जन सत्ता (दैनिक)
2. नव भारत टाइम्स (दैनिक)
3. राष्ट्रीय सहारा (दैनिक)
4. हिन्दुस्तान (दैनिक)
5. दस्तावेज़ (मासिक)

6. मधुमती (मासिक)

7. आजकल (मासिक)

8. समकालीन समाचार (मासिक)

9. साहित्य अमृत (मासिक)

10. हंस (मासिक)

11. समर लोक (द्वैमासिक)

12. आलोचना (त्रैमासिक)

13. पटल (त्रैमासिक)

14. विषयवस्तु (त्रैमासिक)

15. कादम्बिनी (मासिक)

16. पाञ्जन्य (मासिक)

17. कल्याण (मासिक)

18. अखण्ड ज्योति (मासिक)

19. गीता सत्संग (मासिक)

20. युग निर्माण योजना (मासिक)

❖❖❖

जयति प्रेम मादन रसधारी,
जयति 'कृपालु' निकुंज बिहारी।
रँगीली-महल
क्रिसमस एवं लोहड़ी पर्व
(साम्प्रदायिक सद्भाव)
योग शिक्षा शिविर
कृपालु महिला महाविद्यालय
सा विद्या तन्मतिर्यया
BLOOD DONATION CAMP
निःशुल्क चिकित्सा शिविर
श्रद्धा

माता को प्रणाम करते हुए

प्रेम तत्व की सार मादन स्वरूपा

रासेश्वरी श्री राधारानी के प्राकट्य

महोत्सव के उपलक्ष्य में '**प्रेम मंदिर**' के प्रांगण में

'**जगद्गुरु श्री कृपालुजी महाराज**'

द्वारा

'**श्रीराधा तत्त्व**' पर प्रवचन।

24.09.2012

निराश्रित विधवा महिला भोजों का आयोजन

भारतीय संस्कृति एवं
अध्यात्म पर आधारित
भगवल्लीलाओं
का प्रदर्शन
29.10.2012
भक्ति धाम
जगद्गुरु
श्री कृपालु जी महाराज
की जन्मस्थली